॥ ओ३म् तत्सद्ब्रह्मणे नमः ॥

# आचार्य शङ्कर कृत ब्रह्मसूत्र-अध्यासभाष्य : एक अध्ययन

## (भामती तथा विवरण टीकाओं के विशेष सन्दर्भ में)

"अस्यानर्थहेतोः प्रहाणाय आत्मैकत्वविद्याप्रतिपत्तये सर्वे वेदान्ता आरभ्यन्ते"- *ब्रह्मसूत्रशांकरभाष्य-उपोद्घात।*

दर्शननिष्णात (Master of Philosophy) उपाधि हेतु प्रस्तुत

लघुशोधप्रबन्ध


शोधार्थी

**कपिल गौत्तम**

शोध-निर्देशक

**डॉ० राम नाथ झा**

**(सहायक आचार्य)**

विशिष्ट संस्कृत अध्ययन केन्द्र

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय

नई दिल्ली-110067


2012

विशिष्ट संस्कृत अध्ययन केन्द्र

जवाहरलालनेहरू विश्वविद्यालय

नई दिल्ली-११००६७

**SPECIAL CENTER FOR SANSKRIT STUDIES**

**JAWAHARALAL NEHRU UNIVERSITY**

**NEW DELHI-110067**

July 21st, 2012

## DECLARATION

I declare that the dissertation entitle ***"आचार्य शंकर कृत ब्रह्मसूत्र अध्यासभाष्य : एक अध्ययन (भामती एवं विवरण टीकाओं के विशेष सन्दर्भ में )"*** submitted by me for the award of degree of Master of Philosophy is an original research work and has not been previously submitted for any other degree or diploma in any other institution/University

(KAPIL GAUTAM)

विशिष्ट संस्कृत अध्ययन केन्द्र

जवाहरलालनेहरू विश्वविद्यालय

नई दिल्ली-११००६७

**SPECIAL CENTRE FOR SANSKRIT STUDIES**
**JAWAHARLAL NEHRU UNIVERSITY**
**NEW DELHI – 110067**

July 21st, 2012

## C E R T I F I C A T E

The dissertation entitled ***'आचार्य शंकर कृत ब्रह्मसूत्र अध्यासभाष्य : एक अध्ययन (भामती एवं विवरण टीकाओं के विशेष सन्दर्भ में )'*** submitted by **KAPIL GAUTAM** to **Special Centre for Sanskrit Studies, Jawaharlal Nehru University, New Delhi – 110067** for the award of degree of **Master of Philosophy** is an original research work and has not been submitted so far, in part or full, for any other degree or diploma in any University. This may be placed before the examiners for evaluation.

**Prof. Sashi Prabha Kumar**
**(Chairperson)**

**Dr. Ram Nath Jha**
**(Supervisor)**

# समर्पणम्

*अध्यासस्यविमर्शोऽयं, चतुष्भागेषु गुम्फितः,*

*पुष्पाञ्जलिस्वरूपेण, श्री कृष्णाय समर्प्यते -*

सच्चिदानन्दरूपाय ,विश्वोत्पत्यादिहेतवे।

तापत्रयविनाशाय, श्रीकृष्णाय वयं नुमः ॥

(पद्मपुराण १/१/१ )

इदं नमः ऋषिभ्यः पूर्वजेभ्यः पूर्वेभ्यः पथिकृद्भ्यः

(ऋ० १०/१४/१५)

वात्सल्यप्रतिमूर्तयोः मातृपितृचरणयोः समर्पयामि।

# प्राक्कथन

**॥ ओ३म् तत्सद्ब्रह्मणे नमः ॥**

**जन्माद्यस्य यतोन्वयादितरतश्चार्थेश्वभिज्ञः स्वराट्,**

**तेने ब्रह्म हृदा य आदिकवये मुह्यन्ति यत्सूरयः ।**

**तेजोवारिमृदां यथा विनिमयो यत्र त्रिसर्गो मृषा,**

**धाम्ना स्वेन सदा निरस्त कुहकं सत्यं परं धीमहि ॥**

**(श्रीमद्भागवत १/१/१ )**

सर्वप्रथम सच्चिदानन्दघन, आत्मस्वरूप, विश्व के अधिष्ठान, परमतत्त्व परमेश्वर का स्मरण करते हुए निर्विघ्न परिसमाप्ति हेतु भारतीयपरम्परा के अनुरूप गणपति तथा माँ सरस्वती के चरणों में नमन करता हूँ। समस्त विद्याओं के आद्य स्त्रोत वागर्थ की प्रत्तिपत्ति हेतु जगदम्बा पार्वती तथा भगवान् शंकर को प्रणाम करता हूँ ।

मेरे जीवन के आदर्श तथा पथप्रदर्शक, विकट परिस्थितियों में मेरा सम्बल बनने वाले ग्रन्थ श्रीमद्भगवद्गीता के उपदेष्टा भगवान् योगेश्वर श्री कृष्ण के चरणकमलों का ध्यान करता हूँ जिनकी कृपा से क्लिष्ट शोध कार्य भी अक्लिष्ट हो गया ।

महर्षि कृष्णद्वैपायन वेदव्यास (बादरायण) तथा आचार्य शंकर की वन्दना करता हूँ जिनके परमपावन ब्रह्मसूत्र तथा शारीरकभाष्य को प्राप्त कर मेरी मति विमलता को प्राप्त हुई है ।

स्वजीवन से वेदान्त की शिक्षा को पारिवारिक संस्कार के रूप में प्रदान करने वाले ऋषितुल्य पिता श्रीभगवान सहाय शर्मा तथा वात्सल्य की प्रतिमूर्ति माता कान्ता देवी जो मेरे मानव जीवन के प्रत्यय हैं दोनो के प्रति कृतज्ञताज्ञापन में मेरी वाणी समर्थ नहीं है।

शोधनिर्देशक गुरूवर डॉ० रामनाथ झा ने वेदान्तसार, ब्रह्मसूत्र- शांकरभाष्य का अध्ययन कराया जिससे मेरी अद्वैत वेदान्त में अभिरूचि हुई । शोधकाल में प्रकाशात्मयति कृत विवरण का कोई हिन्दी अनुवाद न मिलने पर स्वयं एक वेदान्त के मठ से आंग्ल अनुवाद लेकर आये | नव्य न्याय भाषा प्रदीप (Navya Nyaya Language And Methodology) का अध्ययन कराया जिससे मैं रत्नप्रभाकार के अध्यास मत को सुगमता से बुद्धिस्थ कर सका। उनके लिए प्रतिपद कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ।

मैं विशिष्ट-संस्कृत-अध्ययन केन्द्र के अपने प्रिय गुरुजनों जिनके अमूल्य सत्परामर्श से शोधप्रबन्ध पूर्णता को प्राप्त हुआ है, के प्रति हार्दिक आभार निम्न शब्दों में व्यक्त करता हूँ -

विशिष्ट संस्कृत अध्ययन केन्द्र की अध्यक्षा प्रो०शशिप्रभाकुमार जिनके अध्यापन के साथ साथ उनके अपने प्रति मातृत्वपूर्ण वात्सल्य का ऋणी रहूँगा। वैशेषिक सूत्र, उपस्कारभाष्य, न्यायकन्दली टीका, न्यायमञ्जरी का अध्ययन कराया जिससे प्रस्तुत शोधकार्य में न्याय-वैशेषिक के सिद्धान्तों को समझने में सहजता का अनुभव हुआ।

डॉ० गिरीशनाथ झा जिनके संगणकीय ज्ञान प्रदान करने से मेरे लघुशोधप्रबन्ध का टंकण मैं स्वयं कर सका। प्रस्तुत शोधकार्य में संगणकीय आरेख-चित्र एवं सारणी के प्रस्तुतीकरण हेतु मैं आपका सदैव आभारी रहूँगा।

डॉ० सन्तोष कुमार शुक्ला के प्रति हार्दिक आभार व्यक्त करता हूँ जिहोंने अर्थसंग्रह तथा शाबरभाष्य (तर्कपाद) का अध्ययन कराया जिससे पूर्वमीमांसा के सिद्धान्तों को सुगमता से समझ पाया।

डॉ० रजनीशकुमार मिश्र जिन्होंने दर्शननिष्णात ( M. Phil.) की कक्षाओं में शोध-प्रविधि (Research Methodology) का अध्ययन कराया जिससे मेरा ब्रह्मसूत्र-अध्यासभाष्य के अध्ययन ने एक शोध-कार्य के प्रारूप को ग्रहण किया, के प्रति आभार व्यक्त करता हूँ।

डॉ० हरिराम मिश्र जिन्होने अष्टाध्यायी, महाभाष्य:पश्पशाह्निक, वाक्यपदीयम् का अध्ययन करवाया जिससे आचार्य शंकर तथा टीकाकारों की व्याकरणिक शैली का अध्ययन सुगमता से सम्भव हो पाया।

डॉ० उपेन्द्र राव ने काव्यप्रकाश तथा ध्वन्यालोक का अध्ययन कराया जिससे आचार्य शंकर के अध्यासभाष्य जैसे गहन विषय को काव्यमयी शैली में सरलतापूर्वक प्रस्तुतीकरण कर पाया।

अपने स्नातक के गुरुजनों पुष्पा गुप्ता, उषा देवपुरा, बीना चौधरी, अर्चना भार्गव का सदैव आभारी रहूँगा जिन्होने संस्कृत वाङ्मय के संस्कारों का सन्निवेश किया जिससे मैं विशिष्ट संस्कृत अध्ययन केन्द्र का योग्य विद्यार्थी बन पाया।

अपने परममित्रों यशपाल तथा बलदेव, पूजा के कर्तव्योन्मुख परामर्श के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ।

प्रदीप जी तथा मनमोहन भाई साहब जिन्होंने मुझे जवाहरलाल नेहरु विश्वविद्यालय में अध्ययन का परामर्श दिया तथा विकट परिस्थिति में सदैव मेरा सहयोग किया।

मेरे अन्य मित्रों मेघराज, विष्णु, देवेन्द्र, प्रतिभा, मनीषा, श्री कृष्ण, हवासिंह, महेश,दिलीप,गौरव, कृती विकट परिस्थितियों में सहयोग हेतु धन्यवाद के पात्र हैं।

शिवलोचन, मणिशंकर, प्रवीण, प्रवेश, चित्रेश, रोहित, सर्वेश, अरविन्द, सन्दीप, अनिल, चमन, सोमबीर, पूनम, प्रीति, कामिनी, वन्दना, राजेश, अर्पित अन्य सभी सहपाठियों से जो अनन्य स्नेह व सहयोग मिला उसके लिये मैं हार्दिक आभार प्रकट करता हूँ।

केन्द्र के मेरे अग्रजों सचिन जी, विजेन्द्र जी, मयङ्क जी, दिवाकर जी, मोहन जी, देवाशीष जी, वेद जी, संजीव जी, मुकेश जी, रविप्रकाश जी, विश्वबन्धु जी, आशुतोष जी, नीलम जी, ममता जी, अशोक जी, विश्वेश जी, रजनीश जी, बबलू जी, अनिता जी,मोनिका जी, रीटा

जी, प्रियंका जी, जया जी आदि से जो स्नेहासिक्त मार्गदर्शन प्राप्त हुआ उसके लिये मैं धन्यवाद ज्ञापित करता हूँ।

अनुजों में प्रदीप,रिंकू,हरीश, घनश्याम, रेणु, रेखा, सुरभि, ममता, नीरजा, अरुणिमा, शुभम,सुमित, हरिओम्, हरीश, प्रचेतस्, ताहिर , के प्रति मेरा विशेष स्नेह है, इस शोध-कार्य में भी उनका विशिष्ट सहयोग प्राप्त हुआ है।

मेरे आदरणीय गीता, सीता, रुक्मणी, राधा जीजी तथा उमाशंकर, शिवशंकर, भवानीशंकर, गौरीशंकर (लक्ष्मीनिधी) जीजाजी के पुत्रवत् स्नेह तथा वात्सल्य के प्रति सदैव ऋणी रहूँगा। हर्षुल, प्रियांशी, शिवांश, अभिषेक, अक्षत तथा सुधांशु इत्यादि की बालचपलता ने मेरा चित्त हमेशा प्रसन्न रखा अतः उनके प्रति भी धन्यवाद के शब्द अर्पित करता हूँ।

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (UGC) के द्वारा शोध-कार्य हेतु कनिष्ठ अनुसंधान अध्येतावृत्ति (JRF) प्रदान करने के लिए आभार व्यक्त करता हूँ। शोध-कार्य में समुचित शोध सामग्री की सुलभता हेतु जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, दिल्लीविश्वविद्यालय (उत्तर व दक्षिण परिसर),लालबहादुर शास्त्री विश्वविद्यालय, राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थान दिल्ली परिसर , जगद्गुरु रामानन्दाचार्य विश्वविद्यालय जपपुर के पुस्तकालयों के प्रति हार्दिक धन्यवाद ज्ञापित करता हूँ।

उस समस्त स्थावर जङ्गम तत्त्वों के प्रति आभार व्यक्त करता हूँ जिनका प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से सहयोग रहा है।

# विषयानुक्रमणिका


**प्राक्कथन** i-iv

**विषयानुक्रमणिका** v-x

**चित्रसूची** xi

**संकेताक्षरसूची** xii-xiii

**किञ्चित् वक्तव्य** xiv-xvii

**भूमिका** 1-7

**अध्याय १. ब्रह्मसूत्र के भाष्य एवं टीकाओं का पर्यावलोकन** 8-44

**१.१. बादरायण कृत ब्रह्मसूत्र** 8-15

१.१.१.ब्रह्मसूत्र के अनेकाभिधान

१.१.२.बादरायण तथा वेदव्यास के अभिन्नत्व पर विचार

१.१.३.ब्रह्मसूत्रोक्त वेदान्त की सुदीर्घ परम्परा

**१.२ शंकरपूर्व ब्रह्मसूत्र भाष्यकार** 16-25

**१.३. आचार्य शङ्कर कृत शारीरकभाष्य** 25-33

१.३.१.आचार्य शंकर का व्यक्तित्व

१.३.२. आचार्य शंकर का कर्तृत्व

१.३.३. आचार्यशंकर कृत शारीरकभाष्य : एक सामान्य परिचय

१.३.४. शारीरकभाष्य पर प्रमुख टीकाऍं

**१.४.शंकरोत्तर ब्रह्मसूत्रभाष्य** **33**

**१.५. भामती एवं विवरण: सामान्य परिचय-** **34-44**

१.५.१.वाचस्पति मिश्र का व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व

१.५.२.भामती टीका : एक सामान्य परिचय

१.५.३ प्रकाशात्मयति कृत विवरण टीका:सामान्य परिचय

१.५.४.भामती एव विवरण सम्प्रदाय में सैद्धान्तिक वैमत्य

**अध्याय २. अध्यासवाद की पृष्ठभूमि** **45-72**

**२.१. वैदिक पृष्ठभूमि :** **45-48**

२.१.१. नासदीय सूक्त

२.१.२. उपनिषद्गत पृष्ठभूमि

**२.२. श्रीमद्भगवद्गीतागत पृष्ठभूमि** **49-50**

**२.३. आचार्य गौढपाद के दर्शन में अध्यास का स्वरूप** **50-51**

**२.४.पंचख्याति** **52-72**

२.४.१. आत्मख्याति

२.४.२. असत्ख्याति

२.४.३. अख्याति

२.४.४. अन्यथाख्याति

२.४.५. विपरीतख्याति

२.४.६.सत्ख्याति

२.४.७.सदसत्ख्याति

२.४.८. अनिर्वचनीयख्याति

**अध्याय ३. अनिर्वचनीयख्याति की स्थापना** **73-101**

**३.१ आत्मख्याति का खण्डन** **73-75**

३.१.१.भामतीकार कृत खण्डन

३.१.२.चित्सुखाचार्य कृत खण्डन

३.१.३.आचार्य विमुक्तात्मयति कृत खण्डन

**३ .२. असत्ख्याति का खण्डन** **76-77**

**३.३. अख्याति का खण्डन** **77-81**

३.३.१.भामतीकार कृत खण्डन

३.३.२.विवरणकार कृत खण्डन

३.३.३.माधवाचार्य कृत खण्डन

३.३.४. ब्रह्मसिद्धिकार कृत खण्डन

३.३.५.न्यायमकरन्दकार कृत खण्डन

**३.४. अन्यथाख्याति का खण्डन** **81-84**

३. ४.१.विवरणकार कृत खण्डन

३.४.२.न्यायमकरन्दकार कृत खण्डन

३.४.३.इष्टसिद्धिकार कृत खण्डन

**३.५.सदसत्ख्याति का खण्डन** **85**

**३.६.सत्ख्याति का खण्डन** **85-86**

**३.७. अनिर्वचनीयख्याति की स्थापना** **87-101**

३.७.१.अनिर्वचनीयख्याति-प्रतिपादन

३.७.१.१ .भामतीकार का मत

३.७.१.२.विवरणकार का मत

३.७.१.३.रत्नप्रभाकार का मत

३.७.२. अनिर्वचनीयत्व का स्पष्टीकरण

३.७.३.अनिर्वचनीयख्याति (भ्रम) की प्रक्रिया

**अध्याय ४. अध्यासभाष्य विश्लेषण :**

**भामती एवं विवरण टीकाओं के विशेष परिप्रेक्ष्य में** **102-161**

**४.१. अध्यासभाष्य : एक परिचय** **102-118**

४.१.१. अध्यासभाष्य भाष्यत्व विचार

४.१.२ .अध्यासभाष्य में मंगलाचरण सम्बद्ध विप्रत्तिपत्ति का निराकरण

४.१.३ .युष्मदस्मदप्रत्यय विचार

४.१.४ युष्मद-अस्मदप्रत्यय में तमःप्रकाशवद्विरुद्धता विचार

४.१.५ . मिथुनीकरण –नैसर्गिकत्व- विचार

**४.२. अध्यासभाष्य का प्रयोजन** **118-123**

४.२. १. भामतीकार का मत

४.२.२. विवरणकार का मत

४.२.३ अन्य मत

**४.३. अध्यास का लक्षण एवं स्वरूप** **124-133**

४.३.१. भामतीकार का मत

४.३.२. विवरणकार का मत

४.३.४ .रत्नप्रभाकार का मत

४.४.४ अन्यमत

**४.४. अध्यास के भेद** **134-138**

४.४. १. भामतीकार का मत

४.४.२.रत्नप्रभाकार का मत

४.४.३ अन्य मत

४.५.अध्यास का कारण एवं चिदात्मा मे अध्यास की संभावना 138-151

४.५.१. अध्यास का कारण

४.५.१.१ अविद्या -

४.५.१.१.१. पंचपादिकाकार का मत

४.५.१.१.२. विवरणकार का मत

४.५.१.१.३. भामतीकार का मत

४.५.१.१.४.रत्नप्रभाकार का मत

४.५.१.२. भेदाग्रह : भामतीकार का मत

४.५.१.३.प्रमातृदोष-सादृश्यज्ञान-पूर्वानुभूतसंस्कार : वेदान्तपरिभाषाकार का मत

४.५.२ चिदात्मा में अध्यास की संभावना-

४.५.२.१ .अविषय-चिदात्मा में अध्यास की अशक्यता का निराकरण

४.५.२.२.अप्रत्यक्ष चिदात्मा में अध्यास की अशक्यता का निराकरण

४.६ अध्यास के परिणाम 152-161

४.६.१ ज्ञानप्रक्रिया

४.६.२ कर्मशास्त्रीय एवं मोक्षशास्त्रीय व्यवहार

उपसंहार 162-167

परिशिष्ट 168-173

सन्दर्भ-ग्रन्थ सूची 174-180

# चित्रसूची


| चित्र सङ्ख्या | नाम | पृ० सं० |
|---|---|---|
| १ | जीव के ज्ञातृत्व कर्तृत्व भोक्तृत्व की अध्यास जन्यता | 4 |
| २.१ | भारतीय दर्शन में ख्यातिवाद (भ्रम की व्याख्या के सिद्धान्त) | 72 |
| ३.१ | विवरणकार के अनुसार मिथ्या का लक्षण | 94 |
| ४.१ | अध्यासभाष्य का भाष्यत्व | 106 |
| ४.२ | आत्म अनात्म में तमः प्रकाशवत् –विरुद्धता | 114 |
| ४.३. | आचार्य शंकर के अनुसार अध्यास का लक्षण | 125 |
| ४.४ | अध्यास के कारण एवं प्रक्रिया | 144 |
| ४.५. | चिदात्मा पर अध्यास की सम्भावना | 151 |
| ४.६ | ज्ञान प्रक्रिया का अध्यासिकत्व | 155 |
| ४.७. | मनुष्य (विवेकी) तथा पशु (अविवेकी) के व्यव्हारसाम्यता का कारण अध्यास होना | 157 |
| ४.८ | यदि शास्त्र अविद्याविषयक है तो वेदान्तशास्त्र या कर्मशास्त्र में किसका अध्ययन अपेक्षित? | 161 |

# संकेताक्षर-सूची

| | | |
|---|---|---|
| अ० सि० | - | अद्वैत सिद्धि |
| अ० वे० | - | अथर्ववेद |
| इ० सि० | - | इष्टसिद्धि |
| ई० उप० | - | ईशावास्योपनिषद् |
| ऋ० | - | ऋग्वेद |
| ऐ० उप० | - | ऐतरेयोनिषद् |
| क० उप० | - | कठोपनिषद् |
| छा० उप० | - | छान्दोग्योपनिषद् |
| त० प० | - | तत्त्वप्रदीपिका |
| नै० सि० | - | नैष्कर्म्य सिद्धि |
| न्या० भा० | - | न्याय भाष्य |
| न्या० म० | - | न्यायमकरन्द |
| पं ०पा० | - | पंचपादिका |
| पं० पा० वि० | - | पंचपादिकाविवरण |
| प्र० उप० | - | प्रश्नोपनिषद् |
| बृह० उप० | - | बृह्दारण्यकोपनिषद् |

| | | |
|---|---|---|
| बृह० उप० भा० वा० | - | बृह्दारण्यकोपनिषद्भाष्यवार्तिक |
| ब्र० सू० शां० भा० | - | ब्रह्मसूत्रशांकरभाष्य |
| ब्र० सि० | - | ब्रह्मसिद्धि |
| ब्र० सू० | - | ब्रह्मसूत्र |
| भा० | - | भामती |
| मा० उप० | - | माण्डूक्योपनिषद् |
| यजु० | - | यजुर्वेद |
| र०प्र० | - | रत्नप्रभा |
| वि० प्र० सं | - | विवरणप्रमेयसंग्रह |
| वे० क० | - | वेदान्तकल्पतरू |
| वे० प० | - | वेदान्तपरिभाषा |
| सि० ले० सं ० | - | सिद्धान्तलेशसंग्रह |
| श्रीमद्० भग० | - | श्रीमद्भगवद्गीता |
| श्रीमद्० भाग० | - | श्रीमद्भागवत महापुराण |

# किञ्चित् वक्तव्य .....

भारतीयज्ञानपरम्परा में जीव के स्वरूप को लेकर श्रुतिकाल से ही चिन्तन हुआ । श्रुति में आत्मतत्त्व को एक ,चेतन, साक्षी, सर्वव्यापी बताया है

*"एको देवः सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा ।*

*कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च " ॥ ( श्वे०)*

चिन्तन के इस अनवरत प्रवाह में आचार्य शंकर ने ब्रह्मसूत्रों पर भाष्य करने से पूर्व वेदान्त के प्रयोजन स्वरूप अध्यासभाष्य का उपवर्णन प्रस्तुत किया जिसमें बताया गया है कि किस प्रकार आत्मन् शुद्ध चैतन्य होकर भी जगत् में प्रमाणप्रमेयव्यवहार का कर्ता जीव बन जाता है। इसी को अभिलक्ष्य कर अपनी स्वाभाविक रूचि के अनुरूप दर्शननिष्णात (एम० फिल) में "ब्रह्मसूत्रशांकरभाष्य के अध्ययनकाल" में "प्रो० रामनाथ झा" के परामर्श से एक राष्ट्रीय संगोष्ठी "DIFINING INDIAN PSYCHOLOGY- ISSUE OF MIND, BODY AND COUNSIOUSNESS" जो "Indian Council Of Social Science Research New Delhi" द्वारा आयोजित किया गया था, में "आचार्यशंकर कृत ब्रह्मसूत्र -अध्यासभाष्य :एक मनोवैज्ञानिक विश्लेषण" नामक शोधपत्र प्रस्तुत किया । इस शोधपत्र के लेखनकाल में मुझे अनुभव हुआ कि यह मानवीय व्यवहार का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत करता है तथा अध्यासभाष्य को लेकर विद्वत्समुदाय में अनेक विप्रतिपत्तियाँ हैं तथा जैसे - कि अध्यासभाष्य में सूत्र की व्याख्या न होने से क्या यह भाष्य है ? अध्यास भाष्य में मंगलाचरण सम्बद्ध विप्रतिपत्ति क्यों आचार्यशंकर ने पहले अध्यासभाष्य का उपस्थापन किया अर्थात् इसका प्रयोजन क्या है? क्या समस्त लौकिक और शास्त्रीयव्यवहार आध्यासिक है यदि है तो कैसे है? अतः तब मैंने विचार किया कि वहाँ इन समस्त जिज्ञासाओं के शमन हेतु अध्यासभाष्य का अध्ययन किया जाना अत्यावश्यक है तथा भामती और विवरण टीका के अध्ययन से यह अवगत हुआ

कि इन समस्त विप्रतिपत्तियों और जिज्ञासाओं का निराकरण तथा स्पष्टीकरण अत्यन्त मनोरम शैली में तार्किक रूप में प्रस्तुत किया गया है । यद्यपि अद्वैत वेदान्त के कतिपय सिद्धान्तों को लेकर भामती और विवरण तुलनात्मक अध्ययन अवश्य हुआ है परन्तु अध्यासभाष्य को लेकर भामती और विवरण टीका जो अद्वैत वेदान्त के दो प्रसिद्ध प्रस्थान भी है, को लेकर किसी प्रकार का कार्य नहीं हुआ है । अतः अध्यासभाष्य को भामती एवं विवरण टीकाओं के आलोक में शोध का सुनिश्चय किया । मेरे इस शिवसंकल्प को मूर्त रूप देने के लिए वात्सल्य के प्रतिमूर्ति गुरुवर प्रो० रामनाथ झा ने निजनिर्देशन में दर्शननिष्णात (M. Phil.) उपाधि हेतु *"आचार्यशंकर कृत ब्रह्मसूत्र-अध्यासभाष्य: एक अध्ययन (भामती एवं विवरण टीकाओं के विशेष सन्दर्भ में)"* इस शोधविषय को स्वीकृत किया । प्रस्तुत शोधकार्य चार अध्यायों में विभक्त है –

**प्रथम अध्याय- ब्रह्मसूत्र के भाष्य एवं टीकाओं का पर्यावलोकन -**

अध्याय में सर्वप्रथम तो बादरायण कृत ब्रह्मसूत्र, ब्रह्मसूत्र के अनेकाभिधान, बादरायण तथा वेदव्यास के अभिन्नत्व पर विचार, ब्रह्मसूत्रोक्त वेदान्त की सुदीर्घ परम्परा, शंकरपूर्व ब्रह्मसूत्र भाष्यकार, आचार्य शङ्कर कृत शारीरकभाष्य पर चर्चा की गयी है । इसके पश्चात् शंकरोत्तर ब्रह्मसूत्रभाष्य तथा भामती एवं विवरण टीका तथा टीकाकारों के विषय में सामान्य परिचय दिया गया है ।

**द्वितीय अध्याय - अध्यासवाद की पृष्ठभूमि**

आचार्य शंकर का अध्यासवाद एक कपोल कल्पना नहीं हो सकती अपितु इसके मौलिक सूत्र श्रुति में भी देखने को मिलते हैं अतः द्वितीय अध्याय में अध्यासवाद की पृष्ठभूमि पर चर्चा की गयी है । प्रथम तो वैदिक पृष्ठभूमि जिसमें नासदीय सूक्त और सैद्धान्तिक उपनिषदों में अध्यास के स्वरूप को प्रस्तुत किया है । इसके पश्चात् भगवद्गीतागत प्रष्ठभूमि तथा आचार्य गौडपाद के दर्शन में अध्यास के स्वरूप पर विवेचना हुई है । अन्त में अध्यासवाद की व्याख्या

के सन्दर्भ में विवेचित "अनिर्चचनीयख्याति" की पृष्ठभूमि हेतु आत्मख्याति,असत्ख्याति, अख्याति, अन्यथाख्याति, विपरीतख्याति, अन्यथाख्याति, सत्ख्याति, सदसत्ख्याति का उपवर्णन करते हुए अनिर्वचनीयख्याति पर चर्चा हुई है। यद्यपि सत्ख्याति आचार्य रामानुज का सिद्धान्त है जो आचार्य शंकर के परवर्ती है तथापि सत्ख्याति का उपवर्णन इसलिए प्रथमतः किया है क्यों कि अद्वैत वेदान्त के आचार्यों ने अनिर्वचनीयख्याति की स्थापना के उपक्रम में सत्ख्याति का खण्डन कर अनिर्वचनीयख्याति को निर्विवाद सिद्धान्त बताया है।

**तृतीय अध्याय – अनिर्वचनीयख्याति की स्थापना**

उपर्युक्त ख्याति के सिद्धान्तों के खण्डन में भामतीकार एवं विवरणकार के साथ अद्वैत वेदान्त के विभिन्न आचार्यों का मत प्रदर्शनपूर्वक अनिर्वचनीयख्याति की स्थापना को तीन प्रविभागों में विभाजित कर अध्ययन किया गया है –

- अनिर्वचनीयख्याति-प्रतिपादन
    - भामतीकार का मत
    - विवरणकार का मत
    - रत्नप्रभाकार का मत
- अनिर्वचनीयत्व का स्पष्टीकरण
- अनिर्वचनीयख्याति (भ्रम) की प्रक्रिया

**चतुर्थ अध्याय - अध्यासभाष्य विश्लेषण : भामती एवं विवरण टीकाओं के विशेष परिप्रेक्ष्य में**

इस अध्याय में सर्वप्रथम अध्यासभाष्य के सामान्य सम्प्रत्ययों अध्यासभाष्य के भाष्यत्व , मंगलाचरण विप्रतिपत्ति निराकरण ,युष्मदस्मदप्रत्यय विचार, युष्मद-अस्मदप्रत्यय में तमःप्रकाशवद्विरुद्धता विचार, मिथुनीकरण –नैसर्गिकत्व- विचार इत्यादि का विवेचन किया गया है। इसके पश्चात् अध्यासभाष्य के प्रयोजन, अध्यास के लक्षण एवं स्वरूप, अध्यास के

भेद, अध्यास का कारण एवं चिदात्मा में अध्यास की सम्भावना तथा अध्यास के परिणाम इत्यादि विषयों पर भामतीकार तथा विवरणकार तथा कुछ स्थानों पर अन्य की दृष्टि से व्यापक विचार किया गया है।

आचार्य शंकरकृत ब्रह्मसूत्र –अध्यासभाष्य से सम्बद्ध समस्त विप्रतिपत्तियों का, समस्त अवधारणाओं का भामती एवं विवरण टीकाओं के आलोक में सुसम्बद्धरूप से प्रस्तुतीकरण एवं समग्रता से विश्लेषण का यह प्रथम प्रयास किया जा रहा है। यद्यपि आचार्य शंकर के गहन विचारों पर स्वमति से कुछ भी प्रकाशित करना अत्यन्त ही दुष्कर प्रयास है अतः प्रस्तुत अध्ययन में यदि कोई व्याकरणिक या वैचारिक अपरिपक्वता दृष्टिगोचर हो तो मैं सदैव विद्वानों के परामर्श के प्रति आकांक्षी रहुँगा। अन्त में यही निवेदन किया जा रहा है कि प्रस्तुत शोधकार्य किसी प्रकार के मौलिकता एवं नवीनता का दुराग्रह नहीं करता –

*कुतो वा नूतनं वस्तु, वयमुत्प्रेक्षितुं क्षमा।*

*वचोविन्यासवैचित्र्यमात्रमत्र विचार्यताम् ॥( न्यायमञ्जरी भाग १ पृ० १)*

अपितु आचार्य शंकर के अध्यासभाष्य के ज्ञान हेतु अत्यन्त लघु प्रयास ही है जिससे आचार्यशंकर के विमल भाष्य को प्राप्त कर हमारी वाणी भी पवित्रता को प्राप्त हुई है–

*आचार्य्यकृतिनिवेशनमपवधृतं, वचोऽस्मदादीनाम्।*

*रथ्योदकमिव गंगाप्रवाहपातः, पवित्रयति॥*

*(भामती श्लो० ७)*

# भूमिका

भारतीय मनीषियों के ज्ञानविज्ञान की आधारशीला श्रुति(वेद) है। श्रुति ही समस्तविधाओं का मूल है। श्रुति के पश्चात् भारतीयज्ञानपरम्परा में प्रस्थानत्रयी ने प्रकाशस्तम्भ का कार्य किया है –

१.श्रुतिप्रस्थान- उपनिषद्

२.स्मृतिप्रस्थान – श्रीमद्भगवद्गीता

३.न्यायप्रस्थान – ब्रह्मसूत्र

आचार्य शंकर ने प्रस्थानत्रयी पर भाष्य प्रस्तुत कर अद्वैतवेदान्त को प्रतिष्ठापित किया। अद्वैत वेदान्त में एकमात्र ब्रह्मन् या आत्मन् की सत्ता मानी गयी है क्यों कि वही एकमात्र त्रिकालाबाधित है । वह एक ,चेतन, साक्षी, सर्वव्यापी है –

*"एको देवः सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा ।*

*कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च" ॥*[1]

अब प्रश्न यह उपस्थित होता है कि यह एक, चेतन, साक्षी और निर्गुण आत्मा या ब्रह्म[2], अनेक सगुण जीवों, जड पदार्थों में कैसे भासित होता है? इस प्रमुख तत्त्वमीमांसीय समस्या के समाधान हेतु आचार्य शंकर ने ब्रह्मसूत्र पर भाष्य लिखने से पूर्व उपोद्घातरूप में अध्यासभाष्य का उपवर्णन किया तथा बताया कि वह एक चेतन ब्रह्म के अनेक जीवों एवं जड पदार्थों में भासित होने का कारण अस्मद्-युष्मद्प्रत्यय या सत्यानृत का मिथुनीकरणरूप

---

[1] श्वेताश्वतरोपनिषद्, गीताप्रेस,गोरखपुर, वि० सं० २०६६.

[2] "आत्मा च ब्रह्म" ब्रह्मसूत्रशांकरभाष्य,अनु० यतिवरभोलेबाबा, भारतीय विद्या प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथमभाग, पृ०८८,२००४.

अध्यास/अज्ञान/अविद्या[3] है। अद्वैत वेदान्त का प्रयोजन जीवब्रह्मैक्यगत अज्ञान की निवृत्ति एवं स्वस्वरूपानन्द की प्राप्ति[4] है। अज्ञान या अध्यास की निवृत्ति शास्त्र के माध्यम से होती है इसी लिए वेदान्तशास्त्र प्रवृत्त हुआ है – *"अस्यानर्थहेतोः प्रहाणाय आत्मैकत्वविद्याप्रतिपत्तये सर्वेवेदान्ता आरभ्यन्ते।"*[5]अनर्थ से आशय है कि वैदिक ऋषि के कथन तत्त्वमसि[6], एकमेवाद्वितीयम्[7], अयमात्मा ब्रह्म सर्वानुभूः[8] को भूलकर जीव जगत् में स्वयं को भिन्न मानकर लौकिक व्यवहार करता है। यह अध्यास के कारण होता है अतः अध्यास समस्त अनर्थों का हेतु है। शंकराचार्य ने अध्यासभाष्य में अध्यास का विवेचन करते हुए दर्शन की मूलभूत समस्या भ्रम का आनुभाविक एवं व्यावहारिक विश्लेषण किया है। आचार्य का कहना है कि समस्त लोकव्यवहार दो तत्त्वों के तादात्म्य या मिलन पर आधारित है- एक तो शुद्ध चैतन्य आत्मन् तत्त्व जो अहंप्रत्ययगोचर ,विषयी, चेतन, नित्य है, दूसरा अनात्मन् (देह, इन्द्रिय,अन्तःकरण् आदि) जो युष्मद्प्रत्ययगोचर विषय, जड, अनित्य है | यह युक्तियुक्त है कि विषयी आत्मन् तथा विषय अनात्मन् जो कि अन्धकार एवं प्रकाश की तरह परस्पर भिन्न स्वभाव वाले हैं इनका कदाचिदपि तादात्म्य सम्भव नहीं है – *"युष्मदस्मत्प्रत्ययगोचरयोः विषयविषयिणोः तमःप्रकाशवद्विरुद्धस्वभावयोः इतरेतरभावानुपपत्तौ सिद्दायां तद्धर्माणामपि सुतराम् इतरेतरभावानुपपत्तिः"* ।[9]जब आत्मन् और अनात्मन् का तादात्म्य सम्बन्ध असम्भव

---

[3] तमेतमेवंलक्षणमद्यासं पण्डिता अविद्येति मन्यन्ते ।" ब्रह्मसूत्रशांकरभाष्य, पृ० ५२.

[4] वेदान्तसार, व्या० बदरीनारायण शुक्ल, मोतीलाल बनारसीदास, नई दिल्ली, पृ०१२, २००८.

[5] ब्रहमसूत्रशांकरभाष्य, वही,पृ०५७ .

[6] छा० ६।८।७,गीताप्रेस, गोरखपुर,वि०स०,२०६८ .

[7] छा० ६।२।१ .

[8] बृ० २।५।१९ .

[9] ब्रह्मसूत्रशांकरभाष्य,अनु० यतिवरभोलेबाबा, भारतीय विद्या प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथमभाग, पृ०१०,२००४.

है तब उनके परस्पर धर्मों का अध्यास भी नही हो सकता । अतः यह मिथ्या[10] है परन्तु इनके तादात्म्य सम्बन्ध के बिना कर्तृत्व भोक्तृत्वादि गुणविशिष्ट जीव की उपपत्ति नहीं होगी । यदि जीव की उपपत्ति न हो तो लोकव्यवहार कैसे बनेगा? यह लोकव्यहार अध्यास नामक प्रकिया का परिणाम है जो माया/ अविद्या/अज्ञान का व्यापार है- *"अध्यासं अविद्या कार्यत्वात् अविद्या इति मन्यन्ते" ।*[11] यह अविद्या या माया बीजशक्ति है, अव्यक्त है, सदसद्विलक्षण, परमेश्वराश्रया है जिसमें स्वरूपज्ञान से रहित जीव सो रहे हैं – *अविद्यात्मिका हि बीजशक्तिरव्यक्तपदनिर्देश्या परमेश्वराश्रया मायामयी महासुषुप्तिः यस्यां स्वरूपबोधरहिताः शेरते संसारिणो जीवाः। तदेतदव्यक्तं क्वचिदाकाशशब्दनिर्दिष्टम् "एतस्मिन्नु गार्ग्याकाश ओतश्च प्रोतश्च (बृ०उ० ३/८/११) क्वचिदक्षरशब्दोदितम् "अक्षरात्परतः परः (मु०उ० २/१/२),क्वचिन्मायेति सूचितम् – "माया तु प्रकृतिं विद्यात्" (श्वे०उ० ४/१०) अव्यक्ता हि सा माया तत्त्वान्यत्वनिरूपणस्य अशक्यत्वात् ॥*[12]

संक्षेपशारीरकार सर्वज्ञात्मनयति के अनुसार इसी माया या अविद्या को तमस्, तिमिर, तमिस्त्र, जडिमा, अन्धता, निद्रा, अनृत, अज्ञान इत्यादि शब्दों से अभिहित किया जाता है-

*"चिद्वस्तुनश्चिति भवेत्तिमिरं तिमिस्त्रं, तामिस्त्रमन्धतमसं जडिमा तमिस्त्रा*

*माया जगत्प्रकृति रच्युतशक्तिराध्यं, निद्रा सुषुप्तिरनृतं प्रलयो गुणैक्यम् ॥*[13]

---

[10]सदसदविलक्षणत्वं मिथ्यात्वं- तत्त्वप्रदीपिका सम्पा०, योगीन्द्रानन्द, षडदर्शनप्रकाशन प्रतिष्ठान वाराणसी,१९७४.

[11] रत्नप्रभा, ब्रह्मसूत्रशांकरभाष्य,अनु० यतिवरभोलेबाबा, भारतीय विद्या प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथमभाग, पृ०५२,२००४.

[12] ब्रह्मसूत्रशांकरभाष्य, १।४।३ ,पूर्ववत्.

[13]- संक्षेपशारीरक १/३/८,सम्पा० वज्रेभाउ शास्त्री, चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी,पृ०१२५,1992.

अज्ञान कृत अध्यास को भगवद्गीता मे जीवों को मोहित करने के रूप में वर्णित किया है – *"नादत्ते कस्यचित् पापं न चैव सुकृतं विभुः*

*अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तवः"॥*

इस पर शंकर भाष्य करते हुए लिखते हैं - *"अज्ञानेन आवृतं ज्ञानं विवेकविज्ञानं तेन मुह्यन्ति करोमि कारयामि भोक्ष्ये भोजयामि इति एवं मोहं गच्छन्ति अविवेकिनः संसारिणो जन्तवः॥"*[14]

## (चित्र सं. 1) जीव के ज्ञातृत्व कर्तृत्व भोक्तृत्व की अध्यास-जन्यता

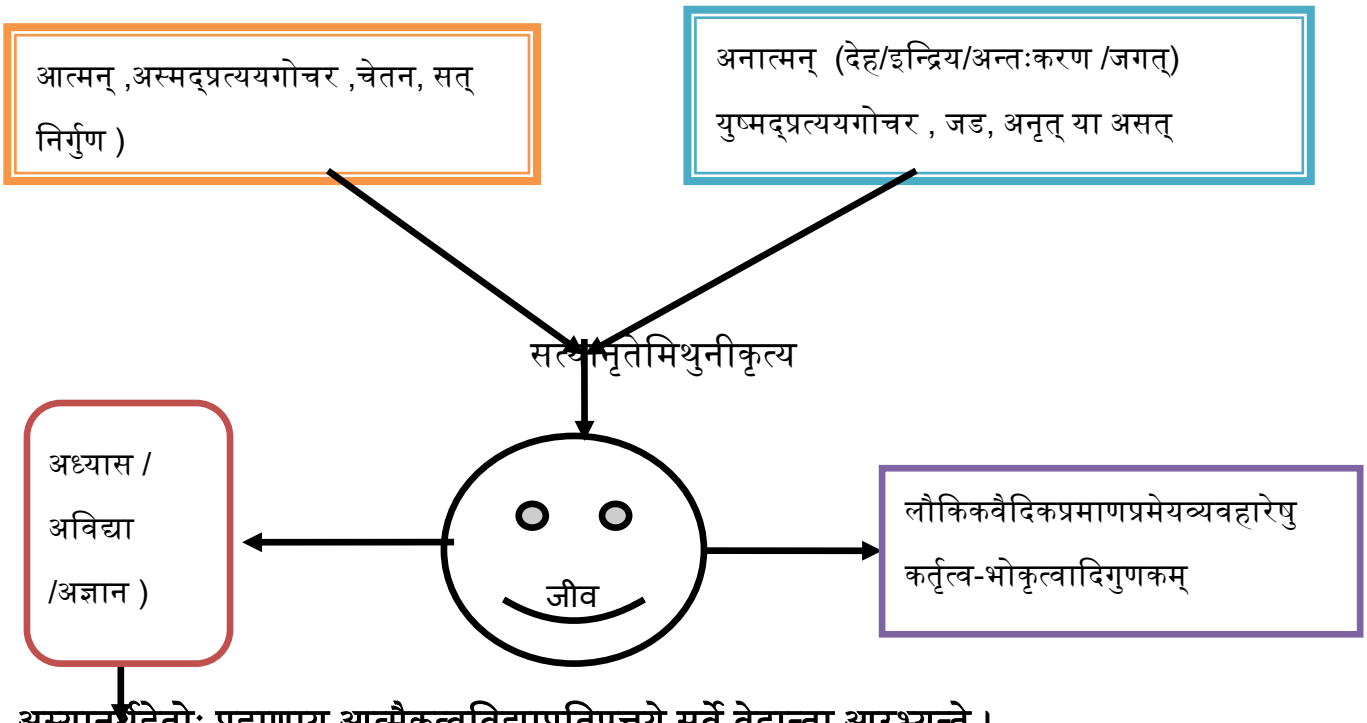


**अस्यानर्थहेतोः प्रहाणाय आत्मैकत्वविद्याप्रतिपत्तये सर्वे वेदान्ता आरभ्यन्ते ।**

स्रोत - ब्रह्मसूत्रशांकरभाष्य,अनु० यतिवरभोलेबाबा, भारतीय विद्या प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथमभाग, पृ०७२,२००४.

अतः यह सिद्ध हो जाने पर कि माया या अज्ञान के व्यापार अध्यास से आत्मन् पर अनात्मन् का आरोप हो जाता है और उसी से लोकव्यहार होता है जो मिथ्या है- *"विषयिणि चिदात्मके विषयस्य तद्धर्माणां चाद्ध्यासः , विषयिणस्तद्धर्माणां च विषये अध्यासो मिथ्येति भवितुं*

[14] भगवद्गीताशांकरभाष्य ५/१५, गीताप्रेस गोरखपुर,पृ० १५९,सं २०६६

*युक्तम्" ।*[15]अतः हमारा समस्त लोकव्यवहार सत्य आत्मन् और अनृत् अनात्मन् के मिथुनीकरण का परिणाम है जो अनादि मिथ्या-अज्ञान या अध्यास पर आधारित है – "*अत्यन्तविविक्तयोर्धर्माधर्मिणोर्मिथ्याज्ञाननिमित्तः सत्यानृते मिथुनीकृत्य, अहमिदं ममेदमिति नैसर्गिकोऽयं लोकव्यवहारः" ।*[16]

यद्यपि शंकरपूर्वदर्शनों में भ्रम को अत्यन्त असत् माना है परन्तु शंकर ने भ्रम के स्थान पर अध्यास शब्द का प्रयोग किया है और उसे मिथ्या या सदसदविलक्षण माना है जो अत्यन्त असत् न होकर प्रातिभासिक सत्ता वाला है। शंकराचार्य ने इस प्रकार की आपत्तियों को पूर्वपक्ष के रूप में उपस्थित करके उनका समुचित समाधान किया है। पूर्वपक्ष का आक्षेप है कि असत् माया या अज्ञान सत् ब्रह्म का व्यावहारिक रूप में कैसे भास करा सकता है? अतः जगत्, जीव, शास्त्र के असत् होने पर मोक्ष भी असत् हो जायेगा और उसका प्रतिपादन करने वाला अद्वैत वेदान्त भी असत्य हो जायेगा। अनृत वेदान्त शास्त्र के माध्यम से प्रतिपादित जीवब्रह्मैक्य भी असत्य हो जायेगा । अतः असत्य वेदान्तवाक्यों से सत्य ब्रह्म की प्राप्ति नहीं हो सकती – *कथं चानृतेन मोक्षशास्त्रेण प्रतिपादितस्य आत्मैकत्वस्य सत्यत्वमुपपद्येत ? कथं तु असत्यत्वेन वेदान्तवाक्येन सत्यस्य ब्रह्मात्मस्य प्रतिपत्तिरूत्पद्द्येत ?*[17] अतःअसत् अविद्या का व्यापर होने से अध्यास असत् है क्योकि असत् प्रयासों से कभी सत् की प्राप्ति नही हो सकती न कभी असत् वस्तु(अध्यास) में अर्थक्रियासामर्थ्य होता है क्यों कि क्या कभी किसी ने कहीं भी रज्जुरूप सर्प के द्वारा काटे जाने पर किसी को मरते हुए देखा है? या कभी किसी ने कहीं भी मृगमरीचिका से प्यास बुझाई या स्नान किया है? *"न हि रज्जु सर्पेण दंष्टो म्रियते। नापि मृगतृष्णिकाम्भसा पानावगाहनादिप्रयोजनं क्रियते"।*[18]

---

[15] ब्रह्मसूत्रशांकरभाष्य, उपोद्घात,पृ०२३. वही।

[16]ब्रह्मसूत्रशांकरभाष्य, उपोद्घात,पृ०२३. वही।

[17] ब्रह्मसूत्रशांकरभाष्य, २/१/१४,पृ०३४ वही।.

[18]ब्रह्मसूत्रशांकरभाष्य, २/१/१४,पृ ४३ वही ।

शंकराचार्य का उत्तर है कि इस प्रकार के आक्षेप प्रतिपक्षी के अज्ञान के कारण है। प्रतिपक्षी प्रतिभास ,व्यवहार और परमार्थ के भेद को नहीं समझ रहा है और उन्हे एक दुसरे से मिला रहा है। प्रतिभास और व्यवहार अपने अपने स्तर पर सत्य है। प्रतिभास व्यष्टिगत भ्रम है, व्यवहार या जगत् प्रपंच समष्टिगत भ्रम है, प्रतिभास जीव सृष्ट है, व्यवहार ईश्वरसृष्ट है। प्रतिभास साक्षिभास्य है, व्यवहार वृत्तिभास्य है।प्रतिभास की सत्ता उपलब्धि तक रहती है व्यवहार की सत्ता उपलब्धि के बाद भी बनी रहती है। प्रतिभास मानस और इन्द्रियार्थ सन्निकर्षरहित होता है तथा व्यवहार बाह्य और इन्द्रियार्थ सन्निकर्ष सहित होता है। प्रतिभास क्षीण अस्पष्ट और अल्पकालिक होता है जबकि व्यवहार तीव्र, स्पष्ट, दीर्घकालिक होता है। प्रतिभास का मिथ्यात्व व्यवहार से होता है और व्यवहार का मिथ्यात्व पारमार्थिक ब्रह्मात्मकता के अनुभव से होता है इसके पूर्व नहीं। रज्जुसर्प का मिथ्यात्व भ्रमनिवृत्ति के बाद तथा स्वप्न आदि का मिथ्यात्व जाग्रत अवस्था में आने पर होता है उसी प्रकार जगत् प्रपंच का मिथ्यात्व भी जीवब्रह्मैक्य के ज्ञान से होता है । जीवब्रह्मैक्य के ज्ञान से पूर्व समस्त स्वपनादि प्रपंच तथा लौकिक वैदिक व्यवहार अव्याहत रूप से चलता रहता है –– *"सर्वव्यवहाराणामेव प्रागब्रह्मात्मताविज्ञानात् सत्यत्वोपपतेः स्वपनव्यवहारस्येव प्राक् प्रबोधात्।प्रागब्रह्मात्मताप्रबोधात् उपपन्नः सर्वो लौकिको वैदिकश्च व्यव्हारः।"*[19] दूसरा प्रतिपक्षी का जो कथन है कि प्रतिभास पदार्थ अर्थक्रियासमर्थ नही है तो वह असत्य है। व्यवहार तथा प्रतिभास अपने-अपने स्तर पर अर्थक्रिया समर्थ है । रज्जुसर्प भ्रमदशा में भ्रान्त व्यक्ति को भयभीत बना देता है, वह व्यक्ति स्वयं को सर्पदंष्ट समझकर भ्रान्त दशा मे मरणासन्न मान सकता है, यदि रज्जुसर्प पर पैर पडते समय वहाँ कोइ नुकीला पत्थर हो या कील पाँव में छेद करके रक्त निकाल दे, तो सर्पविशप्रवेश की शंका से हृदयगति भी रुक सकती है। स्वप्न जल से स्वप्न की तृषा आनन्द से तृप्त होती है। स्वप्न दृष्ट सिंह की गर्जना से या

[19]बृह्मसूत्रशांकरभाष्य, २/१/१४,पृ ४३ वही

अन्य भयावह स्वप्न से नींद खुल जाती है और भय कम्प, रोमांच की अनुगूँज जाग्रत अवस्था में भी कुछ देर तक चलती रहती है।

अतः आचार्य शंकर ने सिद्ध किया कि अध्यास की सत्ता है और इसी अविद्या के व्यापाररूप अध्यास में जीव जन्म लेता है, व्यवहार करता है, मृत्यु को प्राप्त होता है तथा पुनः जन्म लेता है और यह चक्र निरन्तर रूप से चलता रहता है तथा यह जीवब्रह्मैक्य रूप अद्वैत वेदान्त के प्रयोजन में बाधक है । अतः यह समस्त अनर्थों का मूल है और इसी के प्रहाण या नाश के लिए वेदान्त शास्त्र प्रवृत्त हुआ है *"अस्यानर्थहेतोः प्रहाणाय आत्मैकत्वविद्याप्रतिपत्तये सर्वे वेदान्ता आरभ्यन्ते"* । इसी पर टीका करते करते हुए गोविन्दाचार्य का कहना है अध्यास का विश्लेषण कर दिये जाने पर जीवब्रह्मैक्य में किसी भी प्रकार का संशय नही रहेगा *"एवमध्यासोक्त्या ब्रह्मात्मैक्ये विरोधाभावेन विषयप्रयोजनत्वात् शास्त्रमारम्भणीयमिति दर्शितम्"*[20]॥ अध्यास का क्या स्वरुप है? क्या लक्षण है? कितने भेदोपभेद हैं? चिदात्मा पर अध्यास की सम्भावना कैसे होती है व उसका हेतु क्या है और उसका समाधान कैसे हो? इन वेदान्त के प्रयोजनस्वरूप प्रश्नों पर विचार करने हेतु आचार्य शंकर ने सूत्रों पर भाष्य करने से पूर्व उपोद्घातस्वरूप अध्यासभाष्य को उपस्थापित कर अध्यास का व्यावहारिक एवं आनुभाविक विश्लेषण में प्रस्तुत किया है। अतः प्रस्तुत शोधकार्य में उसका विश्लेषण एवं विवेचन वाचस्पतिमिश्र कृत भामती एवं प्रकाशात्मयति कृत विवरण टीकाओं के आलोक में किया जायेगा जिससे अध्यास के विषय में भ्रमरहित एवं स्पष्ट मार्ग प्रस्तुत हो सके । प्रस्तुत शोध कार्य में भामती एवं विवरण टीकाओं के अतिरिक्त रामानन्द यति(गोविन्दानन्दयति) कृत रत्नप्रभा, अमलानन्द कृत कल्पतरू, अप्पयदीक्षित कृत परिमल, आनन्दबोध भट्टारक कृत न्यायमकरन्द तथा चित्सुखाचार्य कृत तत्त्वप्रदीपिका या चित्सुखी इत्यादि टीकाएँ भी यथास्थान तथा यथोपगितानुसार उपादेय है

[20] ब्रह्मसूत्रशांकरभाष्य,उपोद्घात,पृ० ५८, वही.

# अध्याय- १

# ब्रह्मसूत्र के भाष्य एवं टीकाओं का पर्यावलोकन

# अध्याय१. ब्रह्मसूत्र के भाष्य एवं टीकाओं का पर्यावलोकन

## १.१. बादरायण कृत ब्रह्मसूत्र

भारतीय परम्परा में अध्यात्मिक जीवन का अत्यन्त महत्त्व रहा है। अध्यात्म की इस प्राचीन आर्षपरम्परा में ज्ञानस्वरूप ब्रह्म का निर्बाध अस्तित्व स्वीकार किया गया है। आध्यात्मिक चिन्तन में साहित्य की अभिधा से वेदान्तशास्त्र विभूषित है जिसका आधार प्रस्थानत्रयी है - १.श्रुतिप्रस्थान – उपनिषद्,

२.स्मृतिप्रस्थान – श्रीमद्भगवद्गीता

३. न्यायप्रस्थान – ब्रह्मसूत्र

ब्रह्मसूत्र को न्यायप्रस्थान कहने से आशय (वेदान्त) उपनिषद् प्रतिपाद्य ब्रह्म को न्याय शैली या तार्किक रूप से अभिव्यक्त करने से है। ब्रह्मसूत्र के प्रणेता आचार्य बादरायण माने जाते है। इस प्रमाण में ब्रह्मसूत्र ४/४/२२ की अवतरणिका में स्पष्ट उल्लेख है- "*उत्तरं भगवान् बादरायण आचार्यः पठति अनावृत्ति शब्दादनावृत्ति शब्दात्*[21] । इसके अतिरिक्त ब्रह्मसूत्र १/३/२६ में '*तदुपर्यपि बादरायणः सम्भवात् '*तथा १/३/३३ '*भावं तु बादरायणोऽस्ति हि'* में बादरायण का उल्लेख मिलने से ब्रह्मसूत्र के बादरायण कर्तृत्व में सन्देह नहीं हैं।

### १.१.१.ब्रह्मसूत्र के अनेकाभिधान

ब्रह्मसूत्र को कई नामों से अभिहित किया जाता है – १. वेदान्त-सूत्र क्योंकि वेदान्त अर्थात् उपनिषद् को सूत्रात्मक रूप में स्पष्ट करने के कारण। २.शारीरक-सूत्र- शरीरमेव शरीरकम् तत्र भवः शारीरको जीवः अर्थात् जीव की प्रकृति तथा अस्तित्व का उल्लेख करने के कारण,

[21] ब्रह्मसूत्रशांकरभाष्य (४/४/२२),व्या० हनुमान प्रसाद षटशास्त्री, चौखम्भा विद्याभवन , वाराणसी पृ० १०७५ .

३.भिक्षु-सूत्र - क्योंकि ये ब्रह्मावगति हेतु सन्यासी अधिकारियों हेतु वर्णित होने के कारण। ४.उत्तरमीमांसासूत्र – वेद के उत्तरभाग अर्थात् ज्ञानकाण्ड को आधार करने वाला शास्त्र वेदान्त या उत्तरमीमांसा वही सूत्ररूप में निबद्ध उत्तरमीमांसासूत्र कहते है इन समस्त अभिधानों में सर्वाधिक ५. ब्रह्मसूत्र अभिधान ही लोकप्रिय हुआ है क्योंकि इन सूत्रों का प्रतिपाद्य शुद्ध ब्रह्म है जैसा प्रथम सूत्र से विदित है – "*अथातो ब्रह्मजिज्ञासा*" |[22] स्वयं आचार्य शंकर ने प्रकृत सूत्र भाष्य करते हुए लिखा है – "*इह तु भूतं ब्रह्म जिज्ञास्यं नित्यत्वान्न पुरुषव्यापारतन्त्रम्*" |[23]

## १.१.२.बादरायण तथा वेदव्यास के अभिन्नत्व पर विचार

बदरीवन में वेदव्यास का विशाल शिक्षा केन्द्र था। बदरीवन से उपलक्षित प्रदेश में निवास करने के कारण वेदव्यास का बादरायण नाम प्रसिद्ध हुआ। वही पर इन्होने वेदान्तसूत्र का ब्रह्मसूत्र का प्रणयन किया यह प्रदेश अभी भी बदरिकाश्रम या बदरीनाथ नाम से प्रसिद्ध है। तत्त्वदीपन टीका में अखण्डानन्द ने लिखा है –

*" द्वीपे बदरिकाश्रमे बादरायणमच्युतम्, अवतीर्णिर्णो महायोगी सत्यवत्यां पराशरात् चकार ब्रह्मसूत्राणि येषा सूत्रत्वमञ्जसा ..... .....*"[24]॥

परन्तु कुछ विद्वान् इस बात से असहमत है कि कृष्ण द्वैपायन वेदव्यास ही ब्रह्मसूत्र के प्रणेता बादरायण है वे इन दोनो को भिन्न मानते हैं। क्यों कि इस विषय में बाधक युक्तियाँ परिलक्षित होती हैं।जैसे – "*स्मृतेश्च" (१/२/६)* इस सूत्र में परामृष्ट स्मृति शब्द के सम्बन्ध में आचार्य शंकर लिखते हैं **"***स्मृतिश्च ...." ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशे अर्जुन तिष्टति। भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया" (भग० गी० १८/१२)* । आचार्य शंकर के इस

---

[22] ब्रह्मसूत्र १/१/१, अनु० यतिवरभोलेबाबा, भारतीय विद्या प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथमभाग, २००४ , पृ० ६०.

[23] ब्रह्मसूत्रशांकरभाष्य (१/१/१), अनु० यतिवरभोलेबाबा, भारतीय विद्या प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथमभाग, २००४ , पृ० ७२.

[24] ब्रह्मसूत्रशांकरभाष्य -भूमिका,व्या० हनुमान प्रसाद षटशास्त्री, चौखम्भा विद्याभवन , वाराणसी पृ० ८.

कथन से यह निष्कर्ष निकलता है कि भगवद्गीता जो भीष्मपर्व का ४३ वाँ अध्याय है ब्रह्मसूत्र सूत्र  पूर्ववर्ती है अर्थात् वेदव्यास ब्रह्मसूत्र के प्रणेता बादरायण के पूर्ववर्ती हैं अर्थात् दोनो भिन्न व्यक्ति हैं।

*"वेदव्यासश्चैवमैव स्मृति"* (१.३.२९) *"भावं तु बादरायणोऽस्तिहि"* (१-३-२९)  इन दोनों ब्रह्मसूत्रों में वेदव्यास तथा बादरायण का पृथक् -पृथक् उल्लेख हुआ है। इसी प्रकार मनुव्यास प्रभृतिभिः[25], स्मरन्ति च व्यासादयो[26] यथा इन पक्तिंयों से स्पष्ट है कि  वेदव्यास तथा बादरायण वेदान्तसूत्र रचयिता से भिन्न हैं।

साधक प्रमाण – प्रथम तो यदि पूर्वविप्रतिपत्ति का निराकरण करना हो तो यह कहा जा सकता है भाष्यकार द्वारा  'स्मृतेश्च' सूत्र के भाष्य में  गीता के श्लोक को उद्धृत कर जो यह व्यास  के बादरायण से पूर्वत्व की  कल्पना गयी वह उचित नहीं है क्यों कि क्या कोई लेखक अपनी कृति को दृष्टान्त के रूप में उपन्यस्त नही कर सकता ? दूसरा तर्क यह कि श्रीमद्भगवद्गीता में  एक श्लोक है – "*ऋषिभिर्बहुधा गीतं छन्दोभिर्विविधैः पृथक्।*

*ब्रह्मसूत्र पदैश्चैव हेतुमद्भिर्विनिश्चितम्"  ॥*

यहाँ आचार्य शंकर भाष्य करते हुए लिखते हुए लिखते हैं – *"ब्रह्मणः सूचकानि वाक्यानि ब्रह्मसूत्राणि तैः पद्यते ज्ञायते ब्रह्म इति पदानि इत्येवमादिभिः ब्रह्मसूत्रपदैः आत्मा ज्ञायते"।* [27] यहाँ ब्रह्मसूत्र पद का उल्लेख करने से क्या यह अनुमान लगाना उचित होगा कि ब्रह्मसूत्र भगवद्गीता के पूर्ववर्ती हैं ? यदि ऐसा माना जाता है तो पूर्ववर्ती बात से विरोध होगा।अतः इस समस्या का समाधान केवल बादरायण व वेदव्यास को अभिन्न मानने से सम्भव है। दूसरा जो दृष्टान्त दिया गया कि बादरायण व व्यास का पृथक्-पृथक् नामोल्लेख करना दोनो

---

[25] २/१/१२ पर शांकरभाष्य.

[26] २/३/३३ पर शांकरभाष्य.

[27] श्रीमद्भगवद्गीता १३/४ (शांकरभाष्यसहित) , अनु, जयदयालगोयन्दका, गीताप्रेस गोरखपुर, वि० सं० २०६५, पृ० १६७.

के अलग- अलग व्यक्ति होने का सूचक है वह भी उचित नही है क्यों कि बादरायण को कई परवर्ती व्याख्याकारों ने पाराशर्य[28] (पाराशर के पुत्र) भी कहा है तो तब भी वे भिन्न माने जा सकते हैं। इन सब बाधक प्रमाणों की अपेक्षा इस बात के साधक प्रमाण अधिक हैं जो यह सिद्ध करते हैं कि कृष्णद्वैपायन वेदव्यास ही बादरायण हैं ।

महर्षि पाणिनि का सूत्र है – *"पाराशर्यशिलालिभ्यां भिक्षुनटसूत्रयोः" (अष्टा० १/३/११०)* तृतीयासमर्थाभ्याम् पाराशर्यशिलालिभ्याम् प्रातिपदिकाभ्याम् यथासंख्यं भिक्ष्युनटसूत्रयोः प्रोक्तयोर्णिनि प्रत्ययो भवति । उदा० *पाराशर्यो भिक्षवः । शैलालिनो नटाः ॥*[29] यहाँ पाराशर्य कृत भिक्षुसूत्र का परिचय मिलता है जो पाणिनि के समय लोकप्रियता प्राप्त कर चुके हैं । पाराशर्य से आशय पाराशर के पुत्र वेदव्यास है तथा भिक्षुसूत्र ब्रह्मसूत्रों का अन्य अभिधान है। नागेश भट्ट ने शेखर टीका में भिक्षुसूत्र को परिभाषित करते हुए लिखा है कि वे सूत्र जिनके ज्ञान पर ब्रह्म रूप से सर्वविज्ञात हो जाने पर भिक्षुत्व ( सन्यासित्व) की प्राप्ति होती है – भिक्षुसूत्रम् भिक्षुत्वसम्पादकम् सूत्रम् ,यथा नटसूत्रज्ञाने नटत्व सम्पत्तिः एवं तज्ज्ञाने ब्रह्मरूपत्वेन सर्वज्ञानात्कर्मस्वनादरेण भिक्षुत्वसम्पत्तेः[30] । पराशर के पुत्र वेदव्यास हैं इस विषय में विष्णुपुराण प्रमाण है पराशर ने अपने समय तक हुए अट्ठाईस (२८) वेदव्यासों को भगवान् विष्णु का अवतार मानते हुए अपने समय तक हुए अट्ठाईस वेदव्यासों को भगवान् व्यास का अवतार बताते हुए अपने पिता महर्षि शक्ति को पच्चीसवाँ, अपने को छब्बीसवाँ तथा सत्ताइसवाँ जातुकर्ण तथा अपने पुत्र कृष्णद्वैपायन को अट्ठाईसवाँ व्यास कहा है –

---

[28] पाराश्यर्यवचः सुधामुपनिषद्दुग्धाब्धिमध्योद्धृताम् , श्रीभाष्य,श्लोक२ , उद्धृत- ब्रह्मसूत्रशांकरभाष्य -भूमिका,व्या० हनुमान प्रसाद षटशास्त्री, चौखम्भा विद्याभवन , वाराणसी पृ० ८.

[29] अष्टाध्यायी (१/३/११०),अष्टाध्यायी भाष्य ,प्रथमावृत्ति द्वितीय भाग, ले० ब्रह्मदत्त जिज्ञासु,रामलाल कपूर ट्रस्ट, सोनीपत हरियाणा वि० सं० २०६५ , पृ० १७० ।

[30] ब्रह्मसूत्रशांकरभाष्य- भूमिका,व्या० हनुमान प्रसाद षटशास्त्री, चौखम्भा विद्याभवन , वाराणसी पृ० ६.

*"द्वापरे द्वापरे विष्णुर्व्यासरूपी महामुने, वेदमेकं सुबहुधा कुरुते जगतो हितः*

*तस्मादस्मत्पिता शक्तिर्व्यासरूपी महामुनेः, जातुकर्णोऽभवन्मतः कृष्णद्वैपायनस्ततः*

*अष्टाविंशतिरित्येते वेदव्यासाः पुरातनाः ....."॥*[31]

भामतीकार ने मंगलाचरण करते हुए ब्रह्मसूत्र के प्रणेता के रूप में वेदव्यास की वन्दना की है- "*ब्रह्मसूत्रकृते तस्मै, वेदव्यासाय वेधसे*

*ज्ञानशक्त्यवताराय नमो भगवते हरेः ॥* [32]

*पंचपादिकाकार* ने भी ब्रह्मसूत्र का कर्ता वेदव्यास को ही माना है –

*"नमः श्रुतिशिरःपद्मषण्डमार्तण्डमूर्तये ।*

*बादरायणसंज्ञाय मुनये शमवेश्मने" ॥* [33]

पंचपादिकाविवरणकार प्रकाशात्म यति की व्यास वन्दना- *तं व्यासं जगत्यपूर्वभानुम्*[34] ॥

रत्नप्रभाकार गोविन्दानन्द मंगलाचरण में कहते है -

**"***श्रीशंकरं भाष्यकृतं प्रणम्य व्यासं हरिं सूत्रकृतं च वच्मि*" ॥[35]

---

[31] विष्णुपुराण ३/३/५, ३/३/१९, भामती, व्या० स्वामी योगीन्द्रानन्द, चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी, पृ० २.

[32] भामती पृ० ३

[33] पंचपादिका,अनु० किशोरीलाल स्वामी, रामतीर्थ मिशन, देहरादून, २००१, पृ० १३६.

[34] पंचपादिकाविवरण, अनु० किशोरीलाल स्वामी, रामतीर्थ मिशन, देहरादून, २००१, पृ० २.

[35] ब्रह्मसूत्रशांकरभाष्य (**रत्नप्रभा** टीका सहित),अनु० यतिवरभोलेबाबा, भारतीय विद्या प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथमभाग, २००४ पृ० २ .

आनन्दगिरि कृत शारीरक भाष्य पर टीका का श्लोक ५-

*"श्रीमद्व्याससुनिः पयोनिधिरसौ सत्सूक्तिपङ्क्तिस्फूरन्*

*मुक्तानामनवद्यहृद्यविपुलप्रद्योतिविद्यामणिः ॥* [36]

श्रीभाष्य श्लोक २- "*पाराशर्यवचः सुधामुपनिषद् दुग्धाब्धिमध्योद्धृताम्*

*संवाराग्निविदीपनव्यपगतप्राणात्मसञ्जीविनीम्" ॥* [37]

उपर्युक्त दृष्टान्तों से ऐसा अनुमान नहीं लगाया जाना चाहिए कि केवल शंकरोत्तर काल में व्यास और बादरायण को अभिन्न व्यक्ति के रूप के माना जाता था। अपितु यह परम्परा तो आचार्य शंकर से बहुत प्राचीन है।

महाभारत के शान्ति पर्व वार्ष्णेर्यान्तर्गत यह उल्लेख आया है कि युग के अन्त में जो वेद और इतिहास अन्तर्निहित हो गये थे उनको युग के प्रारम्भ होने पर तपः पूत ऋषियों ने परमात्मा की कृपा से प्राप्त किया। अनन्तर यह बताया है कि किस ऋषि ने किस शास्त्र का प्रणयन किया। इसमें यह बताया है कि वेदान्त और कर्मयोग को कृष्णद्वैपायन वेदव्यास ग्रहण किया-

*न्यायतन्त्रं तु कात्स्न्येर्न गौत्तमो वेदतत्त्वतः*

*वेदान्तकर्म योगञ्च वेदविद्ब्रह्मविद्ब्रह्मविद्विभुः।*

*द्वैपायनो निजग्राह शिल्पशास्त्रं भृगुः पुनः*[38] ॥

---

[36] ब्रह्मसूत्रशांकरभाष्य , व्या० हनुमान प्रसाद षटशास्त्री, चौखम्भा विद्याभवन , वाराणसी, २०१०, पृ० ८.

[37] पूर्ववत् .

[38] महाभारत शान्तिपर्व, वार्ष्णेयाध्याय, १२/१२१/३४, उद्धृत – वेदान्त दर्शन का इतिहास, ले०उदयवीरशास्त्री, विजयकुमार गोविन्दराम हासानन्द, नईदिल्ली, पृ० ९८.

मीमांसासूत्र ( औत्पत्तिकसूत्र १/१/५) में बादरायण का उल्लेख हुआ है जिसे कुमारिलभट्ट ने श्लोकवार्तिक में व्याख्या करते हुए पाराशर्य बताया है इसी पर टीका करते हुए उम्बेक ने इसे और स्पष्ट कर दिया है – "*व्यासवचनेन दर्शयति तथा चेति ।* [39]

## १.१.३. ब्रह्मसूत्रोक्त वेदान्त की सुदीर्घ परम्परा

अतः यह सिद्ध हो जाने पर कि कृष्णद्वैपायन वेदव्यास ही ब्रह्मसूत्र के प्रणेता बादरायण हैं अब इस पर चर्चा की जा रही है कि वेदान्त की यह परम्परा बादरायण से कितनी प्राचीन है ब्रह्मसूत्रकार आचार्य बादरायण ने वेदान्त की सुदीर्घ अध्यात्म परम्परा का परिचय सूत्रों मे उन आचार्यों का नामोल्लेख पूर्वक किया है[40] –

१.आत्रेय ३/४/४४ .

२.आश्मरथ्य १/२/२६ .

३.औड्रलोमि १/४/२१, ३/४/४५, ४/४/६ .

४.काष्णाजिनि ३/१/९ .

५.काशकृत्स्न १/४/२२ .

६.जैमिनि १/२/२८, १/३/३१,१/४/१८, ३/२/४०,३/२/४, ४०, ४/३/१२, ४/४/५,११.

७.बादरि १/२/३०,३/१/११, ४/३/७, ४/४/१०.

---

39 धर्माधर्मिकत्वाभ्यां पीडानुग्रहकारिणौ ।

प्रसिद्धौ हि तथा चाह पाराशर्योऽत्र वस्तुनि ॥ (श्लो० वा०, मीमांसासूत्र , औत्पत्तिकसूत्र १/१/५), वेदान्तदर्शन का इतिहास, पृ०९९.

40 वेदान्तदर्शन का इतिहास, पृ० १३४.

**काल-निर्णय[41] -**

- जैकोबी के अनुसार ब्रह्मसूत्र की रचना २५० से ४५० शताब्दी के भीतर हुई इस मत के समर्थन में उन्होने यही युक्ति दी है कि इसमें अन्य दार्शनिक सिद्धान्तों का खण्डन किया है।
- कीथ के अनुसार इनका समय अधिक से अधिक २०० शताब्दी हो सकता है। फ्रेजर के अनुसार इसका समय ४०० ईसा पूर्व है।
- मैक्समूलर इनका समय ३०० ईसा पूर्व स्वीकार किया है ।
- अभयकुमार गुहा इनका समय ६०० ईसा पूर्व मानते हैं।
- दासगुप्ता के अनुसार ब्रह्मसूत्र का समय २०० ईसा पूर्व है।

निष्कर्ष – यहाँ चर्चित समस्त भारतीय एवं पाश्चात्य विचारों पर दृष्टिपात करने पर यह जा सकता है कि आचार्य बादरायण कृत ब्रह्मसूत्रों का काल अनिश्चित है। तथापि यह कहा जा सकता है कि महर्षि जैमिनि ने मीमांसासूत्रों[42] में बादरायण का उल्लेख किया है तथा बादरायण ने जैमिनी का उल्लेख किया है। अतः दोनो को समकालीन मानना अधिक समीचीन दृष्टिगोचर होता है। इसी को आधार कर सेन दास गुप्ता ने इनका समय २०० ईसा पूर्व निर्धारित किया है जो उपर्युक्त चर्चित मतों में सबसे अन्तिम मत है। यही मत स्वामी योगीन्द्रानानन्द का भामती टीका की व्याख्या से पूर्व भूमिका मे उल्लिखित है।

---

[41] ब्रह्मसूत्रशांकरभाष्य –भूमिका पृ० ११.

[42] मीमांसासूत्र १/१/५, भामती भूमिका –पृ० ५

## १.२ शंकरपूर्व ब्रह्मसूत्र भाष्यकार

वर्तमान में ब्रह्मसूत्रों पर सबसे प्राचीन एवं प्रामाणिक भाष्य आचार्य शंकर कृत शारीरकभाष्य माना जाता है। परन्तु वेदान्त के प्राचीन साहित्य के अध्ययन से पता चलता है कि आचार्य शंकर से पूर्व कई भाष्य लिखे जा चुके थे। इनमें से कुछ भाष्य तो बौद्ध दर्शन के प्रादुर्भाव से पूर्व लिखे जा चुके थे[43]। उनके कुछ नाम इस प्रकार हैं –बोधायन, उपवर्ष, भर्तृप्रपञ्च, सुन्दरपाण्डेय, द्रमिड, भारुचि, ब्रह्मानन्दी, टङ्क, भर्तृमित्र, भर्तृहरि, ब्रह्मदत्त, गुहदेव, कपर्दी आदि। यहाँ विस्तारभय से बचने के लिए इन भाष्यकारों के सैद्धान्तिक व ऐतिहासिक काल निर्णय पर चर्चा न करके केवल यह जानने का प्रयास किया जा रहा है कि हम क्यों तथा किस सन्दर्भ में इन्हे भाष्यकार मानते हैं या इनका उल्लेख वेदान्तसाहित्य में कहाँ मिलता है।

१.वृत्तिकार बोधायन –

सम्भवतः ब्रह्मसूत्रों के अभी तक ज्ञात व्याख्याकारों में सबसे प्राचीन बोधायन है। आचार्य रामानुज ने 'श्रीभाष्य' नामक ब्रह्मसूत्र-व्याख्या के प्रारम्भिक भाग में लिखा है- भगवान् बोधायन द्वारा रचित विस्तीर्ण ब्रह्मसूत्रवृत्ति को पूर्वाचार्यों ने संक्षिप्त किया है। उनके प्रदर्शित मत के अनुसार सूत्राक्षरों की व्याख्या की जाती है।[44] आचार्य शंकर ने यद्यपि बोधायन का कहीं नामोल्लेख नहीं किया, परन्तु कतिपय सूत्रों के भाष्य में की गयी आलोचनाओं को शांकरभाष्य के विवरणकारों ने 'वृत्तिकार' की आलोचना बताया है।[45]

---

[43] वेदान्तदर्शन का इतिहास, पृ० २

[44] भगवद्बोधायनकृतां विस्तीर्णां ब्रह्मसूत्रवृत्तिं पूर्वाचार्याः संचिक्षिपुः तन्मतानुसारेण सूत्राक्षराणि व्याख्यायन्ते। (श्रीभाष्य १।१।१।)

[45] ब्रह्मसूत्रशांकरभाष्य, ४।३।१४।

२.आचार्य उपवर्ष-

यह प्रमाणित होता है कि आचार्य उपवर्ष ने जैमिनीय मीमांसासूत्रों तथा बादरायण के ब्रह्मसूत्रों पर व्याख्या-ग्रन्थ लिखे थे। 'प्रपंचह्रदय' ग्रन्थ के लेख के अनुसार यह पता लगता है कि उपवर्ष का व्याख्याग्रन्थ 'कृतकोटि' नामक विस्तृत बोधायनवृत्ति का संक्षेप था। आचार्य रामानुज के श्रीभाष्य में 'वृत्तिकार' अथवा 'वाक्यकार' के नाम से जो उद्धरण दिये गये हैं, उनको आज तक विद्वान् बोधायनवृत्ति के सन्दर्भ मानते आये हैं। भगवान् बोधायन द्वारा रचित विस्तीर्ण ब्रह्मसूत्रवृत्ति का पूर्वाचार्यों ने संक्षेप किया, उनके मत के अनुसार सूत्राक्षरों की व्याख्या की जाती है। इस विवरण से ज्ञात होता है, रामानुज के पूर्ववर्ती आचार्यों ने बोधायनवृत्ति का संक्षेप किया था। प्रपंचह्रदय ग्रन्थ के अनुसार उस वृत्ति का संक्षेपकर्ता आचार्य उपवर्ष है। मीमांसादर्शन (१।१।५) के भाष्य में शबरस्वामी ने लिखा है-"अथ गौः इत्यत्र कः शब्दः? गकारौकारविसर्जनीया इति भगवानुपवर्षः"। शब्द से अर्थ का बोध कराने में केवल उच्चरित एवं श्रूयमाण वर्ण निमित्त होते हैं।

बोधायन तथा उपवर्ष की अभिन्नता- श्री म. प. स. कुप्पूस्वामी शास्त्री ने अपने एक[46] लेख में यह प्रमाणित करने का प्रयास किया है कि बोधायन और उपवर्ष एक व्यक्ति के दो नाम थे- उपवर्ष सांस्कारिक नाम तथा बोधायन गोत्रनाम। प्राचीन काल में अनेक अन्य[47] व्यक्तियों के ऐसे नाम देखे जाते हैं। अपने कथन को प्रमाणित करने के लिये लेखक का अधिक बल वेदान्तदेशिक नामक आचार्य की एक पंक्ति पर है, जो उसने आचार्य रामानुज के श्रीभाष्य पर लिखी अपनी 'तत्त्वटीका' नामक रचना में दी है। वह सन्दर्भ इस प्रकार है-

---

[46]. वेदान्त दर्शन का इतिहास,पृ. ४६५-४६८।

[47] उक्त लेख में उदाहरणार्थ दिये गये नाम : १- काश्यप-कणाद-उलूक। २- वात्स्यायन-पक्षिल स्वामिन्। ३- आत्रेय-ब्रह्मनन्दिन्-टंक। ४- अक्षपाद-गौतम।

"वृत्तिकारोपज्ञं स्वमतमाह-शब्दस्येति । अपिर्दूषणसमुच्चयार्थः । अत्र शाबरम्- 'गौरित्यत्र कः शब्दः ? गकारौकारविसर्जनीयाः' इति भगवानुपवर्षः । वृत्तिकारस्य बोधायनस्यैव हि उपवर्ष इति स्यान्नाम "।[48]

३.आचार्य गुहदेव-

वेदान्त परम्परा के आचार्यों में आचार्य गुहदेव के नाम का उल्लेख वैष्णव सम्प्रदाय के ग्रन्थों में उपलब्ध होता है। आचार्य रामानुज रचित वेदार्थ-संग्रह[49] में अन्य कतिपय प्राचीन आचार्यों के नामों के साथ गुहदेव का उल्लेख हुआ है। इन आचार्यों के नामों के साथ 'भगवत्' पद का प्रयोग होने से प्रतीत होता है- आचार्य रामानुज इन पूर्ववर्ती आचार्यों के प्रति अपने अन्तरात्मा में आदरातिशय की भावना रखते थे। आचार्य भारुचि के प्रसंग में यह उल्लेख किया गया है कि वेदान्त परम्परा के आचार्यों की नाम सूची में कालक्रमानुसार व्यास एवं बोधायन के अनन्तर तथा भारुचि से पूर्व आचार्य गुहदेव का नाम अंकित किया गया है।[50]

४.आचार्य भारुचि-

अध्यात्म परम्परा के आचार्यों में भारुचि का नाम प्रतिष्ठा के साथ लिया जाता है। वैष्णव सम्प्रदाय के वैदान्तिक साहित्य में इस आचार्य का विशेष रूप से उल्लेख हुआ है। आचार्य रामानुज ने अपनी रचना वेदार्थसंग्रह[51] में कतिपय अपने पूर्ववर्ती प्राचीन वेदान्ताचार्यों का उल्लेख किया है।[52] उन मूर्द्धन्य आचार्यों में भारुचि का नाम है। आचार्य रामानुज द्वारा बडे

---

[48] तत्त्वटीका, कांजीवरम् ओरियण्टल लाइब्रेरी इन्स्टिट्यूशन सीरीज, नं. ६, तैलुगु संस्करण, १९०६ । सुदर्शन प्रैस, कांजीवरम् । द्वितीय भाग, पृ. १४९, पंक्ति ७-१० ।

[49] वेदार्थ संग्रह, पृ. १९६, श्री राघवाचार्य द्वारा सम्पादित, आचार्यपीठ, बरेली संस्करण, संवत् २०१८ ।

[50] "व्यास-बोधायन-गुहदेव-भारुचि-ब्रह्मनन्दि-द्रमिलाचार्य-श्रीपरांकुशनाथ-यामुनमुनि-यतीश्वर प्रभृतीनां मतानुसारेण" इत्यादि । यतीन्द्रमतदीपिका, पृ. १, वाराणसी संस्करण , उदधृत - वेदान्तदर्शन का इतिहास पृ०२०२.

[51] वेदार्थसंग्रह, पृ. १९६ ,राघवाचार्यसम्पादित, आचार्यपीठ, बरेली से सं. २०१८ में प्रकाशित संस्करण । वहां का मूल पाठ इस प्रकार है- "भगवद्बोधायनटंकद्रमिडगुहदेवकपर्दिभारुचिप्रभृत्यविगीतशिष्टपरिगृहीत" इत्यादि , वेदान्तदर्शन का इतिहास पृ०२०२.

[52] उल्लिखित आचार्यों के नाम हैं- भारुचि,टंक, बोधायन, गुहदेव, कपर्दिन्, द्रमिल । पूर्ववत् .

सत्कार व आदरपूर्वक इन आचार्यों का उल्लेख किये जाने से प्रतीत होता है- ये प्राचीन आचार्य उस निर्विशेष ब्रह्मवाद को मान्यता नहीं देते थे, जिसको परवर्ती आचार्य शंकर ने अधिक स्पष्ट रूप में प्रस्तुत किया, और उसकी मान्यता को शास्त्रीय परम्परा में महत्त्वपूर्ण पद तक पहुंचाया। श्रीनिवासदासरचित यतीन्द्रमतदीपिका नामक ग्रन्थ में भी अध्यात्मपरम्परा के अनेक आचार्यों का नामोल्लेख मिलता है, वहां भी भारुचि[53] का उल्लेख है।

५.आचार्य ब्रह्मानन्दी अथवा टंक-

वेदान्तमूलक अध्यात्मपरम्परा में ब्रह्मनन्दी नामक आचार्य ने पर्याप्त समय पूर्व ही सुयश प्राप्त किया था। साहित्य आदि के आधार पर इसके विषय में जानकारी के लिये कोई उपयुक्त साधन उपलब्ध नहीं है। प्राचीन वेदान्त सम्प्रदाय में 'ब्रह्मनन्दी' छान्दोग्यवाक्यकार[54] अथवा केवल वाक्यकार[55] के नाम से प्रसिद्ध है। श्रीवैष्णव सम्प्रदाय के साहित्य में किसी एक वाक्यकार अथवा वार्तिककार का पता लगता है , वहां उसका नाम टंक बताया गया है। विशिष्टाद्वैत-सम्प्रदाय में 'ब्रह्मानन्दी' और 'टंक' दोनों नाम एक व्यक्ति के समझे जाते हैं। परन्तु यह कहाँ तक सत्य है, साधनों के अभाव में यह कहना कठिन है।[56] संक्षेपशारीरक में सर्वज्ञात्ममुनि लिखते है-

---

[53] यतीन्द्रमतदीपिका, वाराणसी संस्करण, सन् १९०७, पृ. १ । वहां मूल पाठ इस प्रकार है- "वेदान्तवाक्यैः प्रतिपादयतां व्यास-बोधायन-गुहदेव-भारुचि-ब्रह्मनन्दि-द्रमिलाचार्य-श्रीपरांकुशनाथ-यामुनमुनि-यतीश्वर-प्रभृतीनां मतानुसारेण" इत्यादि । उद्धृत - वेदान्त दर्शन का इतिहास ,पृ०२०७

[54] भामतीटीका कल्पतरु, ब्र. सू. १।४।२७. वेदान्त दर्शन का इतिहास पृ० २०७

[55] भास्करभाष्य, ब्र. सू. १।४।(२५)२६ ॥ तथा वेदार्थसंग्रह, श्रीबालमुकुन्द ग्रन्थमाला-११, आचार्यपीठ, बरेली संस्करण, पृ. १८४ तथा रामानुजाचार्यकृत,श्रीभाष्य १।१।१ ॥ उद्धृत-पूर्ववत् पृ २०७.

[56] सुदर्शनसूरिकृत तात्पर्यदीपिका, पृ. १४८ । वहां लेख है- 'टंको ब्रह्मनन्दी' ।अर्थात् ये दोनों नाम एक व्यक्ति के हैं। यामुनाचार्य के 'सिद्धित्रय' ग्रन्थ के प्रारम्भ में कतिपय आचार्यों के नाम हैं- 'तथापि आचार्य-टंक-भत्तृप्रपंच.....आदि। आचार्य पद पर टिप्पणी करते हुए टिप्पणीकार लिखता है- 'अत्र आचार्यो द्रमिलाचार्यः, टंको वार्तिककारः' यह पीछे कहा गया है, वार्तिककार ब्रह्मनन्दी है। टंक वार्तिककार कहने से टंक और ब्रह्मनन्दी एक व्यक्ति के नाम ज्ञात होते हैं। तथा द्रष्टव्य- श्री डा. गोपीनाथ कविराजकृत, अच्युत, पृ. १२ । उदधृत्- पूर्ववत् पृ० २०७.

अन्तर्गुणा भगवती परदेवतेति, प्रत्यग्गुणेति भगवानपि भाष्यकारः ।

आह स्म यत्तदिह निर्गुणवस्तवादे, संगच्छते न तु पुनः सगुणप्रवादे ॥[57]

इसपर व्याख्या करते हुआ अन्वयार्थप्रकाशिका-टीकाकार रामतीर्थ लिखते हैं[58]- ब्रह्मानन्दी के ग्रन्थ में अद्वैतपक्ष ही विवक्षित है, परिणाम आदि नहीं ? यह सब उसके (ब्रह्मानन्दीकृत ग्रन्थ के) व्याख्याकार द्रविडाचार्य के कथन से निश्चय होता है। इसी को 'अन्तर्गुणा' इत्यादि सन्दर्भ से कहा है।.....'अन्तर्गुणा' पद की व्याख्या भाष्यकार ने 'प्रत्यग्गुणा' की है अर्थात् परदेवता प्रत्यगात्मरूपा है। आचार्य भास्कर ने ब्रह्मसूत्रभाष्य[59] में उन्हे परिणामवादी बताया, परन्तु अद्वैत अथवा अनिर्वचनीयवाद में विश्वास रखने वाले विद्वानों ने उसे अपने पक्ष का पोषक बताया है। इस विषय में भास्कर के विचार को उन लेखकों ने भ्रमपूर्ण कहा है।[60]

६.आचार्य भर्तृमित्र-

भर्तृमित्र आचार्य का उल्लेख विभिन्न दार्शनिक ग्रन्थों में उपलब्ध होता है। यामुनाचार्य ने अपनी रचना सिद्धित्रय के प्रारम्भ (पृ. ५-६) में भर्तृमित्र का उल्लेख किया है। जयन्तभट्ट की न्यायमंजरी में शब्द के नित्यानित्यविवेचनप्रसंग में दो स्थलों (पृ. २१३,२२६) पर भर्तृमित्र का उल्लेख हुआ है। नैयायिक मत है- शब्द अनित्य है, अपने विभिन्न निमित्तों से उत्पन्न होता

---

[57] संक्षेपशारीरक, ३।२२१, वेदान्त दर्शन का इतिहास पृ० २०८

[58] "अद्वैतमेव ब्रह्मनन्दिग्रन्थे विवक्षितं न परिणामादीत्येतत् तद्भाष्यकृद् द्रविडाचार्यवचनादवसीयत इत्याह- अन्तर्गुणेति।

[59] "परिणामादिति । परमात्मा स्वयमात्मानं कार्यत्वेन परिणमयामासेत्यर्थः।.....सूत्रकारः श्रुत्यनुकारी परिणामपक्षं सूत्रयांबभूव"। ब्र. सू. १।४।(२५)२६ पर भास्करभाष्य॥ वेदान्त दर्शन का इतिहास पृ० २०८

[60] "भास्करस्त्विह बभ्राम- योनिरिति परिणामादिति च सूत्रनिर्देशाच्छान्दोग्यवाक्यकारेण ब्रह्मनन्दिना 'परिणामस्तु स्यात्' इत्यभिधानाच्च परिणामवादो वृद्धसम्मत इति "। भामतीटीका-वेदान्तकल्पतरु, १।४।२७ ॥ भास्कर को तो इस विषय में भ्रम हुआ है कि – 'योनिः' और 'परिणामात्" इस सूत्र- (१।४।२६,२७)- निर्देश से, तथा ब्रह्मनन्दी द्वारा 'परिणामस्तु स्यात्' इस कथन से परिणामवाद प्राचीन आचार्यों को सम्मत है। वेदान्त दर्शन का इतिहास पृ० २०८

है। मीमांसक मत है-शब्द नित्य है, वह उत्पन्न न होकर तथाकथित निमित्तों के द्वारा केवल अभिव्यक्त होता है। जयन्तभट्ट ने नैयायिक तथा अन्य दार्शनिक मतों को सन्मुख रख इस प्रसंग में शब्द की उत्पत्ति और अभिव्यक्ति-पक्षों को लक्ष्य कर अति आकर्षक एवं रुचिपूर्ण संवाद बहुत विस्तार के साथ प्रस्तुत किया है। यहां मीमांसकमत का निर्देशन आचार्य भर्तृमित्र के नाम से किया गया है। इस विवेचन के प्रसंग में कतिपय पद्य कुमारिल भट्ट के श्लोकवार्तिक से उद्धृत किये गये हैं।[61] कुमारिल का लेख है-

प्रायेणैव हि मीमांसा लोके लोकायतीकृता ।
तामास्तिकपथे कर्त्तुमयं यत्नः कृतो मया ॥[62]

प्रस्तुत पद्य की अवतरणिका करते हुए वार्तिक का टीकाकार उम्बेक भट्ट लिखते है-वेदार्थ के ग्रहण और आवश्यक स्मरण के लिये उस-उस विषय के भर्तृमित्र आदि आचार्यों द्वारा विरचित 'तत्त्वशुद्धि' आदि लक्षण-प्रकरण-ग्रन्थ विद्यमान हैं, तब श्लोकवार्तिक की रचना अनावश्यक है। इस विचार के निवारण के लिए वार्तिककार ने कहा है कि लोक में प्रायः प्राचीन लेखकों के द्वारा मीमांसाशास्त्र लोकायतीकृत हुआ है। तात्पर्य यह है कि उक्तशास्त्र की आस्तिक भावनाओं को नास्तिकता की ओर ले जाने का प्रयास हुआ है, उसे आस्तिकमार्ग पर लाने के लिए मेरा (वार्तिककार कुमारिल भट्ट का) यह प्रयत्न है।[63] उम्बेक भट्ट द्वारा संकेतित भर्तृमित्र की 'तत्त्वशुद्धि' रचना के नामकरण पर यदि ध्यान दिया जाय, तो इससे यह भावना अभिव्यक्त होती है कि उसने मीमांसा की कतिपय ऐसी परम्पराओं का शोधन किया, जिनको

---

[61] न्यायमंजरी, पृ, २१२,२२१ उद्धृत - वेदान्त दर्शन का इतिहास पृ० २१६

[62] मीमांसा प्रथम सूत्र के श्लोकवार्तिक का प्रारम्भिक भाग, श्लोक १० उद्धृत - वेदान्त दर्शन का इतिहास पृ० २१६

[63] उम्बेक भट्ट का लेख इस प्रकार है- "ननु वेदार्थग्रहणविस्मरणार्थमपि तत्तद्भर्तृमित्रादिविरचिततत्त्वशुद्धयादिलक्षणप्रकरणमस्त्येवेति गतार्थमिदं वाक्यमित्यत आह- प्रायेणेति । मीमांसा हि सर्वास्तिकशास्त्राणामग्रणीः सर्वपुरुषार्थसाधनपरिज्ञानस्यैतन्निबन्धनत्वात् ॥ उद्धृत - वेदान्त दर्शन का इतिहास पृ० २१६.

वह वास्तविक रूप में मीमांसा द्वारा उपपादित नहीं मानते थे। उसने उनका शोधन कर मीमांसा के यथार्थ तत्त्वों को प्रस्तुत किया।

७.आचार्य भर्तृप्रपंच-

बोधायन और उपवर्ष के समान इस आचार्य ने ब्रह्मसूत्रों पर कोई व्याख्या लिखी हो, इसका पता नहीं लगता। अध्यात्म की परम्परा में गणना किये गये आचार्यों में से किसने ब्रह्मसूत्र अथवा उपनिषद् आदि की व्याख्या के रूप में कितना लिखा, इसका पूर्ण व निश्चयात्मक विवरण दिये जाने का आज हमारे पास कोई उपाय नहीं है। ऐसे निर्देश अवश्य उपलब्ध होते हैं जिनके अनुसार यह प्रतीत होता है कि आचार्य भर्तृप्रपंच ने कतिपय उपनिषदों पर व्याख्याग्रन्थ लिखे थे। इस दिशा में विशेष रूप से कठकोपनिषद् तथा बृहदारण्यक का निर्देश किया जा सकता है। इन उपनिषदों पर भर्तृप्रपंच के व्याख्याग्रन्थ आचार्य सुरेश्वर तथा आनन्दगिरि के समय में उपलब्ध थे, ऐसा प्रतीत होता है; क्योंकि इन आचार्यों ने भर्तृप्रपंच के मत का जैसा विवरण[64] प्रस्तुत किया है, वह उसके व्याख्याग्रन्थों का पर्यालोचन किये बिना सम्भव प्रतीत नहीं होता।

आचार्य शंकर ने बृहदारण्यक उपनिषद् के अपने भाष्य में अनेक स्थलों पर 'अपरे[65] वर्णयन्ति' तथा 'केचित्तु मन्यन्ते' इत्यादि वाक्यों के निर्देश के साथ अपने पूर्ववर्ती व्याख्याकारों के मतों का उल्लेख किया है। ऐसे प्रसंगों में आचार्य द्वारा किये गये 'वर्णयन्ति, व्याचक्षते' आदि क्रियापदों के प्रयोग से स्पष्ट होता है। यद्यपि बृहदारण्यकोपनिषद्भाष्य के कतिपय स्थलों पर आचार्य शंकर ने 'पण्डितम्मन्य, औपनिषदम्मन्य'[66] आदि पदों द्वारा

---

[64] बृहदारण्यकोपनिषद्भाष्यवार्तिक, आनन्दगिरिटीका-सहित, (२।३।९०-९२,तथा २।५।६७-७४)। वेदान्त दर्शन का इतिहास पृ० २२४.

[65] बृहदारण्यक – १।४।७; १।४।१५; २।१।२०; २।३।६; २।५।१५; ३।१।१०; ३।२।१३; ३।३।१; ३।५।१; ३।८।१२; ४।४।७; ५।१।१ के स्थलों पर शांकरभाष्य । पूर्ववत् पृ० २२४.

[66] बृ. २।१।२० तथा २।३।६ पर शांकरभाष्य ।सुरेश्वराचार्य भी (२।१।५८८ में) यही विशेषण देते है। बृ. २।३।९० पर आनन्दगिरि लिखते है- 'स्वमतयुक्त्वा भर्तृप्रपंचप्रक्रियामवतारयति-अपीत्यादिना'। सुरेश्वराचार्य का वार्तिक है- "अप्यौपनिषदम्मन्याः केचिदत्यन्तनैपुणात्। प्रक्रियां रचयित्वाऽऽहुर्वेदान्तार्थाविपश्चितः॥ पूर्ववत् पृ० २२४.

भर्तृप्रपंच का उपहास किया है, फिर भी इस तथ्य को स्वीकार करने में कोई बाधा नहीं कि आचार्य भर्तृप्रपंच अपने समय में अध्यात्म-परम्परा के दार्शनिक क्षेत्र के एक माननीय एवं प्रतिष्ठित विद्वान् थे; विद्वत्समाज पर उनका प्रभाव था। सम्भवतः इसी कारण न केवल शंकर के शिष्य सुरेश्वर ने अपने भाष्यवार्तिक[67] में 'सम्प्रदायवित्' एवं 'ब्रह्मवादी' कहकर उसकी प्रतिष्ठा को अभिव्यक्त किया है, प्रत्युत स्वयं आचार्य शंकर ने ब्रह्दारण्यकोपनिषद्भाष्य के एक स्थल [२।५।१५] पर 'आगमविदः' कहकर स्मरण किया है।

भर्तृप्रपंच के विचार व सिद्धान्त-

दृश्य-अदृश्य एवं चेतन-अचेतन समस्त विश्व के वस्तुतत्त्व का समांकलन भर्तृप्रपंच ने आठ भागों में विभक्त माना है। ये हैं- अन्तर्यामी, जीवरूप, अव्यक्त अथवा अव्याकृत, सूत्र, विराट्, देवतारूप, जाति तथा पिण्डरूप । इनमें ब्रह्म की ईषत् प्रचलित अवस्था 'अन्तर्यामी' है। अत्यन्त प्रचलित अवस्था क्षेत्रज्ञ अथवा जीवरूप है। ये आठ विभाग एकमात्र ब्रह्म की अवस्थाएं हैं।[68]

---

[67] ५।१।२८ पर सुरेश्वर का वार्तिक है-

एवं यथोदिते तावत् प्रमाणार्थेऽप्यवस्थिते ।

अन्यथेदं वचः केचिद् व्याचख्युरतिनैपुणात् ॥२८॥

यहां आनन्दगिरि का लेख है- 'इदानीं भर्तृप्रपंचव्याख्यानमुत्थापयति-एवमिति'। उद्धृत- वेदान्त दर्शन का इतिहास पृ० २२४

[68] बृ. उ., शां. भा., ३।८।१२ आचार्य शंकर ने 'अत्र केचिदाचक्षते' कहकर यहां संक्षेप में इस प्रसंग का उल्लेख किया है। उद्धृत - वेदान्त दर्शन का इतिहास पृ० २२५.

८.आचार्य द्रमिल-

वेदान्त के आधार पर उद्भावित अध्यात्मपरम्परा के आचार्यों में द्रमिल आचार्य का नाम उच्चतम स्थान पर लिया जाता है। इस नाम का उच्चारण द्रमिड अथवा द्रविड रूप में भी किया जाता है। नाम के अन्तिम उच्चारण के आधार पर प्रायः ऐसा समझा जाता है कि यह आचार्य द्रविडदेशोत्पन्न अथवा द्रविड जाति में उत्पन्न व्यक्ति था। यह भी कहा जा सकता है कि द्रविड जनता के ये आचार्य रहे हों। यह अधिक प्रामाणिक प्रतीत होता है कि आचार्य का सांस्कारिक नाम द्रमिल रहा हो।

छान्दोग्योपनिषद् का भाष्य आरम्भ करते हुये आचार्य शंकर ने लिखा है- "*ओमित्येतदक्षरमित्याद्यष्टाध्यायी छान्दोग्योपनिषत्। तस्याः संक्षेपतोऽर्थजिज्ञासुभ्य ऋजुविवरणमल्पग्रन्थमिदमारभ्यते*" । अर्थात् 'ओमित्येतदक्षरम्' यहां से प्रारम्भ कर आठ अध्याय की यह छान्दोग्य उपनिषद् है । उसके अर्थज्ञान की इच्छा रखने वाले व्यक्तियों के लिये यह संक्षेप और सरल विवरण से युक्त अल्पग्रन्थ का आरम्भ किया जाता है । इस सन्दर्भ के 'अल्पग्रन्थं' पद की अवतरणिका करते हुये भाष्य के टीकाकार आनन्दगिरि लिखते हैं- "*अथ पाठक्रममाश्रित्यापि द्राविडं भाष्यं प्रणीतं तत्किमनेनेत्याशंकयाह- अल्पग्रन्थमिति*"।

९. आचार्य ब्रह्मदत्त-

वेदान्तमूलक अध्यात्मपरम्परा के आचार्यों में अन्यतम आचार्य ब्रह्मदत्त हैं । नैष्कर्म्यसिद्धि ग्रन्थ में सुरेश्वराचार्य ने *"केचित स्वसम्प्रदायबलावष्टम्भादाहुः यदेतद्वेदान्तवाक्यादहं ब्रह्मेति विज्ञानं समुत्पद्यते तन्नेव स्वोत्पत्ति मात्रेण ज्ञानं निरस्यति*[69]। कहकर बताया है कि ब्रह्मदत्त 'अहं ब्रह्मास्मि' वेदान्तवाक्य के श्रवण से अपरोक्षज्ञान का होना नहीं मानते जबकि शंकर मानते हैं ।

[69] नैष्कर्म्यसिद्धि, चन्द्रिकाटीका १/६७, पृ० ५६

९. सुन्दरपाण्डेय –

वेदान्त सम्बन्धी अध्यात्म परम्परा में आचार्य सुन्दरपाण्डेय का नाम मूर्धन्य विद्वानों में गिना जाता है। आचार्यशंकर ने समन्वयसूत्र के भाष्य के अन्त में *"अपि चाहुः"* कहकर तीन श्लोक[70] उद्धृत किये है। पंचपादिका में इस पर टीका करते हुए कहा है – *प्रसिद्धमेतद् ब्रह्मविदामिति पूर्वोक्तं न्यायं सक्षेपतः श्लोकैः संगृह्णाति।* पञ्चपादिका पर प्रबोधपरिशोधिनी के रचयिता आत्मस्वरूप ने इन श्लोकों को सुन्दरपाण्डेय कृत माना है –*श्लोकत्रयं सुन्दरपाण्डेयप्रणीत प्रमाणयतीत्याह प्रसिद्धमिति।*

अन्य भाष्यकार – अन्य में वाक्यपदीयकार भर्तृहरि तथा कपर्दी माने जाते हैं। इस सन्दर्भ में परन्तु विद्वानों पर्याप्त मतभेद हैं अतः विस्तार भय से यहाँ उसकी चर्चा नहीं की जा रही है।

## १.३. आचार्य शङ्कर कृत शारीरकभाष्य

ब्रह्मसूत्रों पर तत्कालीन उपलब्ध अनेक भाष्यों के उपलब्ध होने पर भी आचार्य शंकर ने ब्रह्मसूत्र तथा सैद्धान्तिक उपनिषदों[71] पर भाष्य लिखकर आध्यात्मिक जगत् में जीवब्रह्मैक्य

---

[70] गौणमिथ्यात्मनोऽसत्वे पुत्रदेहादिबाधनात्

सद्ब्रह्मात्माहमित्येवं बोधि कार्यं कथं भवेत्।

अन्वेष्टव्यात्मविज्ञानात् प्राक् प्रमातृत्वमात्मनः

अन्विष्टः स्यात् प्रमातैव पाप्मदौषादिवर्जितः॥

देहात्मप्रत्ययो यद्वत प्रमाणत्वेन कल्पितः।

लौकिकं तद्वदेवेदं प्रमाणं त्वात्मनिश्चयात्॥ ब्रह्मसूत्र:शांकरभाष्य, व्या० हनुमान दास षट्शास्त्री, पृ० ६८

[71] ईश-केन –कठ- प्रश्न- मुण्ड- माण्डुक्य- तित्तरिः।

ऐतरेय च छान्दोग्यं बृहदारण्यकं दश॥ इन दश तथा श्वेताश्वतरोपनिषद् पर शांकरभाष्य उपलब्ध होने से सैद्धान्तिक उपनिषद् कही जाती है।

और जगन्मिथ्यात्व[72] के सिद्धान्त को प्रकाशित कर अद्वैत वेदान्त नामक नूतन शाखा को पल्लवित किया । इसका अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि वर्तमान में अद्वैत वेदान्त और शंकर एक दूसरे के पर्याय बन गये है । आचार्य शंकर से पूर्व तथा पश्चात् कई विद्वानों के द्वारा भाष्य किये जाने के बाद भी आज ब्रह्मसूत्र के साथ शंकर का शारीरकभाष्य पर्याय बन चुका है ।

## १.३.१.आचार्य शंकर का व्यक्तित्व

माधवाचार्य ने "शंकरदिग्विजय" में बताया है कि आचार्य शंकर के पिता का नाम शिवगुरु तथा माता का नाम सती था । वे लिखते है- शुभग्रह से युत तथा दृष्ट शुभलग्न में तथा सूर्य, कुज,शनि, एवं गुरु के उच्चस्थ तथा केन्द्रवर्ती होने पर शिवगुरु की सती भार्या पार्वती के सदृश सुखिनी ने शंकर नामक पुत्र को जन्म दिया –

*"लग्ने शुभे शुभयुते सुषुवे कुमारं ,*

*श्रीपार्वतीव सुखिनी शुभवीक्षिते च ।*

*जाया सती शिवगुरोर्निजतुंगसंस्थे,*

*सूर्ये कुजे रविसुतो च गुरौ च केन्द्रे" ॥*

आचार्य शंकर का जन्म ८४५ विक्रम संवत् ( कलियुगीय३८८६) में केरल प्रदेश के कालपी ( वर्तमान कालडी) ग्राम में हुआ । शंकर का जन्म विभव नामक संवत्सर, वैशाख मास, शुक्ल पक्ष की दशमी तिथि को हुआ । इसी पर शंकरमन्दारसौरभ में नीलकण्ठ भट्ट ने भी कहा है कलियुगीय चार हजार गताब्द में से एक सौ ग्यारह वर्ष घटा देने पर जो संख्या शेष रहे से उतने कलिगताब्द में शंकराचार्य का प्रादुर्भाव हुआ । इनके मत से शंकर का जन्म

---

[72] ब्रह्मसत्यं जगन्मिथ्येत्येवंरूपो विनिश्चयोः । विवेकचूडामणि , अनु० मुनिलाल, गीताप्रेस गोरखपुर, वि० सं० २०६५, पृ० ११.

विक्रम संवत् ८४५ ही होता है – *"शंकराचार्यप्रादुर्भावस्तु विक्रमार्कसमयादतीते पञ्चचत्वारिशदधिककाष्टशतीमिते (८४५) संवत्सरे केरलदेशे कालपीग्रामे ....। तथा च साम्पदायिका आहु – निधिनागेभवन्ह्यब्दे ,विभवे मासि माधवे ।*

*शुक्ले तिथौ दशम्यां ,तु शकरार्योदयः स्मृतः॥*

*तथा च शंकरमन्दारसौरभे नीलकण्ठभट्टा अपि एवमाहुः -प्रासुत तिष्यशरदामतियातवत्यामेकादशाधिकशतोनचतुसहस्त्र्याम्" ॥* [73]

आचार्य शंकर ने १६ वर्ष की अवस्था शारीरकभाष्य की रचना की । स्वयंप्रकाशमुनि ने एकश्लोकी व्याख्यान में एक श्लोक में आचार्य शंकर के जीवन क्रम का वर्णन करते हुए लिखा है कि आचार्य शकर आठ वर्ष की अत्यल्प अवस्था में चारों वेद और बारह वर्ष की अवस्था में समस्त शास्त्रों में निष्णात हो गये थे । सोलह वर्ष की उम्र में भाष्य प्रणयन कर बत्तीस वर्ष की अवस्था में कलेवर मुक्त हुए –

*"अष्टवर्षे चतुर्वेदी, द्वादशे सर्वशास्त्रवित् ।*

*षोडषे कृतवान् भाष्यं, द्वात्रिंशे मुनिरभ्यगात्" ॥* [74]

माधवाचार्यकृत शंकरदिग्विजय के अनुसार आचार्य शंकर के गुरू गोविन्दभगवद्पाद को माना जाता है[75]।शारीरकभाष्य की पुष्पिका में भी कहा गया है-

---

[73] आर्यसुधाकर ,प्रणेता- यज्ञेश्वरशास्त्री, उद्धृत- वेदान्त दर्शन का इतिहास, ले० उदयवीर शास्त्री, विजयराम गोविन्दराम हासानन्द, नई दिल्ली, २००२, पृ० ४४०.

[74] एकश्लोकीव्याख्यान २/१५, स्वयं प्रकाशमुनि, उद्धृत- शंकराद्वैत के प्रमुख सिद्धान्तों का पारम्परिक विश्लेषण, ले० तारानाथ, नाग पब्लिशर्स, नई दिल्ली, २००५, पृ० १४.

[75] शंकरदिग्विजयम् सर्ग ५ श्लोक सं. १०५.

*"इति श्रीमच्छारीरकमीमांसाभाष्ये श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यश्रीमद्गोविन्दभगवत्पूज्यपादशिष्यश्रीमच्छंकरभगवत्पूज्यपादकृतौ...."॥*

गोविन्दभगवद्पाद के गुरु आचार्य गौड़पाद को माना जाता है। गौड़पाद के शुकदेव, शुकदेव के कृष्णद्वैपायन वेदव्यास, वेदव्यास के पराशर , पराशर के शक्ति तथा शक्ति के वशिष्ठ, वशिष्ठ के ब्रह्मा , ब्रह्मा के नारायण गुरु माने जाते हैं –

*"नारायणं पद्मभवं वशिष्ठं शक्तिं च तत्पुत्र पराशरं च*

*व्यासं शुकं गौडपादं महान्तं गोविन्दयोगीन्द्रमथास्य शिष्यम्"* [76]॥

आचार्य शंकर चार शिष्य माने जाते है जो उनके द्वारा भारत में स्थापित चार पीठों के प्रथम अध्यक्ष बने-

१. पद्मपाद -गौवर्धन मठ के अध्यक्ष जिन्होने शारीरकभाष्य पर पंचपादिका नामक प्रसिद्ध टीका लिखी यह टीका चतुः सूत्री (१.१.२ अथातो ब्रह्मजिज्ञासा १.१.२. जन्माद्यस्य यतः, १.१.३. शास्त्रयोनित्वात् १.१.४. तत्तुसमन्वयात् ) पर टीका पांच पादों पर टीका होने से पंचपादिका कहलाती है परन्तु वर्तमान में यह चार सूत्रों पर ही उपलब्ध है।

२. हस्तामलक – श्रृंगेरी पीठ के अध्यक्ष जिन्होने हस्तामलकस्तोत्र की रचना की।

३. श्रुतिधर(तोटकाचार्य) – ज्योतिषपीठ के अध्यक्ष जिन्होने श्रुतिसारसमुद्धरण या तोटक स्तोत्र की रचना की। यह तोटक छन्द में रचित है।

४.सुरेश्वराचार्य – शारदापीठ के अध्यक्ष जिन्होंने नैष्कर्म्यसिद्धि, बृहदारण्यकोपनिषद्भाष्यवार्तिक, पंचीकरणवार्तिक की रचना की। जीव ब्रह्म सम्बन्ध के

[76] आचार्यास्तव श्लोक सं ३ , वेदान्तदर्शन का इतिहास, पृ० १२४.

विषय में इनका आभासवाद सिद्धान्त है जिसके अनुसार जीव ब्रह्म का आभास है। इसके अतिरिक्त निम्न ग्रन्थों की रचना की है – तैत्तिरीयोपनिषद्भाष्यवार्तिक, प्रणवार्थकारिका, मानसोल्लास, वेदान्तसार- वार्तिक- राज संग्रह, लघुवार्तिक, मोक्षनिर्णय[77]।

## १.३.२.आचार्य शंकर का कर्तृत्व

आचार्य शंकर के रचित ग्रन्थों को अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से निम्न लिखित कोटियों में विभक्त किया जा सकता है[78] – १. भाष्यग्रन्थ २.प्रकरण ग्रन्थ ३. स्तोत्र ग्रन्थ ४. तन्त्र ग्रन्थ .

**१. भाष्यग्रन्थ -**

**(अ) उपनिषद् भाष्य -**

आचार्य शंकर ने दश उपनिषदों पर भाष्य लिखा अतः इन उपनिषदों को सैद्धान्तिक उपनिषद् कहा जाता है – ईशावास्योपनिषद्भाष्य, केनोपनिषद्भाष्य ( इस पर वाक्य व पद नाम से दो भाष्य लिखे है) कठोपनिषद्भाष्य, प्रश्नोपनिषद्भाष्य,मुण्डकोपनिषद्भाष्य, माण्डूक्योपनिषद्भाष्य, तैत्तिरियोपनिषद्भाष्य, ऐतरेयोपनिषद्भाष्य, छान्दोग्योपनिषद्भाष्य, बृहदारण्यकोपनिषद्भाष्य। इनके अतिरिक्त श्वेताश्वतरोपनिषद् पर भी भाष्य मिलता है।

**(ब)अन्य भाष्य ग्रन्थ -**

श्रीमद्भगवद्गीताभाष्य, ब्रह्मसूत्र –शारीरकभाष्य, सनत्सूजातीयभाष्य, ललितात्रिशतिभाष्य, माण्डूक्यकारिकाभाष्य, विष्णुसहस्त्रनामभाष्य, गायत्रीभाष्य इत्यादि।

---

[77] Advait Vedanta literature – A Bibliographical Survey, R. Thagswami, University of Madras, 1980 pg.126.

[78] शंकराद्वैत के प्रमुख सिद्धान्तों का पारम्परिक विश्लेषण, ले० तारानाथ, नाग पब्लिशर्स, नई दिल्ली, २००५, पृ० १४.

**२.प्रकरण ग्रन्थ-** अपरोक्षानुभूति, आत्मबोध, उपदेशसाहस्त्री, पञ्चीकरणप्रकरण, प्रबोधसुधाकर, लघुवाक्यवृत्ति, वाक्यवृत्ति, विवेकचूडामणि तथा शतश्लोकी इत्यादि ।

**३.स्तोत्रग्रन्थ -** श्रृंगेरी मठ के शंकराचार्य की अध्यक्षता में वाणीविलास प्रेस से प्रकाशित श्रीरंगम् से आदि शंकर के नाम से ६४ स्तोत्र ग्रन्थों को प्रकाशित किया है । इन स्तोत्रों में नदी-तीर्थ विषयक तथा गणेश, शिव, देवी, विष्णु तथा युगल देवी देवताओं को सम्बोधित कर लिखे गये हैं । इनमें से भाषागत माधुर्य और मूर्धन्य आचार्यों के द्वारा लिखे गये भाष्यों को देखते हुए जिन स्तोत्रों को असन्दिग्ध रूप से आचार्य शंकर विरचित माना जाता है वे हैं – आनन्दलहरी, गोविन्दाष्टक, दक्षिणामूर्तिस्तोत्र, दशश्लोकी, मोहमुद्गर, चर्पटपञ्जरिका, षट्पदी, मनीषापञ्चकम्, सोपान पञ्चकम्, धन्याष्टकम्, शिवभुजंगप्रयात इत्यादि ।

४. **तन्त्रग्रन्थ -** इनके द्वारा रचित दो प्रधान तन्त्र ग्रन्थ हैं – १. सौन्दर्यलहरी २. प्रपञ्चसार भामती के टीकाकार अमलानन्द ने शारीरकभाष्य के देवताधिकरण पर लिखते हुए कल्पतरूटीका में प्रपञ्चसार नामक तन्त्र ग्रन्थ एक श्लोक को प्रमाण के रूप में उद्धृत कर आचार्य शंकर के नाम का उल्लेख किया है[79] ।

## १.३.३.आचार्य शंकर कृत शारीरकभाष्य : एक सामान्य परिचय

ब्रह्मसूत्र पर आचार्य शंकर कृत भाष्य शारीरकमीमांसा या शारीरकभाष्य कहलाता है। स्वयं शंकर ने अध्यासभाष्य के अन्त में कहा है – *यथा चायमर्थः सर्वेषां वेदान्तानां तथा वयमस्यां शारीरकमीमांसायां प्रदर्शयिष्यामः*[80] । इसी के साथ भाष्य की पुष्पिका में भी शारीरकभाष्य का नाम उल्लेखित है- *श्रीमच्छारीरकमीमांसाभाष्ये श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यश्रीमद्गोविन्दभगवत्पूज्यपादशिष्यश्रीमच्छंकरभगवत्पूज्यपादक-*

---

[79] कल्पतरू १/३/३३/ , ब्रह्मसूत्र ( भामती, **कल्पतरु**, परिमल टीकाओं सहित), सम्पा० कन्हैयालाल जोशी, परिमल पब्लिकेशन, दिल्ली, १९८२.

[80] ब्रह्मसूत्रशांकरभाष्य पृ० १८

*तौ....[81]॥* शारीरकमीमांसा या शारीरकभाष्य से आशय है जीव के ब्रह्मत्व का विचार । रत्नप्रभाकार गोविन्दानन्द के अनुसार " शरीरमेव शरीरकम्, कुत्सितत्वात् , तन्निवासी शारीरको जीवः तस्य ब्रह्मत्वविचारो मीमांसा तस्यामित्यर्थः । शारीरक = शरीर शब्द + क +अण् । *"कुत्सिते"* (पा० ५/३/७४) सूत्र से शरीर शब्द के आगे कुत्सित या निन्दा अर्थ में "क" प्रत्यय लगा है = वह शरीरक ही जिसका निवास है वह शारीरक या जीव है । यहाँ शरीरक शब्द से *"सोऽस्य निवासः"* ( पा० ४/३/८९) से अण् प्रत्यय तथा आदि वृद्धि करने पर 'शारीरक' बनता है । इस शारीरक की मीमांसा अर्थात् शारीरक (जीव) के ब्रह्मत्व का विचार जहाँ किया गया है वह 'शारीरकमीमांसा या शारीरकभाष्य' है ।

ब्रह्मसूत्रों पर शारीरक भाष्य ही विद्वानों में सर्वाधिक प्रामाणिक माना जाता है। इस शारीरक भाष्य के आधार पर ही आचार्य शंकर ने जीवब्रह्मैक्य, जगन्मिथ्यात्व तथा मायावाद के सिद्धान्तों का प्रणयन किया जो अद्वैत वेदान्त की आधारशिला बने । आचार्य शंकर शारीरकभाष्य प्रारम्भ की प्रस्तावना के रूप में अध्यासभाष्य को प्रस्तुत किया है। अथवा ऐसा कहा जा सकता है कि आचार्य शंकर ने ब्रह्मसूत्रों पर भाष्य लिखने से पूर्व उपोद्घातरूप में अध्यासभाष्य का उपवर्णन किया तथा एक मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त प्रस्तुत किया है कि किस प्रकार एक, चेतन, ब्रह्म या आत्मन् के अनेक अनात्म पदार्थों में भासित होने का कारण अस्मद्-युष्मद् प्रत्यय या सत्यानृत का मिथुनीकरणरूप अध्यास/अज्ञान/अविद्या[82] का उदय होता है जिसके कारण जीव अपने आप को ज्ञाता कर्ता भोक्ता मानने लगता है । शारीरक भाष्य में आचार्य वाद प्रतिवाद में संवादात्मक भाष्य प्रयोग किया है- *"कोऽयं अध्यासः ? उच्यते स्मृतिरूप परत्र पूर्वदृष्टावभासः"।* [83] शारीरक भाष्य की भाषा अत्यन्त मनोरम तथा गम्भीर है अतः भामतीकार ने लिखा है – *भाष्यं प्रसन्नगम्भीरं तत्प्रणीतं*

---

[81] ब्रह्मसूत्रशांकरभाष्य पृ० १०९४.

[82] तमेतमेवंलक्षणमद्यासं पण्डिता अविद्येति मन्यन्ते ।" ब्रह्मसूत्रशांकरभाष्य, वही,५२

[83] ब्रह्मसूत्र-शांकरभाष्य,

*विभज्यते ॥* [84] पंचपादिकाकार ने भी भाष्य के प्रति ऐसे ही भाव प्रकट किये है – *"भाष्यं प्रसन्नं गम्भीरं तद्व्याख्यां श्रद्धयारभे"।* [85] पंचपादिकाविवरणकार प्रकाशात्मयति ने भाष्य की प्रसंशा करते हुए लिखते हैं – कि जिस प्रकार समुद्र मंथन से निकलकर लक्ष्मी ने संसार का पालने करने वाले भगवान् विष्णु को सुखी किया उसी प्रकार वेद रूपी समुद्र से ब्रह्मविद्या को निकालकर उस पर विमलभाष्य (शारीरकभाष्य) का प्रणयन कर सारे संसार को सुखी करने वाले आचार्य शंकर को प्रणाम करता हुँ –

*"उद्धृत्य वेदपयसः कमलामिवाब्धे- ।*

*रालिङ्गिताखिलजगत्प्रभवैकमूर्तिम् ॥*

*विद्यामशेषजगतां सुखमाददाद् यः ।*

*तं शंकरं विमलभाष्यकृतं नमामि ॥* [86]

शारीरकभाष्य में उपवर्णित ब्रह्म-जीव सम्बन्ध को आधार बनाकर वाद-त्रय का प्रवर्तन हुआ -

१. वार्तिककार सुरेश्वराचार्य का मत – आभासवाद

२. भामतीकार वाचस्पतिमिश्र का मत – अवच्छेदवाद

३. विवरणकार प्रकाशात्मयति का मत – प्रतिबिम्बवाद

मायावाद को लेकर दो वाद बने – १.भामतीकार मत - अविद्या के प्रतिजीव भिन्न-भिन्न होने के अविद्या अनेक है। २. विवरणकार मत – अविद्या प्रत्येक जीव में समान है।

---

[84] भामती पृ० ३.

[85] पंचपादिका पृ० १.

[86] पंचपादिकाविवरण श्लो० ५, पृ० २

## १.३.४.शारीरकभाष्य पर प्रमुख टीकाएं

शारीरक भाष्य पर मूल रूप से दो टीकाएं प्रधान मानी जाती हैं – वाचस्पति मिश्र कृत भामती जिसने भामतीप्रस्थान को जन्म दिया तथा पद्मपाद कृत पंचपादिका जिस पर प्रकाशात्मयति ने विवरण टीका लिखकर विवरणप्रस्थान को जन्म दिया । इसके अतिरिक्त निम्न टीकाएं[87] है-

१.रत्नप्रभा- रामान्दयति या गोविन्दानन्द २.भाष्य भावप्रकाशिका- चित्सुखाचार्य ३.भाष्यन्याय संग्रह प्रकाशात्मयति ४.न्यायनिर्णय – आनन्दगिरि ५. ब्रह्मविद्याभरण- अद्वैतानन्द ६. प्रदीप- अनन्तकृष्णशास्त्री, ७.शारीरकन्यायमणिमाला-अनन्यानुभव ८. शारीरकन्यायमणिमाला अनुभूतिस्वरूपाचार्य ९. भाष्यसिद्धान्तसंग्रह – उपनिषद्ब्रह्मेन्द्र १०विद्याश्री – ज्ञानोत्तम ११. भाष्यभानुप्रभा- त्रयम्बक शास्त्री १२. भाष्यवार्त्तिक- नारायण सरस्वती १३. भाष्यार्थसंग्रह- ब्रह्मानन्द यति १४. सुबोधिनी- शिवनारायण १५. भाष्यसिद्धान्त संग्रह -कृष्णानुभूति ।

# १.४.शंकरोत्तर ब्रह्मसूत्रभाष्य

आचार्य शंकर के पश्चात् भी कई भाष्य लिखे गये जिनसे अलग-अलग सिध्दान्तों का प्रादूर्भाव हुआ । यहाँ उनका दिग्दर्शन मात्र किया जा रहा है[88] –

| आचार्य | काल | भाष्य | सिद्धान्त |
|---|---|---|---|
| १.भास्कराचार्य | १००० | भास्करभाष्य | भेदाभेद |

[87] Advait Vedanta literature – A Bibliographical Survey, R. Thagswami, University of Madras, 1980 pg. 222.

[88] ब्रह्मसूत्रशांकरभाष्य, एकादशटीकासंयुतम्, सम्पा० प्रो० योगेश्वरदत्त शर्मा, नाग प्रकाशक, नईदिल्ली, १९९७, पृ० ११.

| | | | |
|---|---|---|---|
| २. रामानुज | ११४० | श्रीभाष्य | विशिष्टाद्वैत |
| ३. मध्व | १२३८ | पूर्णप्रज्ञभाष्य | द्वैत |
| ४. निम्बार्क | १२५० | वेदान्तपरिजात | द्वैताद्वैत |
| ५. श्री कण्ठ | १२७० | शैव भाष्य | शैवविशिष्टाद्वैत |
| ६. श्री पति | १४०० | श्रीकर भाष्य | वीरशैव विशिष्टाद्वैत |
| ७. वल्लभ | १४७९- १५४४ | अणुभाष्य | शुध्दाद्वैत |
| ८. विज्ञानभिक्षु | १६०० | विज्ञानामृत | अविभागाद्वैत |
| ९. बलदेव विद्याभूषण | १७२५ | गोविन्दभाष्य | अचिन्त्यभेदाभेद |

## १.५. भामती एवं विवरण: सामान्य परिचय

### १.५.१.वाचस्पति मिश्र का व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व

भामती वाचस्पतिमिश्रकृत शारीरकभाष्य की प्रमुख टीका है । वाचस्पति मिश्र का जन्म स्थान मिथिला ही सिद्ध है । महामहोपाध्याय पं परमेश्ववर झा मिथिलातत्त्व विमर्श में इनके गाँव का नाम “भामा” बताते हैं । इसका आधार इनकी पत्नी का नाम भामती होना है । पं अम्बिका दत्त व्यास ने वाचस्पति मिश्र का जन्म स्थान मिथिला ही बतलाया है । इन्होंने “सामवत” नाटक की प्रस्तावना में सूत्रधार और नटी के संवाद से इस तथ्य को प्रस्तुत किया है –

*"वाचस्पतिना तुल्यो वाचस्पतिपण्डितो यत्र ।*

*जातः शास्त्रपयोधौ निष्णातो धीरधौरेयः" ॥* [89]

न्यायसूत्रोद्धार में *"वाचस्पतिमिश्रेण मिथिलेश्वरसूरिणा"* [90] लिखा है।

वाचस्पति मिश्र के माता- पिता के विषय में कोई सूचना स्वरचित या अन्य ग्रन्थ में उपलब्ध नहीं है । इनके गुरु का नाम त्रिलोचन माना जाता है इसका उल्लेख इन्होंने न्यायवार्तिक तात्पर्यटीका में प्रत्यक्ष लक्षण के विश्लेषण के क्रम में व्यवसाय पद की व्याख्या के करते हुए दिया है –

*"त्रिलोचनगुरुनीतमार्गानुगमनोन्मुखैः ।*

*यथामानं यथावस्तु व्याख्यातमिदमिदृशम्" ॥* [91]

वाचस्पति मिश्र ने अपने समय के विषय में संकेत न्यायसूचीनिबन्ध में दिया है –

*"न्यायसूचीनिबन्धोऽसावकारि सुधियां मुदे ।*

*श्रीवाचस्पति मिश्रेण वस्वंकवसुवत्सरे" ॥* [92]

ज्योतिषशास्त्र के *"अंकाना वामतो गतिः"* सिद्धान्त के अनुसार वसु = ८, अंक=९, वसु= ८ अर्थात् ८९८ शकाब्द या विक्रमाब्द है । यह समय शकाब्द या विक्रमाब्द है यह विवादित विषय है ।

---

[89] भारतीय साहित्य के निर्माता वाचस्पति मिश्र, राजेन्द्र प्रसाद दुबे, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली, १९९८ , पृ० १७ .

[90] पूर्ववत .

[91] न्यायवार्तिकतात्पर्यटीका उद्धृत - भारतीय साहित्य के निर्माता वाचस्पति मिश्र, राजेन्द्र प्रसाद दुबे, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली, १९९८ , पृ० १७

[92] न्यायसूचीनिबन्ध, समाप्ति श्लोक ४.

**वाचस्पति मिश्र का कर्तृत्व –** वाचस्पति मिश्र ने भामती के अन्त में अपनी रचनाओं का परिचय दिया है -

*यन्न्यायकणिकातत्त्वसमीक्षातत्त्वबिन्दुभिः ।*

*यन्न्यायसांख्य योगानां वेदान्तानां निबन्धनैः*[93]॥

१. न्यायकणिका- जो मण्डन मिश्र कृत विधिविवेक की टीका है ।

२. तत्त्वसमीक्षा – सुरेश्वराचार्य की ब्रह्मसिद्धि की टीका है ।

३. तत्त्वबिन्दु – भाट्टमत को आधार करके लिखा गया ग्रन्थ है । शाब्दबोध की मौलिक प्रक्रिया का प्रतिपादन किया है ।

४. न्यायवार्तिकतात्पर्यटीका – उद्योतकर कृत न्यायवार्तिक की टीका है ।

५. सांख्यतत्त्वकौमुदी- ईश्वरकृष्ण कृत सांख्यकारिका की टीका है ।

६. तत्त्ववैशारदी – महर्षि पतञ्जलि कृत योगसूत्र पर तत्त्वैशारदी टीका है ।

७. भामती - आचार्य शंकर कृत शारीरकभाष्य की टीका है जो इनकी सवसे अन्तिम रचना है ।

**विशेष** – यहाँ श्लोक में उल्लेखित न्यायशब्द से वाचस्पति की न्यायवार्तिकतात्पर्यटीका तथा न्यायसूचीनिबन्ध नामक ग्रन्थ दोनों ग्रहण करना चाहिए । यह न्यायदर्शन की प्रौढ कृति है जिसमें ५ अध्याय तथा प्रत्येक अध्याय में दो- दो आन्हिक हैं ।

[93] भामती पृ० १०२०.

## १.५.२.भामती टीका : एक सामान्य परिचय

यद्यपि वाचस्पति मिश्र ने षड्दर्शन पर टीका लिखी है परन्तु उनके विचारों की चरम पराकाष्टा भामती भामती में देखने को मिलती है। भामती वाचस्पतिमिश्रकृत शारीरकभाष्य की प्रमुख टीका है वाचस्पति स्वयं आचार्य शंकर के प्रति आदर भाव प्रकट करते हुए लिखते हैं कि जिस प्रकार नालियों का जल गंगा के जलप्रवाह को प्राप्त कर पवित्र हो जाता है उसी प्रकार हमारी वाणी अपवित्र होने पर भी इस प्रसन्न और गम्भीर भाष्य (शारीरकभाष्य) को प्राप्त कर पवित्र हो जाएगी –

"*नत्वा विशुद्धविज्ञानं शंकर करुणाकरम्।*

*भाष्यं प्रसन्नगम्भीरं, तत्प्रणीतं विभज्यते॥*

*आचार्य्यकृतिनिवेशनमप्यवधूतं वचोऽस्मदादीनाम्।*

*रथ्योदकमिव गंगाप्रवाहपातः पवित्रयति*[94]॥

एक प्रमुख विशेषता भामती के मंगलाचरण की यह है कि इस शिखरिणी छन्द में वेदान्त के प्रमेय "ब्रह्म" के पहले १.तटस्थ( जन्माद्यस्य यतः ब्र०सू० १/१/२) तथा बाद में २.स्वरूप (सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म) लक्षण की चर्चा की है –

*अनिर्वाच्याविद्याद्वितयसचिवस्य प्रभवतो ,विवर्ता यस्यैते वियदनिलतेजोबवनयः*

*यतश्चाभूद्विश्वं चरमचरमुच्चावचमिदं, नमामस्तद्ब्रह्मापरिमितसुखज्ञानममृतम्*[95]।

---

[94] भामती पृ० ३

[95] पूर्ववत् .

**भामती टीका के प्रमुख सिद्धान्त –**

यहाँ भामती के प्रमुख सिद्धान्तों का मात्र उल्लेख किया जा रहा है -

१. अवच्छेदवाद – आचार्य वाचस्पति मिश्र ब्रह्म-जीव सम्बन्ध में अवच्छेदवाद को ग्रहण करते हैं। इनका मानना है कि जैसे एक आकाश होने पर भी घट तथा मठ आदि उपाधियों से अवच्छिन्न होकर घटाकाश और मठाकाश आदि अनेक रूपों वाला हो जाता है। उसी प्रकार ब्रह्म स्वयं एक होकर अन्तःकरण से अवच्छिन्न होकर अनेक जीवों के रूप मे प्रतीत हो जाता है। आत्मा या ब्रह्म का जीवत्व अन्तःकरण से सीमित होने पर होती है। वह अन्तःकरण अणु है अतः जीव भी अणुरूप ही है – "*बुध्यादिकृतमस्य जीवत्वमिति बुद्धेरन्तःकरणस्याणुतया सोऽप्यणुदेशभाग्भवति नभ इव कारकोपहितं*"।[96]

२. अविद्या नानात्व - वाक्यान्वयाधिकरण में भामतीकार ने अनेकजीववाद को स्वीकार करते हुए प्रतिजीव में भिन्न भिन्न अविद्या स्वीकार किया है जैसे एक ही बिम्ब की मणि कृपाण आदि भिन्न-भिन्न गुहाएँ होती है वैसे ही एक ही ब्रह्म की प्रतिजीव में भिन्न-भिन्न अविद्या रूपी गुहाएँ होती हैं- *यथा ही बिम्बस्य मणिकृपाणायादयो गुहाः एवं ब्रह्मणोऽपि प्रतिजीवंभिन्ना अविद्या गुहा इति*[97]।

३. जीव का अविद्या आश्रय – भामतीकार के अनुसार अविद्या का आश्रय जीव हो सकता है ब्रह्म नहीं , क्यों कि वह नित्य शुद्ध है – "*नाविद्या ब्रह्माश्रया, किं तु जीवे, सा त्वनिर्वचनीयेत्युक्तम् तेन नित्यशुद्धमेव ब्रह्म*"।[98]

---

[96] भामती २/३/२९ .

[97] भामती पृ० ४२१ .

[98] भामती १/१/४ पृ० १२६ .

**भामती की प्रमुख टीकाएँ -** १. भामती तिलक –अल्लाल २. ऋजुप्रकाशिका - अखण्डानद ३. कल्पतरू - अमलानन्द इस पर अप्पयदीक्षितकृत - कल्पतरूपरिमल तथा वैद्यनाथकृत-कल्पतरूमञ्जरी ये दो टीकाएँ लिखी गयी।

## १.५.३ प्रकाशात्मयति कृत विवरण टीका: सामान्य परिचय

आचार्य शंकर के साक्षात् शिष्य पद्मपादकृत पंचपादिका पर विवरण टीका के प्रणेता के रूप में प्रकाशात्म यति का नाम उल्लेखनीय है स्वयं प्रकाशात्मयति ने लिखा है –

*"प्रकाशात्मा यतिः सम्यक् प्राप्तविद्याशुशुत्सया ।*

*यथाश्रुतं यथाशक्ति व्याख्यास्ये पंचपादिकाम्" ॥*[99]

इनकी विवरण टीका के आधार कर विवरण सम्प्रदाय प्रवृत्त हुआ है । भामती से भिन्न विवरण के मंगलश्लोक की विशेषता है कि इसमें ब्रह्म के तटस्थ लक्षण को भिन्न रूप से प्रस्तुत किया है। विवरणकार का कहना है कि जो सद्ब्रह्म अपनी विमल सत्त्व वृत्ति से संसार का पालन करता है , रजो वृत्ति से सृष्टि को उत्पन्न करता है और तामस वृत्ति से संसार का संहार करता है, जिससे सब प्रकार के द्वैत का प्रपञ्च दूर रहता है उस परमत्तत्व को नमस्कार है –

*"पालने विमलसत्त्ववृत्तये, जन्मकर्मणि रजोजुषे लये ।*

*तामसाय जगतः पराकृतद्वैतजालवपुषाय नमः सते " ॥* [100]

व्यास वन्दना में इनकी भाषा की कलात्मकता देखी जा सकती है । वे लिखते हैं – "सूर्य तो चमकीला होकर कमलों को विकसित करता है, प्रचण्ड होकर अन्धकार को दूर करता है और अपनी सहस्त्र किरणों से नाम रूपात्मक जगत् को स्पष्ट करता है किन्तु व्यास तो संसार के

---

[99] पंचपादिकाविवरण पृ० २

[100] पंचपादिकाविवरण पृ० २ .

विचित्र सूर्य हैं जो साँवले होने पर भी वेदरूपी कमलों को खिलाते रहते हैं और शान्त होते हुए भी मन के अन्धकार का नाश करते हैं और अपनी सहस्त्र गुणों वाली वाणी से अरूप ब्रह्म का प्रकाश करते हैं" –

*श्यामोऽपि श्रुतिकमलावबोधरागः ।*

*शान्तः सन्नयति तमोविनाशमन्तः ॥*

*नीरूपं प्रथयति योऽपि गोसहस्त्रैः ।*

*तं व्यासं नमत जगत्यपूर्वभानुम्*[101] ॥

जहाँ भामतीकार की टीका प्रयोजन वाणी की पवित्रता है वहीं विवरणकार टीका का प्रयोजन बताते हुए कहते हैं कि अपनी प्रशंसा के लिए नहीं अपितु यह निष्फल प्रयास है कि जो मैं अपनी वाणी का व्यय करने में प्रवृत्त हुआ हूँ वह इसका कारण यह है कि मेरी मति विमल हो अतः सज्जन लोग मुझे क्षमा करें –

*"विदितसकलवैद्येर्न प्रशंसन्ति लोके ,*

*ग्रथितमपि महद्भिः कि पुनर्मादृशेन ।*

*इति विफलसमेऽस्मिन् वाग्व्ययेऽहं प्रवृत्तः*

*स्वमतिविमलतायै क्षन्तुमर्हन्ति सन्तः "* ॥ [102]

---

[101] पूर्ववत् .

[102] पूर्ववत् .

**विवरण टीका के प्रमुख सिध्दान्त –**

१.प्रतिबिम्बवाद- ब्रह्म-जीव- सम्बन्ध में विवरणकार के अनुसार प्रतिबिम्बवाद को स्वीकार किया गया है। जीव ब्रह्म का प्रतिबिम्ब है जैसे एक ही सूर्य/ चन्द्र भिन्न जल उपाधियों (कुएँ, तालाब, नदी, सागर आदि) के कारण भिन्न नाम -रूपों वाला हो जाता है उसी प्रकार एक ब्रह्म का एक होने पर भी यह अविद्या या अन्तःकरण में प्रतिबिम्बित होकर अनेक जीव रूप हो जाता है - *रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव , एकधा चैव दृश्यते जलचन्द्रवत् अतएव चोपमा सूर्यकादिवत् इति च श्रुतिस्मृति सूत्रे जीवस्य प्रतिबम्बभावस्य दर्शितत्वात्*[103] । प्रतिबिम्ब वाद के दो मुख्य भेद हैं १. एक मत के प्रवर्तक संक्षेपशारीरककार सर्वज्ञात्ममुनि है। इनके मत में जीव और ईश्वर दोनों ही प्रतिबिम्ब हैं अविद्या में चैतन्य का प्रतिबिम्ब ईश्वर है तथा अन्तःकरण में चैतन्य का प्रतिबिम्ब जीव है[104] । दोनो बिम्बाभिन्न होने कारण सत् है। २. दूसरे मत के प्रवर्तक विवरणकार हैं इनके अनुसार अविद्या (अन्तःकरण) में चैतन्य का प्रतिबिम्ब जीव है तथा ईश्वर बिम्बस्थानापन्न चैतन्य है। इन्होने ईश्वर को प्रतिबिम्ब न मानकर बिम्बरूप माना है। इस मत में ईश्वर परमार्थतः ब्रह्मरूप होने से सत् है। इस प्रकार दोनो मतों में जीव तथा ईश्वर को ब्रह्माभिन्न तथा सत्य माना गया है।

२. माया- अविद्या एकत्व - आचार्य प्रकाशात्मयति ने माया और अविद्या तात्विक रूप से एक बताया है तथा अन्त में बताया कि ये दोनो केवल व्यव्हार में विक्षेप शक्ति की प्रधानता से माया और आवरण शक्तिप्रधानता से अविद्या शब्दों से व्यव्हृत है – "*विक्षेपप्राधान्येन माया आच्छादनप्राधान्येनाविद्येति व्यव्हारभेदः ।* [105]

---

[103] पंचपादिकाविवरण पृ० २८९.

[104] कार्योरुपाधिर्भवेज्जीवः कारणोपाधिरीश्वरः।

प्रतिबम्बोऽत्र , संक्षेपशारीरककृतां नये ॥ सिद्धान्तलेश संग्रह , पृ० ८५

[105] पूर्ववत् .

३. अविद्या का प्रतिजीव एकत्व - विवरणकार के अनुसार मूलाविद्या तो एक है परन्तु अवस्थाभेद से अनेक है अवस्थाभेद के आधार पर ही जीव अनेक होते है। मूलाविद्या के ये अवस्था भेद अनिर्वचनीय रजतादि के उपादान है और शुक्ति आदि के ज्ञान से निवृत्त हो जाते है - *अथवा मूलाज्ञानस्यैव अवस्थाभेदः*

*रजताद्युपादानानि शुक्तिकाज्ञानैः*

*सहाध्यासेन निवर्तन्ते इति कथ्यताम्॥* [106]

४. ब्रह्म का अविद्या आश्रयत्व - विवरण के अनुसार अविद्या का आश्रय और विषय दोनों ब्रह्म ही है। विवरणकार के अनुसार अविद्या आश्रय और आवरण का भेद स्वीकार नहीं करती अपितु एक ही विषय में आश्रयत्व और आवरणत्व के लिए दोनों को सम्पादित करती है जैसे अन्धकार आश्रय और आवरण के लिए दो वस्तुओं की अपेक्षा नहीं करता – "*न तावदज्ञानमाश्रयविषयभेद सापेक्षम्। किन्त्वेकस्मिन्नेव वस्तुन्याश्रयत्वमावरणञ्चेति कृत्यद्वयं संपादयति यथा न हि तमो वस्तुद्वयापेक्षमावभासते*"। [107]

**विवरण की प्रमुख टीकाएं**[108] – १. विवरणभावद्योतनिका- चित्सुखाचार्य २. तत्त्वदीपन- अखण्डानन्द – इस टीका पर नृसिंहाश्रम की भावप्रकाशिका टीका है। ३. विवरणप्रमेयसंग्रह – विद्यारण्य मुनि या माधवाचार्य ४. टीकारत्नम - विद्यासागर ५. विवरणदर्पण – रंगराजाध्वरीन्द्र ६. ऋजुविवरण- विष्णुभट्ट ७. विवरणोपन्यास – रामानन्द सरस्वती ८. टीकारत्न – आनन्दपूर्ण

---

106 पंचपादिकाविवरण पृ० ९९

107 पंचपादिकाविवरण पृ० २१०-२११.

108 Advait Vedanta literature – A Bibliographical Survey, R. Thagswami, University of Madras, 1980 pg. 221.

विशेष – धर्मराजाध्वरीन्द्र कृत अद्वैत वेदान्त का प्रमुख प्रकरण ग्रन्थ "वेदान्तपरिभाषा" तथा विद्यारण्यमुनि कृत "विवरणप्रमेयसंग्रह" विवरण सम्प्रदाय का माना जाता है।

## १.५.४.भामती एव विवरण सम्प्रदाय में सैद्धान्तिक वैमत्य

निम्नलिखित तथ्यों को लेकर भामती एवं विवरण में वैमत्य दिखाई देता है –

| भामती | विवरण |
|---|---|
| १.ब्रह्म-जीव-सम्बन्ध में अवच्छेदवाद को स्वीकार किया गया है। | १.ब्रह्म-जीव-सम्बन्ध में प्रतिबिम्बवाद स्वीकार किया गया है। |
| २. अविद्या के नानात्व को स्वीकार किया गया है। | २. अविद्या के एकत्व को स्वीकार किया गया है। |
| ३. अविद्या का आश्रय जीव है। | ३. अविद्या का आश्रय ब्रह्म है। |
| ४.ब्रह्मविचार अध्ययन विधि प्रयुक्त है। | ४.ब्रह्मविचार श्रवण विधि प्रयुक्त है। |
| ५.ब्रह्मसाक्षात्कार में निदिध्यासन साक्षात्कारण है तथा श्रवण और मनन इसके अंग है। | ५.ब्रह्मसाक्षात्कार में श्रवण साक्षात्कारण है तथा मनन और निदिध्यासन इसके अंग है। |
| ६.अध्ययन विधि का प्रयोजन अर्थज्ञान है | ६.अध्ययन विधि का प्रयोजन अक्षरग्रहण है। |
| ७.शब्द से अपरोक्ष ज्ञान होता है। | ७.शब्द से अपरोक्ष ज्ञान नहीं होता है। |
| ८. पञ्चमहाभूत त्रिवृत्कृत् है। | ८. पञ्चमहाभूत पंचीकृत है। |
| ९.सादृश्य अध्यास में कारण है। | ९.सादृश्य अध्यास में कारण नहीं है। |

| | |
|---|---|
| १०.स्वाप्न प्रपञ्च मन का परिणाम है। | १०.स्वाप्न प्रपञ्च अविद्या का परिणाम है। |
| ११. कर्म विविदिषार्थ है। | ११.कर्म विद्यार्थ है। |
| १२. मन इन्द्रिय है। | १२. मन इन्द्रिय नहीं है |

**निष्कर्ष-** इस प्रकार प्रस्तुत अध्याय में सर्वप्रथम तो बादरायण कृत ब्रह्मसूत्र, ब्रह्मसूत्र के अनेकाभिधान, बादरायण तथा वेदव्यास के अभिन्नत्व पर विचार, ब्रह्मसूत्रोक्त वेदान्त की सुदीर्घ परम्परा, शंकरपूर्व ब्रह्मसूत्र भाष्यकार, आचार्य शङ्कर कृत शारीरकभाष्य पर चर्चा की गयी है। इसके पश्चात् शंकरोत्तर ब्रह्मसूत्रभाष्य तथा भामती एवं विवरण टीका तथा टीकाकारों के विषय में सामान्य परिचय दिया गया है।

# अध्याय - २

# अध्यासवाद की पृष्ठभूमि

# अध्याय२. अध्यासवाद की पृष्ठभूमि

## २.१. वैदिक पृष्ठभूमि

अद्वैत वेदान्त का एक मुख्य सिद्धान्त अध्यास है जो अविद्या का व्यापार होने से मिथ्या है। मिथ्या से आशय "*सदसद्विलक्षणत्वं मिथ्यात्वं*" [109] या अनिर्वचनीय[110] होने से है। अतः इस मिथ्या के मूल पर विचार करने पर ज्ञात होता है कि अद्वैतवेदान्त में विवेचित मिथ्यात्व का संकेत सर्वप्रथम हमें नासदीय सूक्त तथा कतिपय सैद्धान्तिक उपनिषदों में प्राप्त होता है। अतः यहाँ नासदीय सूक्त तथा कतिपय सैद्धान्तिक उपनिषदों (जिन पर शांकरभाष्य उपलब्ध है) के सन्दर्भ में अध्यासवाद की पृष्ठभूमि पर प्रकाश डाला गया है।

### २.१.१ नासदीयसूक्त -

उक्त सूक्त में *"नासदासीन्न सदासीत्"*[111] अर्थात् सत् और असत् दोनों ही प्रकारों का निषेध मिलता है। यद्यपि उक्त सदसद् प्रकारों का निषेध जगत् कारण मूलाविद्या के लिये ही हुआ है इसी रूप में मूलाविद्या अद्वैत वेदान्त के अनुसार सदसद् अनिर्वाच्य है एवं मिथ्या है। इस प्रकार आध्यासिक मिथ्यात्व का अर्थ उक्त मन्त्रों से निकाला जा सकता है। सायणाचार्य ने मूलाविद्या के विषय में उक्त मन्त्र की व्याख्या करते हुये कहा है कि जगत् का कारण शशविषाण के समान निरुपाख्य नहीं था और न ही सद्रूप से निर्वाच्य था, किन्तु दोनों से

---

[109] सदसविलक्षणत्वं मिथ्यात्वं , तत्वप्रदीपिका, सम्पा० स्वामी योगीन्द्रानन्द,षड्दर्शन प्रकाशन प्रतिष्ठान, वाराणसी ,पृ० ३३.

[110] मिथ्येति अनिर्वचनीयता उच्यते , पंचपादिका, अनु ० किशोरदास स्वामी, स्वामी रामतीर्थ मिशन, राजपुर , देहरादून, वि०स० २०६०, पृ०१४६.

[111] ऋग्वेद संहिता ,१०।११।११९।१ ,चतुर्थ खण्ड,मैक्समूलर सं. , चौखम्बा, वाराणसी १९६६।

विलक्षण अनिर्वाच्य था।[112] वहीं पर तृतीय मन्त्र में 'तम आसीत्तमसा गूढमग्रेऽप्रकेतम्' तमरूप अविद्या के लिये प्रयोग आया है, जिसका अर्थ सायण ने आवरण शक्तियुक्त भावरूप अज्ञान ही किया है।[113] उक्त दोनों मन्त्रों के भाष्य से यह संकेत मिलता है कि अज्ञान शशविषाण के समान अलीक नहीं है और तृतीय मन्त्र के भाष्य में उसे भावरूप कहा गया है जो कि अलीक से भिन्न है। इस प्रकार अज्ञान भावरूप है, अर्थात् आकाशकुसुम के समान अभावरूप नहीं है और न ब्रह्म के समान ही भावरूप है, किन्तु भावाभाव से विलक्षण अनिर्वचनीय है। यही मिथ्या है, इसलिये अज्ञान भी मिथ्या ही है। ऋग्वेद के षष्ठ मण्डल में 'रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव' परमात्मा के लिये कहा गया है। सायण ने 'प्रतिरूप' का अर्थ प्रतिबिम्ब किया है।[114] सभी शरीर प्रतिबिम्बभूत है अर्थात् प्रतिबिम्बत्वेन मिथ्या है ।

## २.१.२उपनिषद्-गत पृष्ठभूमि

उपनिषदों में आध्यासिक मिथ्यात्व के सूचक ऐसे स्थल एकाधिक हैं। छान्दोग्य में *"अनृतेन हि प्रत्यूढा"* में 'अनृत ' शब्द का अर्थ आचार्य शङ्कर ने अविद्यापरक ही किया है। वहीं पर आनन्द गिरि ने उक्त शब्द का अर्थ किया है 'अनादि अनिर्वाच्य मिथ्याऽज्ञान ।[115] *"वाचारम्भणं विकारो नामधेयं मृत्तिकेतेव सत्यम्"* श्रुति का अर्थ करते हुये आचार्य शङ्कर ने कहा है कि विकारजात सम्पूर्ण कार्य जगत् वस्तुतः कारणाभिन्न है। जिस प्रकार रक्तोपाधानयुक्त स्फटिक मणि में पद्मराग मणि का भ्रम होत है, वस्तुतः वह पद्मराग मणि नहीं है, उसी प्रकार कार्य जगत् ब्रह्म से भिन्न रूप से लगने लगता है किन्तु कार्य जगत्

---

[112] जगतो मूलकारणं तदसच्छशविषाणवन्निरुपाख्यं नासीत्.....नो सन्नैवसदात्मवत्सत्वेन निर्वाच्यमासीत्.....उभयविलक्षणमनिर्वाच्यमेवासीत्। ऋग्वेद संहिता १०।११।१२९।१ ,चतुर्थ खण्ड, सायण भाष्य, सम्पा.मैक्समूलर , चौखम्बा संस्कृत ग्रन्थमाला, वाराणसी, १९६६.

[113] सायणभाष्य १०।११।१२९।१३ पूर्ववत् .

[114] परमात्मा प्रतिरूपः प्रतिबिम्बरूपः सन् सर्वाणि शरीराणि बभूव। ऋग्वेद संहिता ६।४।४७।१८ चतुर्थ खण्ड, सायण भाष्य.

[115] छान्दोग्योपनिषद्, ८।३।१शाङ्कर भाष्य, आनन्द गिरि टीका, आनन्दाश्रम संस्कृत सीरीज, पूना १८९०,पृ. ४२०

कारणब्रह्माभिन्न है।[116] भिन्नत्वेन दिखाई देना ही मिथ्या है। *'एकमेवाद्वितीयम्'* श्रुति की व्याख्या में आनन्दगिरि ने ब्रह्म में स्वगत स्वजातीय-विजातीय भेदों का निषेध किया है।[117] जिसका अर्थ है- भेद मिथ्या। छान्दोग्य-उपनिषद् में ही कहा गया है कि " जहां पर अन्य को देखता है, अन्य को सुनता है, अन्य को जानता है, वह अल्प है"। अर्थात् अन्यत्व का ज्ञान तथ्यहीन है, अन्यत्व मिथ्या है। शङ्कर ने वहीं पर भाष्य में अल्प को स्वप्नवत् मिथ्या कहा है।[118] इस अल्प का अर्थ होता है सीमित, सीमा का अर्थ परिच्छिन्न, देश और काल से परिच्छिन्न । परिच्छिन्न वस्तु अद्वैत के अनुसार मिथ्या है।

मुण्डकोपनिषद् *"ब्रह्मैवेदं विश्वम्"* इसके भाष्य में आचार्य शङ्कर ने नामरूप को अवभास कहा है। अवभास का अर्थ प्रातीतिक है। जिस प्रकार रज्जु में सर्प प्रत्यय अविद्या के कारण होता है, उसी प्रकार अब्रह्म प्रत्यय अविद्यामात्र है। परमार्थ सत्य ब्रह्म ही है।[119] श्वेताश्वतर में 'मायां तु प्रकृतिं विद्यात्' के भाष्य में भाष्यकार आचार्य शंकर ने बताया है कि उस प्रकृत परमेश्वर के रज्जु आदि अधिष्ठानों में कल्पित सर्पादि रूप मायिक अवयवों से अध्यास के द्वारा यह भूर्लोकादि सम्पूर्ण जगत् व्याप्त है तथा यहीं पर शंकर ने अध्यास शब्द का प्रयोग किया है –*"तस्य प्रकृतस्य परमेश्वरस्य रज्वाद्यधिष्ठानेषु कल्पित सर्पादिस्थानियैः मायिकैः स्वावयवैरध्यास द्वारेदं भूरादि सर्वं व्याप्तमेव"।*[120] बृहदारण्यक में *"नेह नानास्ति किंचन"* के भाष्य में आचार्य शङ्कर ने ब्रह्म में नानात्व का निषेध किया है।

---

[116] छान्दोग्योपनिषद्, ६।४।१, शाङ्कर भाष्य ,आनन्दाश्रम पूना, १८९०, पृ. ३१६

[117] पूर्ववत् ,६।२।१, पृ. २९७- २९८.

[118] पूर्ववत्, ७।२४।१ ,पृ. ९० व ४००.

[119] मुण्डकोपनिषद् भाष्य २।२।११, आनन्दाश्रम संस्कृत सीरीज, पूना, १९९६, पृ. ३३- ३४.

[120] श्वेताश्वतरोपनिषद् भाष्य। ४।१०, गीता प्रेस, गोरखपुर, वि० स० २०६५, पृ० १२५१.

नानात्व का अविद्या के कारण आरोप किया जाता है। वस्तुतः अविद्यारोपणव्यतिरेक परमार्थ द्वैत है ही नहीं।[121] अर्थात् द्वैत परमार्थतः मिथ्या है।

तैत्तिरीय में *'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म'* इस मन्त्र के भाष्य में शङ्कर ने सत्य मिथ्या की स्पष्ट परिभाषा दी है। आचार्य शङ्कर के अनुसार 'सत्य वह है जो जिस रूप से है उस रूप से उसका व्यभिचार न हो और जिसका निश्चित रूप व्यभिचरित होता है वह मिथ्या है[122] इस स्थल में आचार्य शङ्कर ने सत्य मिथ्या क्या है- स्पष्ट कर दिया है। सर्वदा जो एकरूप रहने वाला स्वभाव है अर्थात् कूटस्थ स्वभाव वह सत्य है। सत्य में किसी प्रकार परिवर्तन भी नहीं माना गया। इसके विपरीत मिथ्या अपना स्वरूप बदलता रहता है। वस्तुतः मिथ्या का स्वरूप है ही नहीं, अतः वह किसी एक रूप में नहीं रह सकता। शुक्ति-रजत या रज्जु-सर्प कब तक अपने उक्त रूपों को बनाये रख सकते हैं? जब तक अधिष्ठान वस्तु शुक्ति का ज्ञान नहीं होता, जब तक रज्जु का ज्ञान नहीं होता, तब तक ही उक्त रजत और सर्प की स्थिति है। ज्ञान के बाद वे नहीं होते, अतः सत्य ज्ञान से मिथ्या की निवृत्ति होती है। व्यभिचार शब्द से आचार्य ने व्यावृत्ति की ही बात कही है। जिससे कि परवर्ती आचार्यों ने व्यावर्तमान हेतु से विश्व को मिथ्या सिद्ध किया है। इसी प्रकार व्यभिचार से सीमित एवं निःस्वभावत्व भी सिद्ध होते हैं, क्योंकि व्यापक का व्यभिचार सम्भव नहीं है। व्यापक सत् है जो सर्वत्र है, किन्तु जागतिक वस्तुएं सर्वत्र नहीं है, किसी न किसी देश में उनका व्यभिचार है। इसी प्रकार कालिक व्यभिचार भी समझना चाहिये। परिच्छिन्नत्वेन मिथ्या की सिद्धि जो कि परवर्ती आचार्य करते हैं, उसका संकेत ही नहीं, स्पष्ट रूप से निरूपण यहीं पर भाष्यकार ने किया है।

---

[121]बृहदारण्यकोपनिषद् भाष्य ४।४।१९, आनन्दाश्रम संस्कृत सीरीज, पूना, १९२७ , पृ. ६८२ .

[122] सत्यमित यद्रूपेण यन्निश्चितं तद्रूपं न व्यभिचरति तत्सत्यं यद्रूपेण निश्चितं यत्तद्रूपं व्यभिचरदनृतमित्युच्यते। तैत्तिरीयोपनिषद् भाष्य २।१, आनन्दाश्रम संस्कृत सीरीज, पूना, १९९७, पृ. ४८ .

## २.२.श्रीमद्भगवद्गीतागत पृष्ठभूमि

आचार्य शंकर का अध्यासवाद अविद्या (माया) का व्यापार होने से अविद्या ही कहा जाता है – *"तमेतमेवं लक्षणं पण्डिता अविद्येति मन्यन्ते"* [123]। यह अविद्या भगवद्गीता में परमेश्वर की शक्ति के रूप उपवर्णित है जिससे वह यन्त्रारूढ प्राणियों को अपनी माया से भ्रमाता हुआ सभी प्राणियों के हृदय में स्थित है – "*ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति ।*

*भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया"* [124]॥

जिस प्रकार शंकर दर्शन में अध्यास या अविद्या ज्ञान बाधक का तत्त्व है उसी रूप में यह भगवद्गीता में चर्चित है। परमतत्त्व को वही प्राप्त कर सकता है जो माया को पार कर लेता है –

*"देवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया ।*

*मामेव ते प्रतिपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते"* ॥ [125]

अज्ञान कृत अध्यास को भगवद्गीता मे जीवों को मोहित करने के रूप में वर्णित किया है –

*"नादत्ते कस्यचित् पापं न चैव सुकृतं विभुः।*

*अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तवः"॥*

---

[123] ब्रह्मसूत्रशांकरभाष्य (रत्नप्रभा टीका सहित),अनु० यतिवरभोलेबाबा, भारतीय विद्या प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथमभाग, पृ०८८,२००४, पृ० १६.

[124] श्रीमद्भगवद्गीता, १८.६१, अनु० हरिदास गोयन्दका,गीताप्रेस गोरखपुर, वि० सं० २०६६, पृ०४५६.

[125] पूर्ववत्, ७.१४ पृ०२०२.

इसी पर शंकर भाष्य करते हुए लिखते हैं- *"अज्ञानेन आवृतं ज्ञानं विवेकविज्ञानं तेन मुह्यन्ति करोमि कारयामि भोक्ष्ये भोजयामि इति एवं मोहं गच्छन्ति अविवेकिनः संसारिणो जन्तवः॥*[126]

इसी प्रकार आचार्य शंकर ने अध्यासभाष्य में जीव के ज्ञातृत्व-कर्तृत्व–भोक्तृत्व को अध्यासजन्य कहा है-*तमेतमविद्याख्यमात्मानात्मनोः इतरेतराध्यासं पुरस्कृत्य सर्वे प्रमाणप्रमेयव्यव्हारा लौकिका वैदिकाश्च प्रवृत्ताः सर्वाणि च शास्त्राणि विधिप्रतिषेधमोक्षपराणि*[127] ।

इस प्रकार भगवद्गीता में उक्त अध्यास सान्दर्भिक माया सम्बन्धी उल्लेख न्यून रूप में ही मिलता है परन्तु इन दृष्टान्तों में अध्यास की एक प्रबल पृष्ठभूमि मिलती है ।

## २.३.आचार्य गौडपाद दर्शन में अध्यास की पृष्ठभूमि

आचार्य गौडपाद के अनुसार परमार्थतः प्रपञ्च मिथ्या है । आचार्य गौडपाद ने माण्डूक्यकारिका के वैतथ्य नामक द्वितीय प्रकरण में भाव वस्तुओं को स्वप्नवत् मिथ्या कहा है। जिस प्रकार स्वप्न वस्तुऍं अन्तःस्थ होती हैं, उनमें बाह्यता नही होती फिर भी वे स्वाप्निक वस्तुऍं बाह्य वस्तुओं के समान भासने लगती हैं । उसी प्रकार जाग्रत वस्तुओं को समझना चाहिऍ । स्वाप्निक वस्तुऍं तथ्यहीन है अतः स्वाप्निक वस्तुओं के समान जाग्रत वस्तुऍं भी तथ्यहीन है ।[128] आचार्य गौडपाद ने स्वाप्निक वस्तुओं को मिथ्या सिद्ध करने के लिऍ श्रुति से

---

[126] भगवद्गीताशांकरभाष्य ,५/१५ , पृ० १५९,

[127] ब्रह्मसूत्रशांकरभाष्य (रत्नप्रभा टीका सहित),अनु० यतिवरभोलेबाबा, भारतीय विद्या प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथमभाग, २००४, पृ० ४२.

[128] " वैतथ्यं सर्वभावानां स्वपनमाहुर्मनीषिणः" । माण्डूक्यकारिका, २/१, आनन्दाश्रम संस्कृत सीरीज, पूना,१६२१. पृ० ६५

भी प्रमाण उद्धृत किये हैं। श्रुति में कहा गया है कि स्वप्न में रथ, उसके वाहन अश्व, और रथमार्ग की सामग्री नहीं है फिर भी वे स्वप्न में दिखाई देते हैं किन्तु वे सभी मनःकल्पित हैं,सत्य नहीं हैं - *अभावश्च रथादीनां श्रूयते न्यायपूर्वकम् , वैतथ्य तेन वै प्राप्तं स्वप्न आहुः प्रकाशितम् ।*[129]

आचार्य गौडपाद द्वारा दिये गये स्वप्न के दृष्टान्त से वैतथ्य प्रकरण के चतुर्थकारिकाभाष्य में स्वाप्निक वस्तुओं के समान जाग्रत वस्तुओं को भी आचार्य शंकर ने वैतथ्यानुमान द्वारा मिथ्या सिद्ध किया है – प्रतिज्ञा- जाग्रत दृश्य वैतथ्य है , हेतु - दृश्यत्वात्, दृष्टान्त- स्वप्नदृश्यभाव के समान, उपनय- जाग्रत वस्तुओं में दृश्यत्व है निगमन – दृश्यत्वेन वे वैतथ्य है[130] । आचार्य गौडपाद के अनुसार जब वस्तु के वास्तविक स्वरूप का ज्ञान नही होता तभी तक मिथ्या ज्ञान होता है । जिस प्रकार रज्जु का सम्यक् ज्ञान होने तक अन्धकार में सर्प विकल्पित होता है उसी प्रकार आत्मा का सम्यक् ज्ञान न होने से वह जीव के रूप में कल्पित होता है।यह विकल्पना प्रकाशस्वरूप परमतत्त्व की माया ही है जिससे वह स्वयं विमोहित हो रहा है[131]।इस प्रकार शांकर अध्यासवाद के मिथ्यात्व तथा बाधकत्व का आधार आचार्य गौडपाद के दर्शन में भी देखने को मिलता है।

---

[129] पूर्ववत २/३, पृ० ६५.

[130] शंकरोत्तर अद्वैत वेदान्त में मिथ्यात्व निरूपण, ले०स्वामी अभेदानन्द, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, १९७३, पृ०९.

[131] अनिश्चिता यथारज्जुन्धकारे विकल्पिता ।

सर्पधारादिभिर्भावैस्तद्वदात्मा विकल्पित ॥

मायैषा तस्य देवस्य यया सम्मोहितः स्वयम् ॥

गौ०पा० का० २/१७ ,उद्धृत्- अद्वैत वेदान्त में मायावाद, ले० शशिकान्त पाठक, विद्यानिधी प्रकाशन, नई दिल्ली , २००५, पृ० ७५.

## २.४. पंचख्याति

भारतीय मनीषियों के उर्वरा मस्तिष्क में जिस ज्ञान, कर्म और भक्ति के त्रिपथगा का प्रवाह उदित हुआ है उसने दूर-दूर के मानुषों के कल्मष को धोकर उन्हें पवित्र, नित्य, शुद्ध, बुद्ध और सदा स्वच्छ बनाकर मानवता का पूर्ण और सर्वाङ्गीण विकास किया है। आचार्य शंकर ने अध्यास सिध्दान्त के सन्दर्भ में अनिर्वचनीय ख्याति की स्थापना की जिसकी व्यापक पृष्ठभूमि है। पूर्ववर्ती आचार्यों द्वारा ख्याति के भिन्न भिन्न सिद्धान्त प्रतिपादित किये गये हैं इस पृष्ठभूमि के होने से ही आचार्य शंकर ने सर्वदोषविमुक्त भ्रम के सिद्धान्त "अनिर्वचनीयख्याति" का प्रतिपादन किया है । भ्रमस्थल में भी दार्शनिकों ने सूक्ष्म विवेचन किया है किन्तु भ्रमस्थल में दार्शनिकों के बीच मतभेद है। शंकरपूर्वदर्शनों में भ्रम को अत्यन्त असत् माना है परन्तु शंकर ने भ्रम के स्थान पर भ्रम से व्यापक अर्थ में अध्यास शब्द का प्रयोग किया है और उसे मिथ्या या सदसदविलक्षण माना है जो अत्यन्त असत् न होकर प्रातिभासिक सत्ता वाला है। परम सत्ता के विषय में दार्शनिकों की धारणाएं भिन्न-भिन्न हैं। सत्ता सम्बन्धी अपनी-अपनी धारणा के साथ ही भ्रम स्थान में भी सैद्धान्तिक मतभेद आवश्यक है। अद्वैतवेदान्त के प्राचीन ग्रन्थों में अनिर्वचनीय ख्याति सहित पञ्चख्याति का उल्लेख है। उन ख्यातियों के नाम हैं-

*"आत्मख्यातिरसत्ख्यातिरख्यातिः ख्यातिरन्यथा ।*

*तथाऽनिर्वचनीयख्यातिरेतत्ख्याति पञ्चकम्" ॥* [132]

१- आत्मख्याति- विज्ञानवादी बौद्धों का मत ।

२- असत्ख्याति- शून्यवादी बौद्धों का मत ।

३- अख्याति- मीमांसक प्रभाकर का मत ।

---

[132] ब्रह्मसूत्रशांकरभाष्य (रत्नप्रभा टीका सहित),अनु० यतिवरभोलेबाबा, भारतीय विद्या प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथमभाग, २००४, पृ० ३६.

४- अन्यथाख्याति- न्याय का मत ।

५- अनिर्वचनीयख्याति- अद्वैतवेदान्त का मत ।

इष्टसिद्धिकार विमुक्तात्ममुनि ने इष्टसिद्धि में संक्षेपतः ख्याति तीन प्रकार की बतलाई है। (१) सत्ख्याति, (२) असत्ख्याति एवं (३) सदसदनिर्वचनीय ख्याति

भासर्वज्ञ ने न्यायभूषण में अष्टख्यातियों का उल्लेख किया है-

१- अख्याति- निरालम्बन ख्याति ही अख्याति है (माध्यमिक)

२- असत्ख्याति- असदवलम्बन ख्याति असत्ख्याति है (माध्यमिक एकदेशी) ।

३- प्रसिद्धार्थख्याति- (चार्वाक)

४- अलौकिकार्थख्याति- (भट्टोम्बेक प्रमुख)

५- स्मृतिविप्रमोषख्याति- (प्राभाकर)

६- आत्मख्याति- (सौत्रान्तिक वैभाषिक योगाचार )

७- सदसत्वाद्यनिर्वचनीय ख्याति- (अद्वैतवेदान्ती)

८- विपरीतख्याति- (न्याय) ।[133]

परवर्ती काल में रामानुज सम्प्रदाय का सत्ख्यातिवाद, माध्व का असत्ख्यातिवाद (इसे साधिष्ठानक असत्ख्यातिवाद कहा गया है) प्रसिद्ध हुये हैं। साङ्ख्यदर्शन द्वारा सदसत्ख्याति स्वीकृत है।

भासर्वज्ञ ने निरालम्बन अख्याति की चर्चा की है जो कि अन्यत्र चर्चित नहीं है। भासर्वज्ञ ने उक्त मत को पूर्वपक्ष के रूप में रखते हुए कहा है कि मरुस्थल में जल-ज्ञान में जल की सत्ता नहीं है, क्योंकि ऐसा होने पर जल का ग्रहण होना चाहिये। मरीचि भी जल का रूप धारण नहीं करती, क्योंकि वे उससे भिन्न है। अतः निरालम्बन ही मरुस्थल जल है। इसी प्रकार

[133] न्यायभूषणम् (टिप्पणी सहित), षड्दर्शन प्रकाशन, वाराणसी, १९६८, पृ. २६,

चार्वाक के प्रसिद्धार्थ ख्याति में भ्रम माना ही नहीं गया, क्योंकि उनके अनुसार भ्रमस्थल में भी तत्कालीन प्रमाणसिद्ध वस्तु की ही प्रतीति होती है। इन दोनों ख्यातिवादों के खण्डन में उन्होंने युक्तियां भी दी हैं।[134] इस प्रकार नव ख्यातिवादों की भ्रमस्थल में चर्चा मिलती है, परन्तु इनमें से अद्वैतग्रन्थों में पञ्चख्यातियों की ही अधिक चर्चा है परन्तु यहाँ पञ्चख्याति के अतिरिक्त अन्यथाख्याति – न्यायदर्शनाभिमत, विपरीतख्याति- कुमारिल भट्टाभिमत, सदसद्ख्याति – सांख्याभिमत तथा सत्ख्याति - रामानुजाभिमत की भी चर्चा आधारिक पृष्ठभूमि तथा उपादेयता को ध्यान में रखकर की जा रही है -

### २.४.१. आत्मख्याति

बौद्धविज्ञानवाद के अनुसार विज्ञान या विज्ञप्ति के अतिरिक्त बाह्य पदार्थ नहीं है। हम जो कुछ भी देखते हैं वे चित्तमात्र है, बाह्यरूप में असत् है, विज्ञानवादी इसलिये आत्मख्यातिवादी है। आत्मा शब्द का यहाँ पर विज्ञान- अर्थ है। विज्ञानवादी के अतिरिक्त बौद्ध, सौत्रान्तिक और वैभाषिक भी आत्मख्यातिवादी हैं, किन्तु सौत्रान्तिक और वैभाषिक बाह्यपदार्थास्तित्ववादी हैं, वैभाषिक मत में बाह्यपदार्थ प्रत्यक्ष हैं, सौत्रन्तिकमत में अनुमेय, इसलिये इन दोनों के मत में भ्रम का अधिष्ठान बाह्य पदार्थ और आरोप्य वस्तु ज्ञानाकार है।[135] अध्यासभाष्य में आचार्य शंकर ने अध्यास के लक्षण की तुलना अन्य दार्शनिकों से की है और उक्त आत्मख्यातिवादी तीनों बौद्ध सम्प्रदायों का तथा असत्ख्यातिवादी शून्यवाद का उल्लेख "तं केचित् अन्यत्र अन्यधर्माध्यासः"[136], इस वाक्य से किया है।इस पर रत्नप्रभाकार ने विज्ञानवादियो के मत को स्पष्ठ करते हुए कहते है कि अन्य में अर्थात् बाह्य सीप आदि में अन्य के धर्म का अर्थात् बुद्धि रूपी आत्मा के धर्म आदि का अध्यास मानते है अर्थात् आन्तर

---

[134] न्यायभूषण पृ. २६, २७

[135] वेदान्तकल्पतरु एवं परिमल- ,सम्पा० कन्हैया लाल जोशी, परिमल पब्लिकेशन, नई दिल्ली,पृ, २६ ।

[136] ब्रह्मसूत्रशाङ्करभाष्य- पृ. १८ ।

चाँन्दी का बाह्य के पदार्थ के रूप में अवभास होता है [137]। विज्ञानवादी बौद्धों का कहना है कि जो वस्तु जिस रूप में हमारे ज्ञान में प्रतीत होती है, वह वस्तु उसी रूप में है यही ज्ञान का साधारण नियम है। जहां पर इस नियम का व्यतिक्रम होता है अर्थात् किसी प्रबल बाधकप्रत्यय द्वारा पूर्वोत्पन्न ज्ञान का बाध हो जाता है, तब वह ब्रह्म सिद्ध होता है।[138] अद्वैतवेदान्त के अनुसार भी बाधितविषयक ज्ञान भ्रम है। "यह रजत है" इस ज्ञान के पश्चात "यह रजत नहीं है"इस बाधक प्रत्यय से पूर्वोक्त ज्ञान "यह रजत है" भ्रम सिद्ध होता है।[139]

विज्ञानवादी बौद्धों के आत्मख्यातिवाद को प्रस्तुत करते हुये आनन्दबोध कहते हैं कि विज्ञानवादी बौद्ध ज्ञानाकार रजत के बाहर अवभास को ही विभ्रम कहते हैं।[140] विद्यारण्यमुनि ने भ्रमस्थल में विज्ञानवादी के दृष्टिकोण को कि 'शुक्तिरजत विज्ञान रूप है', अनुमान द्वारा पूर्वपक्ष के रूप में प्रस्तुत किया है। अनुमान इस प्रकार है- विमतरजत बुद्धि का रूप है, क्योंकि यह इन्द्रिय सन्निकर्ष के बिना ही प्रत्यक्ष होता है, जैसा कि बुद्धि'।[141] जिस प्रकार बुद्धि के प्रत्यक्ष के लिये इन्द्रियसन्निकर्ष की आवश्यकता नहीं पडती, क्योंकि बुद्धि का मानस प्रत्यक्ष होता है, उसी प्रकार शुक्तिरजत भी बुद्धिरूप होने के कारण इन्द्रियसन्निकर्षनिरपेक्ष होकर प्रत्यक्ष होता है, अतः वह बुद्धि या विज्ञान के अतिरिक्त कुछ नहीं।इस पर माधवाचार्य शङ्का करते हैं कि विज्ञानवाद के अनुसार सहकारी प्रत्यय, अधिपति प्रत्यय, समनन्तर प्रत्यय और आलम्बन प्रत्यय इन चार प्रकार के हेतुओं से ही चित्त-चैत्यों की उत्पत्ति होती है। इसमें से सहकारी प्रत्यय आलोकादि से रजत की उत्पत्ति

---

[137] आत्मख्यातिवादिनस्तु बाह्यशुक्त्यादौ बुद्धिरूपात्मनो धर्मस्य रजतस्य अध्यासः, आन्तरस्य रजतस्य बहिर्वत् अवभास इत्यर्थः । रत्नप्रभा पृ० ३६.

[138] न्यायमकरन्द, सम्पा० एन० एस०, स्वामी, चौखम्भा, संस्कृत बुक डिपो, वाराणसी,पृ. ९९ .

[139] पूर्ववत् .

[140] केचित्तु ज्ञानाकारस्यैव बहिरवभासो विभ्रम इत्याहुः। न्यायमकरन्द- पृ. ९९ .

[141] विवरणप्रमेयसंग्रह (विद्यारण्यमुनि,), सम्पा० कृष्ण पन्त शास्त्री, अच्युत ग्रन्थमाला, काशी, १९९६, पृ. १२३.

नहीं मान सकते, क्योंकि आलोकादि तो स्पष्टता के प्रति हेतु होते हैं। अधिपति प्रत्यय चक्षुरादि विषय नियमन में हेतु है, न कि उत्पन्न करने में। इसी प्रकार समनन्तर प्रत्यय पूर्वज्ञान से भी रजत उत्पन्न नहीं हो सकता, क्योंकि विजातीय घटादि के ज्ञान, उससे विजातीय रजतभ्रम उत्पद्ध करने में बाधक हो जायेंगे और आलम्बन प्रत्यय से भी शुक्तिरजत की उत्पत्ति नहीं मान सकते,क्योंकि विज्ञानवादी बाह्यवस्तु मानते नहीं, फिर विज्ञान को रजत का आकार कहां से प्राप्त होगा?[142] इसका समाधान देते हुये विज्ञानवादी का कहना है कि अनादि संस्कार के सामर्थ्य से ही विज्ञान रजताकार हो सकेगा।[143] रजत संस्कार एवं रजतभ्रम के बीच में घटादि के ज्ञान व्यवधान उत्पन्न करेंगे, इस प्रकार व्यवहित होने पर रजत संस्कार रजतभ्रम को उत्पन्न नहीं कर सकेंगे? इसका समाधान है कि जिस प्रकार ब्रीहि का बीज अङ्कुरित होकर पुनः बीज को उत्पन्न करता है, बीज में अङ्कुर का व्यवधान उसमें बाधक नहीं होता, उसी प्रकार व्यवहित होने पर भी सजातीय संस्कार सजातीय ज्ञान को उत्पन्न करने में समर्थ है। इस अनादि वासना द्वारा उपस्थापित रजत ज्ञानरूप ही होता है, भ्रान्ति से बाहर का जैसा प्रतीत होता है।[144] ज्ञान यदि सत्विषयक होगा तो उसको भ्रम नहीं कहा जा सकता, क्योंकि संवादि प्रवृत्ति अर्थात् सफलप्रवृत्ति होने से ज्ञान सत्य होगा तथा सफलप्रवृत्ति के लिये बाहर विषय को होना चाहिये। यदि विषय नहीं तो प्रवृत्ति सफल नहीं होगी, जैसेकि शुक्तिरजत में रजत समझकर प्रवृत्ति के पश्चात् रजत न मिलने पर निराश होकर भ्रान्त व्यक्ति समझ लता है कि 'यह रजत नहीं है', मुझे भ्रम हुआ था । इससे यह सिद्ध होता है कि विषय के अभाव होने के कारण तद्विषयक ज्ञान भी मिथ्या कहलाता है। एक के मिथ्या होने पर अर्थात् विषय के मिथ्या होने पर ज्ञान भी मिथ्या या भ्रान्त हो जाता है। इस कारण यहां पर आत्मख्यातिवाद के अनुसार बाध किसका होता है? यह विचारणीय है। बाध

---

[142] पूर्ववत्- १२३, १२४ .

[143] संस्कारसामर्थ्यादिति ब्रूमः, पूर्ववत्,पृ. १२४ .

[144] अनादिवासनाप्रापितं रजतं बुद्धिरूपमेव सद् भ्रान्त्या बहिर्वदवभासते। विवरणप्रमेय सङ्ग्रह पृ. १२४ .

क्या रजत का होता है या इदं का? आत्मख्यातिवादी कहते हैं कि 'इदं रजतम्' में इदमंश का ही बाध होता है। रजतांश का बाध नहीं होता। उसके लिये विज्ञानवादी गौरवदोष का तर्क प्रस्तुत करते हैं।[145] उनका कहना है कि 'इदं रजतम्' में रजत विशेष्य या धर्मी है, एवं 'इदं' विशेषण या धर्म है। यदि एक के बाध मानने पर कार्य सिद्ध हो तो लाघव होगा और लाघव होना हमारे पक्ष में एक समीचीन युक्ति है। दो के बाध मानने पर गौरव होगा। गौरव एक दोष है जो पक्ष को कमजोर करता है, अतः मात्र 'इदं' का ही बाध माना जाये।[146] इससे इदमंश ही मिथ्या निश्चित हो जायेगा। इदमंश के बिना रजत ज्ञानाकार ही रह जायेगा, क्योंकि बाह्यता इदन्तामात्र में ही थी। इदन्ता का बाध होने पर बाह्यता का बाध हो जाता है, तब रजत जो कि सामने नहीं है, ज्ञान में ही रह जाता है।[147] सामने तो इदं ही होता है न कि रजत, वह तो पहले से ज्ञान में है। इस प्रकार यह सिद्ध हो जाता है कि बाध बुद्धि द्वारा इदन्ता का ही निराकरण होता है, न कि रजत का।[148]

बौद्धविज्ञानवादी के इस सिद्धान्त का रहस्य है उनका आत्मनिष्ठविज्ञानवाद। विज्ञानवादी भ्रमस्थल में रजत को विज्ञान का आकार मात्र मानते हैं और बाह्य इदं का निराकरण करते हैं, सम्पूर्ण विश्व भी उनके अनुसार उनके आन्तर विज्ञान में ही स्थित है। सब कुछ आन्तर विज्ञान का ही प्रवाहमात्र है। इस प्रपञ्च की व्याख्या करने के लिये विज्ञानवादी के अनुसार अनादि वासना के बल से विज्ञान या बुध्दि ही ज्ञाता-ज्ञान- ज्ञेय के रूप में पृथक- पृथक अवभासित होता है , यही भ्रम है ।

---

[145] नेदं रजतमिति बाधस्येदन्तामात्रगौचरत्वात् द्वयोर्बाधकल्पनायां कल्पनागौरवात् नेदं रजतमिति च रजते बाधादर्शनात् ॥ तत्त्वप्रदीपिका, सम्पा० योगीन्द्रानन्द, षडदर्शन प्रकाशन प्रतिष्ठान, वाराणसी,-पृ. ७३

[146] नेदं रजतमिति च बाधस्येदन्तामात्रबाधेनोपपत्तौ- भामती, व्या०स्वामी योगीन्द्रानन्द, चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, २००५, पृ. २६ .

[147] तथा च रजतं बहिर्बाधितमर्थान्तरे ज्ञाने व्यवतिष्ठत इति । पूर्ववत् .

[148] इष्टसिद्धि, सम्पा० एम० हिरियन्ना, गायकवाड ओरियन्टल इंस्टिट्यूट, बडौदा,पृ० ४०, ४१ .

## २.४.२. असत्ख्याति

शून्यवादी माध्यमिक "दृश्य प्रपञ्च को एवं विज्ञान" को असत् कहते हैं। शून्यवादी के अनुसार ज्ञेय, ज्ञाता एवं ज्ञान तीनों ही असत् हैं।[149]क्यो कि एकमात्र सत् तत्त्व शुन्य है वह चतुष्कोटिविनिर्मुक्त है – १.न सत्, २.न असत्, ३.न उभयात्मक (सत् एवं असत् दोनों), ४.न अनुभयात्मक (न सत् एवं न असत् दोनों)[150] । भ्रमस्थल में भी भ्रमाधिष्ठान शुक्ति असत् है एवं आरोप्य विषय रजत भी असत् है। शुक्ति रजत भ्रम होने से अत्यन्त असत् रजत की प्रतीति होती है। न्यायमकरन्द द्वारा कहा गया है कि – शून्यवादी के अनुसार अत्यन्त असत् अर्थ की प्रकाशित करने वाला ज्ञान ही विभ्रम है।[151] न्याय, मीमांसा, वैशेषिक, वेदान्त के दर्शनग्रन्थों में माध्यमिक को शून्य या असत्ख्यातिवादी के रूप में प्रस्तुत किया है। नागार्जुन ने शून्य को माध्यमिक कारिका में कहीं कहीं आलोकदृश्य के समान ही निःस्वभाव कहा है –

*आकाशं शशशृंग च बन्ध्यायाः पुत्र एव च ।*

*असन्तश्चाभिव्यज्यन्ते तथा भावेषु कल्पनम्। ।*[152]

आचार्य शङ्कर के 'अन्यत्र अन्य धर्माध्यास' का यहां पर अर्थ है- अन्यत्र=असत् शुक्तौ अन्यधर्मस्य=असत् रजतस्य धर्मस्य अध्यासः। आरोपणीय और आरोपाधिष्ठान दोनों को असत् मानने पर असत् आरोपाधिष्ठान को जानने पर भी भ्रम की निवृत्ति नहीं होगी, क्योंकि

---

[149] सर्वदर्शनसङ्ग्रहः (बौद्धदर्शन) ,व्या० उमाशंकर शर्मा ऋषि, चौखम्बा प्रतिष्ठान नई दिल्ली, २००६, पृ. ६३.

[150] न सन्नासन् न सदसदन् न चाप्यनुभयात्मकम् ।

चतुष्कोटिविनिर्मुक्तं तत्त्वं माध्यमिको विदुः ॥ माध्यमिककारिका १.७ ,सम्पा०,प्रो पी० एल० वैद्य, मिथिला संस्कृतविद्यापीठ, बोध्द संस्कृतग्रन्थावली सं १०, दरभंगा, १९६०.

[151] **"अन्य तु अत्यन्तमसन्तमर्थमवभासयन्ती सांवदेवविभ्रम इत्याचक्षते"**,न्यायमकरन्द, सम्पा० एन० एस० स्वामी, चौखम्भा संस्कृत बुक डिपो, वाराणसी, १९०७, पृ. १०२ ।

[152] माध्यमिकशास्त्र, पी० एल० वैद्य, दरभंगा, १६०७, पृ०१६६ .

माध्यमिकों ने शुक्तिरजत एवं शुक्ति दोनों को असत् कहा है। सबसे अधिक कठिनाई इस सिद्धान्त में भी विज्ञानवाद के समान ही भ्रम और व्यवहार में अन्तर का न होना है । घटज्ञान और शुक्तिरजतज्ञान में एक को भ्रम और अन्य को प्रमा कहने की कसौटी नहीं रहेगी,इसलिये भ्रम की व्याख्या असत्ख्याति को मान कर नहीं दी जा सकती।[153] अतः यह सिद्धान्त भी मान्य नहीं हो सकता।

### २.४.३. अख्याति

मीमांसक प्रभाकर गुरु के मत में ख्यातिवाद को अख्याति के नाम से जाना जाता है। अख्याति मीमांसक प्रभाकर सम्प्रदाय के अनुसार सभी ज्ञान यथार्थ हैं। उनके अनुसार अयथार्थ ज्ञान है ही नहीं। शालिकनाथ ने प्रकरणपञ्जिका में प्रभाकर मत के ज्ञान के सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हुये कहा है कि सभी ज्ञान यथार्थ है।[154] अतः इस सिद्धान्त के अनुसार "इदं रजतम्" इसके पश्चात् जो "नेदं रजतम्" ज्ञान होता है यहां पर भी न तो "इदम्" तत्त्व का निषेध होता , न ही रजतम् का निषेध होता है। अपितु रजत के साथ इदं के असम्बन्ध के ज्ञान न होने के कारण या दोनो मध्य भेद ज्ञान न हो पाने के कारण "यह रजत है", इस प्रकार शब्दादि प्रयोग रूप व्यवहार का ही प्रतिषेध होता है।[155] भ्रम के प्राभाकरसंमत स्वरूप का विवेचन करते हुये आचार्य शङ्कर ने कहा है -

"यत्र यदध्यासस्तद्विवेकाग्रहनिबन्धनो भ्रम इति"।[156] अर्थात् जिस वस्तु में जिस वस्तु का भ्रम या अध्यास है,उन दोनों वस्तुओं में जो परस्पर भेद है, उसका अग्रहण ही भ्रम है। भेद-अग्रहण

---

[153] इष्टसिद्धि भूमिका, पृ. २६ ।

[154] यथार्थ सर्वमेवेहविज्ञानम्। - प्रकरण भूमिका पञ्जिका ४१, उद्धृत् – शंकरोत्तर अद्वैत वेदान्त में मिथ्यात्व निरूपण, ले० स्वामी अभेदानन्द, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, १९७३ पृ० ४४.

[155] "न चैष रजतस्य निषेधः नदान्तायाः किन्तु विवेकाग्रहप्रसंजितस्य रजतमिति रजतव्यवहारस्य"।– भामती पृ. २६ ।

[156] ब्रह्मसूत्रशाङ्करभाष्य- पृ. १८-२७ ।

के कारण ही भ्रम उत्पन्न होता है। दोनों वस्तुओं के भेद को भूलकर ही 'इदं रजतम्' दोनों को मिलाकर भाषा व्यवहार करते हैं, यही भ्रम है।[157] "इदं रजतम्" इस भ्रमस्थल पर पहले चक्षु से शुक्ति संयोग होता है परन्तु नेत्रगत दोष के कारण के कारण शुक्तिकात्व विशेष से रहित केवल शुक्ति रुप द्रव्य या सामान्य ज्ञान का ही ग्रहण होता है इसके बाद चाकचिक्य के सादृश्य के कारण रजत का स्मरण होता है यहाँ मनोदोष या स्मृति दोष के कारण केवल रजत के गुण(चाकचिक्य या चमकीलापन) का ग्रहण होता है फिर इनके मध्य भेद का ज्ञान न हो पाने के कारण शुक्ति में रजत का भ्रम होकर वह "इदं रजतम्" इस प्रकार का व्यव्हार होता है । इस प्रकार यहाँ दो प्रकार का ज्ञान है १.प्रत्यक्ष या अनुभव (इदं) तथा २. स्मृत ज्ञान (रजतम्) दोनो यथार्थ है[158] । भ्रम दोनो मध्य "भेदाग्रह" है ।भ्रमवादी जो शुक्ति में रजत का प्रयोग मानते हैं, वह समीचीन नहीं हैं क्योंकि उक्त शुक्ति - रजत भ्रमस्थल में रजत का आलम्बन शुक्ति का नहीं हो सकता। ऐसा होने पर स्वानुभवविरोध होगा। भ्रमवादी जब रजत का आलम्बन शुक्ति को कहते हैं। उनसे प्राभाकरों का प्रश्न कि "आलम्बन से भ्रमवादियों का क्या अभिप्राय है"? क्या जिसकी सत्ता है वह वस्तु ज्ञान का आलम्बन है। ऐसा कहने पर अतिप्रसङ्ग दोष होगा। संसार में जितनी सत् वस्तु जहां भी है वे समस्त वस्तुऍं किसी भी ज्ञान का आलम्बन हो जायेगी। जैसे शुक्ति रजत भ्रम स्थल में घट या पट आलम्बन हो जाएगा क्योंकि सत्ता तो उनकी भी है । यदि भ्रमवादी इदं (शुक्ति) को कारणत्वेन रजत ज्ञान का विषय मानते हैं तो भी समीचीन नहीं है। ज्ञान का कारण इन्द्रियां भी हो सकती हैं। प्रत्यक्ष ज्ञान के प्रति इन्द्रियां भी कारण है। अतः इद्रियां भी रजत ज्ञान का विषय क्यों न हो। यदि यह कहा जाय कि भासकत्व ही ज्ञान का आलम्बन का कारण है। तब भी शुक्ति रजत के ज्ञान का आलम्बन हो ही नहीं सकती। इदं रजतम् में शुक्ति की प्रतीति नहीं अपितु रजत भासित

---

[157] भामती – पृ.२७ ।

[158] "तथा च रजतमिति द्वे विज्ञाने स्मृत्यनुभवरूपे" । भामती पृ० २७.

" रजतमिदमिति नैकं ज्ञानं किन्तु द्वे एते विज्ञाने" । प्रकरण पञ्चिका ५, पृ० ४३.

होता है । अर्थात् शुक्ति भासती नहीं हैं, अतः वह आलम्बन नहीं हो सकती।[159] उक्त भ्रमस्थल में "रजत" इस प्रकार का अनुभव होता है। शुक्ति ऐसा नहीं होता। अतः अनुभव का विरोध होगा।

जैसा कि पूर्व में कहा जा चुका है कि प्राभाकर मत में समस्त ज्ञान यथार्थ ज्ञान होता है अतः कोई ज्ञान अयथार्थ होता ही नहीं इस शुक्ति रजत भ्रम स्थल पर शुक्ति ज्ञान और रजत ज्ञान दोनो यथार्थ है केवल उनके मध्य भेद को न जान पाना ही (भेदाग्रह या विवेकाग्रह ) ही भ्रम है । चक्षुरादि इन्द्रियां यथार्थ ज्ञान उत्पन्न करने में सहायक होती हैं। न कि मिथ्या ज्ञान को उत्पन्न करने में। दृष्टेन्द्रियां भी मिथ्या ज्ञान उत्पन्न करने में समर्थ नहीं हैं, क्योंकि दोष से दूषित होने पर केवडे का बीज बट के अङ्कुर को उत्पन्न करने में समर्थ नहीं हो सकता। इसी कारण मानना पडेगा कि कारणगत दोष कारण में कार्य जन शक्ति को व्यवहृत करते हैं, कारण में नये कार्य को उत्पन्न करने की शक्ति उत्पन्न नहीं करती हैं।[160]

मीमांसक प्राभाकरों का और भी कहना है कि ज्ञान यदि निजविषयक व्यभिचारी होता है तो सभी ज्ञानों में प्रामाण्यसंशय होगा। फलतः किसी भी वस्तु का स्वरूपनिर्णय करना असम्भव हो जायेगा, इसलिये प्राभाकारों के अनुसार जितने प्रकार के ज्ञान हैं, वे सभी यथार्थ हैं।[161]

---

[159] न हि निर्भासस्य शुक्तिकालन्बनं युक्तम् अनुभवविरोधात् न खलु सत्तामात्रेणावलम्बनम् अति प्रसंगात्..... इत्यादि।– भामती, पृ. २३ ।

[160] भामती, पृ. २७, न्यायमकरन्द- पृ. ६० ।

[161] तथा च- यथार्थाः सर्वे विवादास्पदीभूताः प्रत्यययाः प्रत्ययत्वात्संप्रतिपन्नसमीचीनप्रत्ययवद्। न्यायमकरन्द- पृ. ६५ सर्वज्ञानं समीचीनमास्थेयम्- भामती- पृ. २७ ।

## २.४.४. अन्यथाख्याति

भ्रम को न्यायदर्शन में विपर्यय कहा है, विपर्यय का लक्षण करते हुए भासर्वज्ञ ने कहा है- **"मिथ्याध्यवसायो विपर्ययः"**।[162] अर्थात् विपरीतार्थ निश्चय या जो जहां पर नहीं वहां उसको समझना ही विपर्यय है। नैयायिकों ने भ्रम की व्याख्या अन्यथाख्याति द्वारा की है।शुक्ति का अन्यथा अर्थात् अन्य रूप में रजत में भासित होना । उनके अनुसार भ्रमस्थल में वस्तु अन्यथा या विपरीत रूप में प्रकाशित होती है। आचार्य शङ्कर ने नैयायिकों के अनुसार भ्रम की व्याख्या करते हुये अध्यासभाष्य में कहा है- "यत्र यदध्यासस्तस्यैव विपरीतधर्मत्वकल्पनामाचक्षते"।[163] भामतीकार ने इसका अर्थ करते हुये कहा है "यत्र अर्थात् जहां पर शुक्ति आधार में, जिसका रजत का अध्यास होता है, उसी शुक्ति के विपरीत धर्मकल्पना करना ही अध्यास है।[164] न्याय के अनुसार शुक्ति में जो भ्रान्त व्यक्ति को रजतज्ञान होता है, वहाँ न केवलशुक्तिज्ञान नहीं, और न केवल रजतज्ञान ही। यहां पर इन दोनों से पृथक् एक तृतीय ज्ञान है। यह तृतीय ज्ञान एक विशिष्ट ज्ञान है। "इदं रजतम्" में इस ज्ञान का विशेष्य है "इदमंश", और विशेषण "रजतम्" है। इसी को न्यायमत में भ्रमज्ञान कहा जाता है। एवं प्रकारक भ्रमज्ञान में प्रथम चाक्चिक्ययुक्त वस्तु के साथ चक्षु का संयोग होता है। दोनों के रहने के कारण उक्त चाक्चिक्ययुक्त वस्तु के विशेष धर्म शुक्तित्व का ग्रहण नहीं

---

[162] न्यायभूषण, पृ. २५, उद्धृत - शंकरोत्तर अद्वैत वेदान्त में मिथ्यात्व निरूपण, ले०स्वामी अभेदानन्द, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, १९७३ पृ० ४९.

[163] वाचस्पति मिश्र के अनुसार भ्रम का यह लक्षण न्याय के अनुसार है। भाष्यरत्नप्रभाकार गोविन्दानन्द एवं न्यायनिर्णयकार आनन्द गिरि के अनुसार उक्त भ्रम का लक्षण शून्यवादी बौद्धों के अनुसार है। गोविन्दानन्द एवं आनन्द गिरि ने विपरीत शब्द का अर्थ सत्विपरीत किया है। वाचस्पति ने 'विपरीत शब्द का अर्थ अन्यवस्तु का धर्म किया है। भाष्यरत्न प्रभा-भामती-न्याय निर्णय पृ.२२,२३ । सभी मतों में कुछ अंशों में समानता ही उक्त मतभेद का कारण है। 'विपरीत' शब्द का अर्थ विरुद्ध करने पर रत्नप्रभाकार का मत समीचीन लगने लगता है, किन्तु विपरीत शब्द का प्रयोग अन्यथाख्याति के लिये प्रभाचन्द्र ने प्रमेयकमलमार्तण्ड में विपरीतख्याति का प्रयोग किया है।– पृ. ५२, अतः आचार्य के उक्त लक्षण की व्याख्या में हमने वाचस्पति का ही अनुसरण किया है।

[164] यत्रशुक्तिकादौ यस्य रजतादेरध्यासस्तस्यैव शुक्तिकादेर्विपरीतधर्मकल्पनां रजत्वधर्मकल्पनामितियोजना-भामती- ३० ।

हो पाता। इसके बाद रजत और पुरोवर्ती द्रव्य में सादृश्यज्ञान रजतस्मृति को उत्पन्न कर देता है। इसके पश्चात् स्मृति का विषय उस रजत के साथ पुरोवर्ती द्रव्य का एक "तादात्म्यसम्बन्ध दोष" के कारण गृहीत होता है। न्याय के अनुसार यही भ्रम है। भ्रम के कारण शुक्ति में तदभिन्नरूप से गृहीत रजत है। उसमें सत्य रजत के समान इष्टसाधनता ज्ञान होने लगता है अर्थात् 'इस रजत के पाने पर मुझे लाभ होगा', ऐसा ज्ञान होता है। इसके पश्चात् उसे प्राप्त करने की इच्छा होती है। इच्छा के बाद ग्रहण करने के लिये प्रवृत्ति होती है।[165] इस ज्ञान में पुरोवर्ती वस्तु एवं रजत दोनों ही सत्य वस्तुएं है। मात्र तादात्म्यसंसर्ग अर्थात् सम्बन्ध ही परस्पर में आरोपित है।[166]

"इदं रजतम्" में रजत का प्रत्यक्ष चक्षु से तो नहीं होता फिर किससे होता है? इस सन्दर्भ में नैयायिकों ने "ज्ञानलक्षणा" नामक अलौकिक सन्निकर्ष की बात कही है। भ्रमस्थल में प्रत्यक्ष उसी को होता है जिसने पहले उस पहले उस पदार्थ को देखा हो। देखी हुई वस्तु संस्कार के रूप में आत्मा में होती है । जब तत्सदृश कोई वस्तु दिखाई देती है तो उसका विशेष धर्म सहित उसका ज्ञान नहीं हो पाता किन्तु सामान्य ज्ञान हो पाता है उस समय में आत्मा में स्थित संस्कारों के उद्बुद्ध हो जाने पर पूर्वदृष्ट वस्तु की स्मृति हो जाती है।वह स्मृति ही ज्ञान है । पूर्वदृष्ट वस्तु (रजत) की स्मृति में पहले उस वस्तु के साथ मन का संयोग होता है तत्पश्चात इस सम्बद्धयुक्त मन के साथ चक्षु आदि इन्द्रियों के साथ संयोग होता है। इस प्रकार स्मर्यमाणवस्तु का इन्द्रिय से संयोग परम्परया होता है इसको न्याय के अनुसार "स्वसंयुक्त मनोजन्यस्मृतिविषयत्वरूप" सम्बन्ध कहा जाता है । इस प्रकार ज्ञान लक्षणा प्रत्यक्ष द्वारा पूर्वोक्त प्रकार से इदं रजतम् स्थल पर सुरभिचन्दनम् के ज्ञान के समान

---

[165] न्यायमकरन्द- पृ. ८१, ८२ ।

[166] न्यायमतानुसार किसी भी सविकल्पकज्ञान में ये तीन भाग होते हैं विशेष्य, विशेषण(प्रकार), संसर्ग(सम्बन्ध) जैसे 'घटवत्भूतलम्' इसमें भूतलविशेष्य, घट विशेषण या प्रकार और दोनों में जो संयोग सम्बन्ध है, वह संसर्ग है।

स्मर्यमाण रजत संयुक्त मन और मन संयुक्त चक्षु इन्द्रिय से रजत का प्रत्यक्ष हो जाता है ।[167] नैयायिक भी यह बात स्वीकार करते हैं कि प्रत्यक्ष के लिये सन्निकर्ष आवश्यक है। विशिष्टज्ञान का विशेष्य 'इदम्' और विशेषण 'रजतम्' तथा दोनों के सम्बन्ध को वैशिष्ट्य एवं उक्त ज्ञान को विशिष्टज्ञान कहा जाता है, अर्थात् 'इदं रजतम्' में रजतप्रकारक इदं-विशेष्यक विशिष्ट ज्ञान है। यह विपर्यय इसलिये है क्योंकि इस ज्ञान में प्रमाज्ञान का लक्षण नहीं घटता। प्रमा यथार्थ ज्ञान को कहा गया है। यथार्थ ज्ञान का अर्थ है 'तद्वति तत्प्रकारक ज्ञान[168]', अर्थात् यथार्थ रजत में 'इदं रजतम्' का ज्ञान, क्योंकि इस में रजत विशेष्य में रजतत्ववाला रजत का ज्ञान होता है, किन्तु भ्रमस्थल में रजताभाववति शुक्ति में रजतत्ववाला ज्ञान होता है; इसलिये यह भ्रम है। 'तदभाववति तत्प्रकारक ज्ञान' को अयथार्थ या भ्रम ज्ञान कहा है।[169]

## २.४.५. विपरीतख्याति

यह आचार्य कुमारिल भट्ट का सिद्धान्त है जो न्याय के अन्यथा ख्याति वाद से साम्य रखता है। विपरीतख्याति के अनुसार 'इदं रजतम्' इस ज्ञान में इदं प्रत्यक्ष और रजत स्मृति ज्ञान हैं। स्मृतरजत को जो कि प्रत्यक्ष नहीं है 'इदं' में प्रत्यक्ष करने का भ्रम होता है। भ्रान्त व्यक्ति इस प्रकार स्मृति को प्रत्यक्ष के साथ अभिन्न मानकर इदं को रजत मान बैठता है, यही विपरीतज्ञान है, इसी को अन्यथाख्याति भी कहा है।[170] प्रभाकर के समान कुमारिल यह तो मानते है कि शुक्ति रजत के भ्रम शुक्ति के शुक्तित्वधर्मरहित इदमंशकी प्रत्यक्ष अनुभूति है और रजत के केवल गुणमात्र का स्मरण होता है किन्तु वे यह नहीं मानते कि भ्रम दृश्यमान तथा स्मर्यमाण वस्तु के भेद का अग्रहण मात्र है । कुमारिल के अनुसार ये दोनो आंशिक ज्ञान है

---

[167] तर्कसंग्रह,व्या०दयानन्द भार्गव, मोतीलाल बनारसी दास, नईदिल्ली, २००६,पृ १५-१६.

[168] तर्कसङ्ग्रह, व्या० दयानन्द भार्गव, मोतीलाल बनारसीदास, नई दिल्ली, पृ० १५६ .

[169] पूर्ववत् .

[170] विभ्रमविवेक , ४६ ,सम्पा० एस० कुप्पूस्वामी शास्त्री, मद्रास, १९३२ ।

और दोनो के विषय अलग अलग है । किन्तु भ्रम ये दोनो मिलकर एक हो जाते है न्यायभूषणकार ने कहा है – *यदि भिन्नयोः सतोरभेदेन ग्रहणं तदा विपरीतख्याति स्यात्*[171] । भ्रम एक विपरीत ज्ञान है जिसमें दृश्यमान वस्तु (शुक्ति) विपरीत (रजत) के रूप में प्रतीत होती है। अतः कुमारिल का मत विपरीत ख्याति कहलाता है[172] । न्याय तथा कुमारिल दोनो भ्रम को अन्यथाख्याति या विपरीत ख्याति मानते है दोनो में भ्रम की प्रक्रिया में भी साम्यता है परन्तु कुमारिल भ्रम में स्पष्ट रूप से पुरूषतन्त्रता को स्वीकार करते करते है यहाँ वे अपने वस्तुवाद को त्याग देते है परन्तु नैयायिक अपने वस्तुवाद की रक्षा के लिऍ भ्रम में रजत के वास्तविक प्रत्यक्ष ज्ञानलक्षणा नामक अलौकिक प्रत्यक्ष का आधार लेते है । यहाँ कुमारिल किसी प्रकार के अलौकिक प्रत्यक्ष की कल्पना न कर रजत का स्मरण मात्र मानते है । नैयायिक यथार्थता को ज्ञान का स्वरूप तथा प्रवृत्तिसाफल्य (परतः प्रमाण) को यथार्थता के परीक्षण का साधन मानते है । कुमारिल भी यथार्थता को ज्ञान का स्वरूप मानते है किन्तु ज्ञान को स्वतः प्रमाण मानकर कारणदोष रहित तथा बाधक ज्ञान रहित मानते है[173] ।

## २.४.६.सदसत्ख्याति

सांख्यदर्शनाभिमत भ्रम का सिद्धान्त सदसत्ख्याति कहलाता है । सांख्य सूत्र है – सदसत्ख्यातिर्बाधात् ५/५/६ इस पर अनिरूद्ध-वृत्तिभाष्य के वृत्तिसार के रचयिता वेदान्तमहादेव के अनुसार अर्थ है – इदं रजतं सदासदात्मकम्, नेदं रजतमिति हि रजतस्य बाधो, न पुरोवर्तिता इति ।[174] अर्थात् इदं रजतम् की प्रतीति सत् और असत् दोनो रूपों में होती है क्यों कि नेदं रजतम् से रजत का बाध होने से वह असत् है जबकि पुरोवर्तिता होने

---

[171] न्यायभूषण, पृ० २९.

[172] भारतीयदर्शनः एक आलोचन एवं अनुशीलन, ले०चन्द्रधर शर्मा, मोती लाल बनारसीदास,नई दिल्ली, २००४,पृ० २०४

[173] भारतीयदर्शनः एक आलोचन एवं अनुशीलन, ले०चन्द्रधर शर्मा, मोती लाल बनारसीदास,नई दिल्ली, २००४,पृ० २०५.

[174] सांख्यदर्शनम् सारद्वयोपेतम्, वाराणसी, १९७३, पृ० १५३ उद्धृत- शंकरोत्तर अद्वैत वेदान्त में मिथ्यात्व निरूपण, ले० स्वामी अभेदानन्द, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, १९७३

से या सामने उपस्थिति होने से सत् है अतः वह सदसत् दोनो हो गया। भामतीकार ने उक्त मत का उल्लेख करते हुए लिखा है कि वस्तुओं का तत्त्व दो प्रकार होता है १. सत्व ( स्वरूपतः) २.असत्व (पररूपतः)।[175] सांख्याचार्यो के अनुसार "इदं रजतम्"इस प्रकार के भ्रम स्थलों का विश्लेषण करने पर ज्ञात होता है कि चक्षुदोष से संयुक्त होने के कारण शुक्तित्वरूप जो विशेष धर्म की प्रतीति न हो पाने के कारण इदंरूप से शुक्ति का ज्ञान होता है अतः वह इदं में होने से सत् है और रजतम् में न होने से असत् है। इसी प्रकार रजत भी रजतम् में होने से सत् तथा इदं (शुक्ति) में न होने से असत् है। यदि कहा जाए कि कि सत्-असत् दोनो एकाधिकरण में कैसे रह सकते है तो इसके उत्तर में विज्ञानभिक्षु का कहना है जैसे स्फटिक लौहित्य में बिम्बात्मना सत् होता है और स्फटिक गत प्रतिबिम्बत्मना असत् होता है उसी प्रकार रजत् दुकान में स्थित सत् परन्तु शुक्त्यध्यस्तरूप से असत् है। उसी प्रकार सम्पूर्ण प्रपञ्च भी स्वरूपतः सत् और चैतन्याध्यस्तरूप से असत्[176]।

## २.४.७.सत्ख्याति

आचार्य रामानुज का भ्रम सम्बन्धी सिद्धान्त सत्ख्यातिवाद कहलाता है। मीमांसकों के समान ही समस्तज्ञान को यथार्थ मानते है। रामानुज श्रीभाष्य में कहते है *यथार्थ सर्वविज्ञानमिति वेदविदां मतम्*[177]। "इदं रजतम्" इत्यादि भ्रम स्थलों सत्ख्याति के समर्थन में रामानुज का कहना है कि पंचीकरण के सिद्धान्तानुसार यह सिद्ध है कि सभी वस्तुएँ मिश्रित है जिसे हम पृथ्वी कहते है उसमें जल, वायु, अग्नि तथा आकाश के अंश भी विद्यमान है[178]। पृथ्वी अंश के

---

[175] द्विविधं च वस्तुनां तत्त्वं सत्वमसत्वंच, तत्र पूर्वं स्वतः परं तु परतः । यथाहुः –

स्वरूपपररूपाभ्यां नित्यं सदसदात्मके ,वस्तुनि ज्ञायते किञ्चिद् रूपं कैश्चित्कदाचन्,॥ भामती, पृ० २३.

[176] सदसत्ख्यातिर्बाधात् ५/५/५/, सांख्यप्रवचनभाष्य, सम्पा० जीवानन्द, भारतीयजीवनकाशी, १९४६ पृ० ५६.

[177] श्रीभाष्य (अविद्या भंग प्रकरण), गव० आफ इण्डिया, नईदिल्ली, १९६७, पृ० २९.

[178] पूर्ववत्.

आधिक्य के कारण वह पृथ्वी कहलाती है अतः पृथ्वी में अन्य भूतों का अभाव नहीं है। इसी प्रकार शुक्ति- रजत भ्रम में शुक्ति में भी रजत का अंश विद्यमान है तभी तो वह रजत्वेन भासित होती है अन्तर यह है कि शुक्ति में रजत के अवयवों की अपेक्षा शुक्ति के अवयव अधिक है अतः वह शुक्ति कही जाती है। शुक्ति में रजत सादृश्यता का कारण है उस में रजत के अंश का होना है। सादृश्य द्रव्य के अंश को ही कहते है – *तदेव सदृशं तस्य यत् तद्द्रव्यैकदेशभाक्* [179]। चक्षुदोषादिवश शुक्ति के अवयवों के आधिक्य होने पर भी उसकी प्रतीति न होकर रजत की ही प्रतीति होने लगती है और रजतार्थी रजत को पाने के लिये प्रवृत्त होने लगता है[180]। नेदं रजतम् इस प्रकार के बाध से केवल प्रवृत्ति का बाध होता है – *ज्ञानफलभूतप्रवृतेर्बाध्यत्वम्*[181] / रामानुज के अनुसार ज्ञान सत्य ही होता है (सत्ख्याति) और ज्ञान का विषय भी सत्य ही होता है परन्तु वह ज्ञान मित्था या भ्रम होता है जिसमें व्यव्हारानुपुण्य ना हो अर्थात् जो व्यव्हार में उपयोगी ना हो जैसे उक्त शुक्ति रजत स्थल पर भासमान रजत लाभ ना प्रदान करने के कारण तथा मृगमरीचिका से प्यास ना बुझ पाने के कारण दोनो ज्ञान भ्रम या मिथ्या है। अतः रामानुज के मत में यथार्थ ज्ञान सत्य तथा व्याव्हारिक है और भ्रम ज्ञान भी सत्य किन्तु अव्यावहारिक है। यथार्थ और भ्रम ज्ञान में केवल प्रवृत्तिसाफल्य या व्यव्हारोपयोगिता का ही अन्तर है।

## २.४.८. अनिर्वचनीयख्याति

अद्वैत वेदान्त में अध्यास का विनियोग अनिर्वचनीय ख्याति में ही है। आचार्य शंकर का भ्रम विषयक सिद्धान्त "अनिर्वचनीयख्याति" कहलाता है।अद्वैतवाद के अनुसार प्रमाज्ञानस्थलमें

---

179 श्रीभाष्य (अविद्या भंग प्रकरण),पृ० ३१.

180 कदाचित् चक्षुरादेस्तु दोषाच्छुक्त्यंशवर्जितः

रजतांशो गृहीतोऽतो रजतार्थी प्रवर्तते ॥ पूर्ववत्.

181 श्रीभाष्य (अविद्या भंग प्रकरण), श्रुतप्रकाशिका, सुदर्शन सूरि, नई दिल्ली, १९६७,पृ० ३२.

अन्तःकरणवृत्ति नेत्रादि द्वारा बहिर्गत होकर विषय में जाकर विषयाकार में परिणत हो जाती है। वेदान्त परिभाषाकार ने कहा है कि अन्तःकरण वृत्ति कुल्यात्मा बहिर्देश को जाकर अन्तःकरण और विषय दोनों को सम्बन्धित करती है।[182] उक्त प्रकार से वृत्ति के बहिर्गमन एवं विषय आकार परिणति से ही विषय का अज्ञानावरण भङ्ग होता है। तभी विषय ज्ञान होता है यही प्रमा या यथार्थज्ञान है। किन्तु जब रज्जू -सर्प भ्रमस्थल में अन्तःकरण की वृत्ति नेत्र द्वारा बहिर्गमन करके रज्जू देश में पहुँचकर तिमिरादि दोष के कारण रज्जुगत अज्ञानावरण भङ्ग करने में समर्थ नहीं हो पाती, तब उक्त वृत्ति रज्जु आकार में परिणत नहीं हो पाती [183]। जब अन्तःकरणवृत्ति रज्जु में आवरण भंग नही कर पाती तब रज्ज्वच्छिन्न चेतनागत ज्ञान में क्षोभ उत्पन्न होता है और अज्ञान सर्पाकार से परिणत हो जाता है । रज्जुसर्प भ्रम में जिस प्रकार सर्प अविद्या का परिणाम है उसी प्रकार उस रज्जुसर्पविषयकज्ञान अर्थात् वृत्तिज्ञान भी अविद्या का परिणाम है । रज्जुज्ञान से सर्प और सर्पज्ञान दोनो का बाध हो जाता है । रज्जु उपहित चैतनस्थ तमोगुणप्रधान अविद्या का परिणाम है तथा सर्प और साक्षी चेतनस्थ अविद्या के सत्वगुण का परिणाम वृत्ति ज्ञान है । रज्जुचेतनस्थ अविद्या का परिणाम जब सर्पाकार होता है तभी साक्षी आश्रित अविद्या का ज्ञानाकार परिणाम होता है। इस प्रकार भ्रमस्थल में सर्पादि विषय और ज्ञान एक साथ उत्पन्न होते है और रज्जु आदि अधिष्ठान से एक साथ एक ही समय में लीन भी हो जाते है इस प्रकार रज्जुसर्पभ्रम में बाह्य अविद्यांश सर्पादि का और साक्षिचेतनाश्रित अविद्यांश आन्तर वृत्ति का उपादान कारण है [184]। स्वप्न में साक्षि आश्रित अविद्या के तमोगुणांश का विषयरूप परिणाम होता है और उक्त अविद्या के सत्व गुण ज्ञानरूप परिणाम होता है अतः स्वप्न में अन्तःस्थ अविद्या ही विषय और ज्ञान दोनो का उपादान कारण होती है। इसी कारण बाह्य रज्जुसर्पादि पदार्थ और आन्तर स्वप्नादि

---

[182] वेदान्तपरिभाषा, व्या० गजाननशास्त्री मुँसलगावकर, चौखम्बा विद्याभवन,वाराणसी, २००६, पृ. २३ .

[183] सिद्धान्तलेशसंग्रहः, सम्पा० वझेभाउ शास्त्री,चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, १९८९, पृ. २१५ ।

[184] सिद्धान्तलेशसंग्रह पृ०४१७

पदार्थ साक्षी भास्य कहलाते है। अविद्या वृत्ति द्वार साक्षी जिसका भासक है उसे "साक्षी भास्य" कहते है । चित्सुखाचार्य ने कहा कि सत्य असत्व रूप से जिसका विचार सम्भव नहीं वह अनिर्वाच्य है।[185] सभी प्रकार के भ्रम ऐसे ही होते हैं [186] । संक्षिप्त रूप में यह देखा कि अनिर्वाच्य क्या है। इसके ज्ञान लेने पर यह प्रश्न उठता है कि अनिर्वचनीय ख्याति क्या है? ख्याति का अर्थ ज्ञान है। अनिर्वचनीय ख्याति का अर्थ दो प्रकार से है। प्रथम अनिर्वचनीय की ख्याति अर्थात् अनिर्वचनीय वस्तु का ज्ञान। अद्वैत मतानुसार ब्रह्मातिरिक्त सम्पूर्ण वस्तुएं अनिर्वचनीय हैं ऐसी अनिर्वचनीय वस्तुओं का ज्ञान भी अनिर्वचनीय है। दूसरा अर्थ हुआ वह ज्ञान जो अनिर्वचनीय हो । जगत् की अनिर्वचनीयता व्याख्या के लिये भ्रमस्थलीय रजत की अनिर्वचनीयता की सिद्धि करनी है क्योंकि दृष्टान्त रूप में प्रतिभासिक वस्तु को ही लिया जा सकता है। प्रातिभासिक वस्तु की अनिर्वचनीयता की सिद्धिपूर्वक व्याव्हारिक वस्तु की अनिर्वचनीयता की सिद्धि हो सकती है क्योंकि जिसका बाध होता है वह मिथ्या है, जो मिथ्या है वह अनिर्वचनीय है । प्रातिभासिक वस्तु की सत्ता का बाध वास्तविक सत्ता से तथा वास्तविक सत्ता का बाध पारमार्थिक सत्ता से हो जाता है । अतः इस प्रसंग में प्रातिभासिक तथा वास्तविक सत्ताऐं अनिर्वचनीय (मिथ्या) है । इस मत के अनुसार भ्रमस्थलीय शुक्ति रजत असत् नहीं क्योंकि उसकी प्रतीति "इदं रजतम्" इस प्रकार होती है ।असत् का अद्वैत वेदान्त अनुसार अर्थ अलीक है जैसे आकाश-कुसुम, शशश्रृंग आदि है। जो कि आकाश-कुसुमादि की प्रतीति "इदं" रूप से कदापि नहीं हो सकती। "वन्ध्या सुतोऽस्ति" वन्ध्या का पुत्र है, के व्याकरण दृष्टि से शुद्ध होने पर भी तथ्यात्मक होने चाहिये तभी तात्विक होंगे। रजत सत् भी नहीं है क्यों कि शुक्ति रूप अधिष्ठान के ज्ञान से उसका बाध हो जाता है अतः

---

[185] प्रत्येकसदसत्वाभ्यां विचारपदवीं न यत् ।

गाहते तदनिर्वाच्यमाहुर्वेदान्तवेदिनः ॥- तत्त्वप्रदीपिका, १९ ।

[186] सत्त्वे वासत्वेन च विचारसहत्वेसति।

सदसत्वे च यद् विचारं सहते तदनिर्वाच्यम्॥ - तत्त्वप्रदीपिका ।

यह सदसत् से विलक्षण मिथ्या या अनिर्वचनीय है । इस प्रकार अनिर्वाच्यत्व क्या है जान लेने पर, अब अनिर्वचनीयख्याति क्या है, विचार करना आवश्यक है। ख्याति का अर्थ ज्ञान है। अनिर्वचनीयख्याति का अर्थ दो प्रकार का है। प्रथम अनिर्वचनीय की ख्याति अर्थात् अनिर्वचनीय वस्तु का ज्ञान। अद्वैत मतानुसार ब्रह्मातिरिक्ति सम्पूर्ण वस्तुएं अनिर्वचनीय हैं, ऐसी अनिर्वचनीय वस्तुओं का ज्ञान भी अनिर्वचनीय है, अतः दूसरा अर्थ हुआ जो ज्ञान अनिर्वचनीय हो वही अनिर्वचनीयख्याति है, अर्थात् अनिर्वचनीय वस्तुविषयक ज्ञान भी अनिर्वचनीय है।जगत् की अनिर्वचनीय की व्याख्या के लिये भ्रमस्थलीय रजत की अनिर्वचनीयता की सिद्धि करनी है, क्योंकि दृष्टान्त रूप से प्रातिभासिक वस्तु को ही लिया जा सकता है। प्रातिभासिक वस्तु की अनिर्वचनीयता की सिद्धिपूर्वक व्यावहारिक वस्तु की भी अनिर्वचनीयता की सिद्धि हो सकती है। इस आशय से अद्वैतवेदान्तियों ने भ्रमस्थलीय प्रातिभासिक वस्तु की व्याख्या के लिये अनिर्वचनीयख्याति स्वीकार की है।

अद्वैतवेदान्त के इस अनिर्वचनीयख्यातिवाद को मण्डनमिश्र के अतिरिक्त सभी अद्वैताचार्यों ने स्वीकार किया है। मण्डनमिश्र नि भ्रम की व्याख्या में कुमारिलभट्ट स्वीकृत विपरीतख्याति को ग्रहण कियाहै । ऐसा उनके द्वारा लिखित ग्रन्थ विभ्रम विवेक एवं ब्रह्मसिद्धि से पता चलता है।[187]

विपरीतख्याति के अनुसार 'इदं रजतं' इस ज्ञान में इदं प्रत्यक्ष और रजत स्मृति ज्ञान हैं। स्मृतरजत को जो कि प्रत्यक्ष नहीं है 'इदं' में प्रत्यक्ष करने का भ्रम होता है। भ्रान्त व्यक्ति

---

[187] तस्मादवश्यं प्रतिषेध्यप्राप्तये विपरीतख्यातिरुपासनीया। ब्रह्मसिद्धि- सम्पा० कुप्पुस्वामी शास्त्री, गवर्नमेन्ट प्रेस, मद्रास,१९३७ पृ. १४३,.

वेदान्तप्रक्रियाप्रत्यभिज्ञा (मण्डन प्रस्थान परीक्षा) पृ. १९१, सच्चिदानन्द-सम्पादक, नरसीपुरम् १९६४ ।

विभ्रमविवेकभूमिका पृ. २ भी।

विभ्रमविवेकभूमिका पृ. ५७, ६२ उद्धृत - शंकरोत्तर अद्वैत वेदान्त में मिथ्यात्व निरूपण, ले० स्वामी अभेदानन्द, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, १९७३ पृ० .

इस प्रकार स्मृति को प्रत्यक्ष के साथ अभिन्न मानकर इदं को रजत मान बैठता है, यही विपरीतज्ञान है, इसी को अन्यथाख्याति भी कहा है।[188] मण्डनमिश्र के ग्रन्थ भ्रमसिद्धि के ऊपर वाचस्पति मिश्र ने टीका लिखी है। उसमें वाचस्पति मिश्र भी विपरीतख्यातिवादी से लगने लगते हैं, परन्तु भामती के टीकाकार अमलानन्द स्वामी ने तत्कृत टीका कल्पतरु में वाचस्पति के अन्यथाख्यातिवादी होने का खण्डन किया है।[189] भामती टीकाकार के रूप में वाचस्पति के ऊपर अन्यथाख्यातिवादी होने का आरोप निराधार है, क्योंकि भामती में अनेक युक्ति और तर्कों से उन्होंने अनिर्वचनीयख्याति का ही समर्थन और संवर्द्धन किया है। मण्डनमिश्र के विपरीत ख्यातिवादी होने के दो कारण हो सकते हैं, एक कारण यह हो सकता है कि वे कुमारिल के अनुयायी मीमांसक थे। दूसरा कारण यह है कि आचार्य शङ्कर ने भाष्य में कहा है –'सर्वथाऽपि त्वन्यस्यान्यधर्मावभासतां न व्यभिचरति'। अर्थात् अन्य का अन्य में अवभास होना यह बात सभी ख्यातिवादों में है। इस आचार्य वाक्य का अर्थ मण्डन के अनुसार विपरीतख्याति के साथ भी किया जा सकता है, जिसमें जो धर्म नहीं, उसमें उस धर्म का आरोप विपरीत ही हुआ। इसी में संगति करते हुये मण्डन ने विपरीतख्याति स्वीकार की है।[190] जो भी हो अन्य सभी अद्वैतवेदान्ती "अतस्मिन् तद्बुद्धि" को अध्यास कहते हैं एवं अध्यस्त ज्ञान और वस्तु की व्याख्या में अनिर्वचनीयख्याति स्वीकार करते हैं। अनिर्वचनीयख्याति के अतिरिक्त अन्य ख्यातियों द्वारा भ्रम ज्ञान की पूर्ण व्याख्या नहीं की जा सकती।

---

[188] विभ्रमविवेक , पृ० ४६.

[189] स्वरूपेण मरीच्यम्भो मृषा वाचस्पतेर्मतम् ।

अन्यथाख्यातिरिष्टास्येत्यन्यथा जगृहुर्जनाः ॥ वेदान्तकल्पतरु ,पृ. २४ उद्धृत – पूर्ववत् .

[190] वेदान्तप्रक्रियाप्रत्यभिज्ञा (मण्डन प्रस्थान परीक्षा) पृ. १९१ उद्धृत – पूर्ववत् .

## (चित्र सं० २.१) भारतीय दर्शन में ख्यातिवाद (भ्रम की व्याख्या के सिद्धान्त)

( स्रोत – भारतीय दर्शन आलोचन एवं अनुशीलन, चन्द्रधर शर्मा, मोतीलाल बनारसीदास नई दिल्ली, २००५, पृ० ७८.)

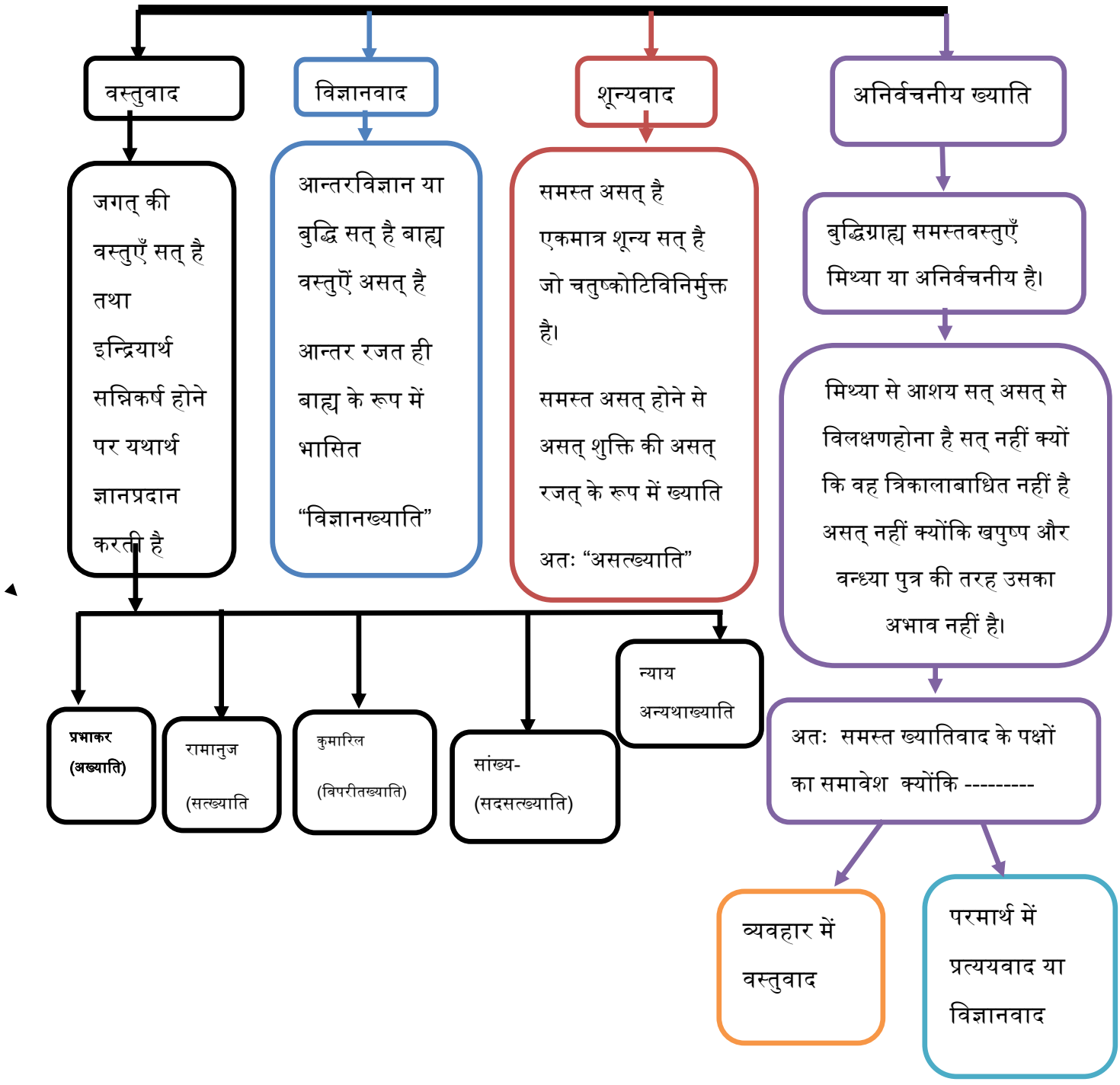

# अध्याय-३
# अनिर्वचनीयख्याति की स्थापना

# अध्याय३. अनिर्वचनीयख्याति की स्थापना

## ३.१ आत्मख्याति का खण्डन

बौद्धविज्ञानवाद के आत्मख्यातिवाद को वस्तुवादी दार्शनिकों ने तो अस्वीकार किया ही प्रत्ययवादी दार्शनिक अद्वैतवादियों ने भी इसका प्रत्याख्यान किया है। अद्वैत-वेदान्ती प्रत्ययवादी होते हुये भी विश्व-प्रपञ्च को अलीक नहीं मानते, इसी कारण आत्मख्याति के खण्डन में उन्होंने न्याय-वैशेषिक जैसे यथार्थवादी दार्शनिकों का साथ दिया। भामतीकार ने बौद्धविज्ञानवाद के खण्डन में मीमांसकों के मत को सामने प्रस्तुत किया और उन्हीं की युक्तियों से आत्मख्याति का खण्डन किया है।[191]

### ३.१.१.भामतीकारकृत खण्डन

भामतीकार ने मीमांसकों की ओर से बौद्धविज्ञानवादी से प्रश्न किया है कि 'इदं रजतम्' इस भ्रमस्थल में रजत को विज्ञान का ही आकार निश्चित रूप से कहा गया है? इसमें प्रश्न यह उठता है कि किस प्रमाण से विज्ञानवादी रजत को ज्ञान का धर्म सिद्ध करते हैं? प्रत्यक्ष से नहीं कहा जा सकता, क्योंकि प्रत्यक्ष द्वारा 'इदं रजतम्' इस ज्ञान में सामने स्थित वस्तु का प्रत्यक्ष हो रहा है, न कि आन्तर विज्ञान का।[192] प्रत्यक्ष द्वारा यदि 'रजत' को ज्ञान का आकार जाना जाता तब तो यह रजत अनुभव न होकर 'मैं रजत' ऐसा अनुभव होता, क्योंकि विज्ञानवाद के अनुसार 'मैं' भी विज्ञानातिरिक्त कुछ नहीं है,[193] इसलिये रजत जब ज्ञान में भासता है तब इदन्ता करके बाह्यता का प्रतिभास  नहीं हो सकता। बाह्यता असत्य है,

---

[191] भामती, व्या० स्वामी योगीन्द्रानन्द , चौखम्भा प्रकाशन, वाराणसी, २००५, पृ. २६- २७ .

[192] सहीदंकारास्पदं रजतमावदयति, नत्वान्तरम्। पूर्ववत् .

[193] अहमिति हि तदास्यात् प्रतिपत्तुः प्रत्ययादव्यतिरेकात। पूर्ववत् .

इसलिये आनन्दबोध का पूर्वपक्ष की ओर से कहना है कि 'असत्य बाह्यता का प्रतिभास अयुक्त है'।[194]विज्ञानवादी जो बाधक प्रत्यय द्वारा यह सिद्ध करना चाहते हैं कि जो इदं(शुक्ति) नहीं वह अनिदं अर्थात् ज्ञानरूप है, गलत है। मीमांसकों ने ऐसे तर्क इसलिये प्रस्तुत किये हैं कि उनके मत में भी रजत इदं तो नहीं है, किन्तु वह ज्ञान रूप भी नहीं है, वह तो ज्ञान का विषय रूप है। शुक्तिज्ञान के पश्चात् 'मिथ्या रजत का ज्ञान हुआ था' , ऐसा अनुभव होता है जबकि विज्ञानवाद के अनुसार –'मिथ्या बाह्यता की प्रतीति हुई थी' ऐसा होना चाहिये। रजत के बाध के साथ इदन्ता का भी बाध होने से दो बाध रूप गौरवदोष है, अतः इदन्तामात्र का ही बाध होना उचित है- यह विज्ञानवादी का कहना भी अनुचित है, क्योंकि यह अनुभव विरोधी बात है।

## ३.१.२.चित्सुखाचार्यकृत खण्डन

चित्सुखाचार्य का कहना है कि 'इदं रजतम्' ऐसा ज्ञान होने के पश्चात् 'नेदं रजतम्' ऐसा विशिष्ट का बाध देखा जाता है, अतः अनुभव विरोध होने से कल्पनालाघवन्याय का अवतरण नहीं हो सकता।[195] विज्ञानवादी भ्रमस्थल के रजत और सत्यरजत दोनों को ही विज्ञानाकार अर्थात् बुद्धिरूप मानते हैं। चित्सुखाचार्य ने आपत्ति उठायी है कि यदि समस्त वस्तुएं बुद्धिरूप हैं और उन्हीं बुद्धिरूप पदार्थों से ही व्यवहार भी चलते हैं तब तो गुञ्जाफल-गुच्छा में अग्निबुद्धि होने पर उससे भी ताप मिल जाना चाहिये, क्योंकि वहां पर भी बाहर अग्नि तो है नहीं?[196]

---

[194] असत्याया एव बाह्यतायाः प्रतिभासस्यायुक्तम्। न्यायमकरन्द, सम्पा० एन० एस० एन० स्वामी, चौखम्भा संस्कृत बुक डिपो, वाराणसी, पृ. १००।

[195] नेदं रजतमितिबाधस्य चानुभवसिद्धतया कल्पनालाघवन्यायानवतारात्। चित्सुखी (तत्त्वप्रदीपिका), सम्पा० स्वामी योगीन्द्रानन्द,षड्दर्शन प्रकाशन प्रतिष्ठान, वाराणसी , पृ. ७४ .

[196] किमारोपितं बुद्धौ चेत् गुंजापुंजादौ दहनसमारोपे देहदाहप्रसङ्गः। पूर्ववत्.

## ३.१.३.आचार्य विमुक्तात्मयतिकृत खण्डन

इष्टसिद्धिकार ने आत्मख्याति की आलोचना करते हुये इसे भी एक प्रकार की सत्ख्याति ही कहा है। उनके अनुसार जिसकी कहीं न कहीं प्रतीति होती है, वह वहां पर सत् है, अतः सत् की ही ख्याति होगी। विज्ञानवादी विज्ञानरूप में रूप्य को सत् मानते हैं, अतः विमुक्तात्मा उन्हें सत्ख्यातिवादी कहते हैं।[197] अन्तर्ज्ञेयरूपरजत ही बाहर सा लगता है, अर्थात् बाहर रजत नहीं है अपितु अन्तःस्थित है। आन्तर पदार्थ ही आन्तर के रूप में न प्रतीत होकर विपरीत बाह्यरूप में प्रतीत होता है, इस कारण जयन्तभट्ट ने इसे भी विपरीतख्याति कहा है।[198] बाह्यता को पूर्णरूप से अस्वीकार करने के कारण यह असत्ख्याति भी है।[199] वस्तुतः विज्ञानवाद के अनुसार शुक्तिरजत और व्यावहारिकरजत दोनों ही बाह्यता शून्य हैं। उनमें बाह्यतांश भ्रम है, यह बात तो समझ में आती है , किन्तु विज्ञानवादी के अनुसार उक्त दोनों रजतों में अन्तर करने की कसौटी क्या है? यदि दोनों ही एक प्रकार से विज्ञानरूप हुये अर्थात् भ्रमस्थल की वस्तु और व्यावहारिक वस्तु दोनों ही यदि विज्ञानाकार ही हुई, तब भ्रम और प्रमा में अन्तर ही नहीं हो सकेगा।[200] इस प्रकार भ्रम की व्याख्या आत्मख्यातिवाद के अनुसार भी अपूर्ण है।

---

[197] विमुक्तात्मा के अनुसार **आत्मख्याति, अख्याति और अन्यथाख्याति** भी सत्ख्याति हैं क्योंकि इनमें किसी ने विज्ञान के रूप में, किसी ने स्मृति के विषय के रूप में, किसी ने रजत के रूप में रजत को सत् माना है। इष्टसिद्धि, सम्पा० एम० हिरियन्ना, गायकवाड ओरियन्टल इंस्टीट्यूट, बडौदा, १९३३, पृ. ३९,४०.

[198] अन्तर्ज्ञेयरूपं हि बर्हिवदवभासते इत्यभ्युपगमादियमपि विपरीतख्यातिरेव स्यात्। न्यायमंजरी, सम्पा० सूर्यनाराण शुक्ल,तथा जयकृष्णदास हरिदास गुप्त, चौखम्भा सीरीज आफिस, वाराणसी, १९३६, पृ. १६९.

[199] पूर्ववत् .

[200] इष्टसिद्धिभूमिका- पृ. २२ .

## ३ .२. असत्ख्याति का खण्डन

इसका खण्डन भी न्याय, वैशेषिक और अद्वैतवेदान्तियों ने स्पष्ट रूप से किया है। जयन्तभट्ट ने असत्ख्याति के लिये दो विकल्प करके प्रश्न किया है कि एकान्त असत् की ख्याति या असत् की देशान्तर में स्थित भ्रमस्थल में ख्याति । एकान्त असत् की ख्याति मानने पर ख्याति असम्भव है क्योंकि आकाश में कुसुम की ख्याति नहीं देखी गई। असत् की देशान्तर में स्थित रजत को ख्याति मानने पर विपरीत ख्याति ही होगी न कि असत् ख्याति।[201] अद्वैतवेदान्ती भी इसका प्रत्याख्यान करते हैं कि असत् का अर्थ सत्ता शून्य है। इसकी प्रतीति नहीं हो सकती यदि असत् की प्रतीति(ख्याति) होती है तो वह सदात्मना माना जाता है या असदात्मना असत् का ज्ञान नहीं हो सकता क्योंकि नितान्त अभाव वाला असत् ज्ञान सम्भव नहीं हो सकता और सदात्मना ज्ञान होने पर सत्ख्याति होगी असत् नहीं यह केवल बौद्धों का मनोरथमात्र है अतः असत् नाम की कोई वस्तु नहीं है अतः उसकी ख्याति तो दूर की बात है – *"असतोऽसिद्धत्वादेव तस्य ख्यातिर्दूरोत्सारिता तस्याविषयाभावात् । अतोऽसतोऽप्रसिद्धत्वात् असतस्सदरूपेण ख्यातिभ्रमर्तस्य चासत्त्वबोधनं बाधः .....इत्यादि मनोरथमात्रम् "* ।[202] यदि यह कहा जाए कि वेदान्त में भी तो आकाशकुसुम और नरश्रृंग आदि वाक्य सुनकर कुछ प्रतीति होती है वैसे ही असत् रजत की प्रतीति भी मान लेनी चाहिए परन्तु इसका प्रत्युत्तर न्यायमकरन्दकार देते हुए कहते हैं कि नरश्रृंग की प्रतीति नहीं होती अपितु वह विकल्प मात्र है उसे वस्तु की अपेक्षा नहीं है और भ्रम में जैसे शुक्ति में रजत दिखता है वैसे वहाँ मनुष्य में सींग दिखता हो ऐसा नहीं है [203]।

---

[201] न्यायमञ्जरी (प्रमाण प्रकरण) , पृ०१६४.

[202] इष्टसिध्दि १/६२, पृ०१६९.

[203] न यत्पुनर्नरविषाण दृष्टान्तो साध्यसम एव तस्यापि तदभिधानादवभासमान्त्वादिति तदप्यप्रेक्षकाभिधानम्.....न हरिश्रृंग भाति गवीव ? न्यायमकरन्द- पृ. १०८ ।

**निष्कर्ष –** यह सिद्धान्त भी भ्रम की पूर्ण व्याख्या नहीं कर पाता । इस सिद्धान्त में भी वही विप्रतिपत्ति है जो विज्ञानवाद में है कि जब सब कुछ असत् है तो भ्रम और व्यवहार में क्या अन्तर है । घटज्ञान और शुक्तिरजतज्ञान में एक को भ्रम और दूसरे को प्रमा कहने की कसौटी ही नहीं रहेगी अतः भ्रम की व्याख्या असत्ख्याति को मानकर नहीं दी जा सकती [204]।

## ३.३. अख्याति का खण्डन

प्रभाकर मीमांसको के अख्यातिवाद का खण्डन न्यायवैशेषिक तथा अद्वैत वेदान्त के आचार्यों ने की है । इस सिद्धान्त का खण्डन अत्यन्त रूचिपूर्ण तथा तार्किक विधि से अद्वैत वेदान्त के आचार्यों ने भिन्न-भिन्न पक्षों को लेकर किया है। यहाँ वाचस्पति मिश्र, प्रकाशात्मयति तथा आनन्दबोध आदि आचार्यों के मत का उल्लेख किया जा रहा है।

### ३.३.१.भामतीकारकृत खण्डन

नैयायिकों की ओर से अख्यातिवाद पर आक्षेप करते हुए वाचस्पति मिश्र कहते हैं कि "इदं रजतम्" इन दो ज्ञानों का और इन दो ज्ञानों के विषय इदं वस्तु और रजत इनके परस्पर भेदाग्रह ही भ्रान्त व्यक्ति को रजत प्राप्ति के लिए प्रवृत्त कराते हैं यह युक्तिपूर्ण नहीं है क्योंकि बुद्धिमान् व्यक्ति ज्ञानपूर्वक ही कर्म में प्रवृत्त होते हैं । अज्ञान पूर्वक नहीं – "*अस्ति तावद्रजतार्थिनो रजतमिदमिति प्रत्ययात् पुरोवर्तिनि द्रव्ये प्रवृत्तिः----- तदेतन्न तावद ग्रहणस्मरणयोस्तदगोचरयोश्च मिथो भेदाग्रहमात्राद्धवितुमर्हति*[205]"।

---

[204] इष्टसिद्धि भूमिका – पृ० २६

[205] भामती पृ० २७, २८

## ३.३.२.विवरणकारकृत खण्डन

पंचपादिकाविवरणकार प्रकाशात्मयति अख्याति का खण्डन करते हुए प्रश्न करते हैं कि अख्याति क्या है ? क्या ख्याति या ज्ञान का न होना ही अख्याति है ? ज्ञान न होने को अख्याति नहीं कह सकते क्योंकि ऐसा मानने पर तो अतिप्रसंग होगा अर्थात् उक्त कथन के अनुसार एकमात्र सुषुप्ति को ही भ्रम मानना पडेगा । सुषुप्ति में किसी प्रकार की ख्याति नहीं होती । जाग्रत और स्वप्न में किसी प्रकार का भ्रम हो नही पाएगा । इस प्रकार अख्यातिलक्षण की अतिव्याप्ति सुषुप्ति में और अव्याप्ति जाग्रत-स्वप्न में होगी - *"केयमख्याति इति न तावत्ख्यात्यभावमात्रम्, अनभ्युपगमादतिप्रंसंगाच्च । सुषुप्तेभ्रम प्रसंगात् जाग्रतश्च असंभवात् नायं पक्षः सम्भवति" ।* [206]

विवरणकार दूसरा विकल्प देते हैं कि क्या अख्याति का अर्थ अन्य वस्तु को चाहने वाले व्यक्ति की अन्य वस्तु में प्रवृत्ति कराने वाला ज्ञान है ? ऐसा मानने पर "इदं रजतम्" इस भ्रम के अव्यवहित उत्तर क्षण में 'नेदं रजतम्' ऐसा जिसका बाध हो जाता है उस भ्रमस्थल में भ्रम का लक्षण घटित नही हो पाएगा क्योंकि यहाँ पर प्रवृत्ति न होने कारण प्रवृत्तिकारणत्व सिद्ध नहीं होता अथवा जहाँ भ्रम होने पर भी आलस्य के कारण प्रवृत्ति नही हो पाती वहाँ भ्रम नहीं माना जा सकेगा – "*अन्यार्थिनोऽन्यत्र ज्ञानमिति चेत् यत्र तर्हि न प्रवृत्तिः झटिति बाधश्च तत्र कथं भ्रान्तिः" ।*[207]

यदि किन्ही दो ज्ञानों का असंसर्गग्रह (भेद का ज्ञान न होना) अविवेक है तब तो खण्डो गौः, शुक्लः पटः इन ज्ञानों में भी भ्रमत्व हो जाएगा, अतिव्याप्ति हो जाएगी, क्यों कि असंसर्ग की प्रतीति इन दोनों ज्ञानों में भी नहीं होती[208]। यदि ग्रहण (प्रत्यक्ष) और स्मरण के अविवेक

---

[206] पंचपादिकाविवरण, अनु० किशोरीलाल स्वामी, रामतीर्थ प्रकाशन, देहरादून ,२००३, पृ० ३८ .

[207] पूर्ववत् .

[208] किञ्च " खण्डोः गौः" इत्यादिप्रत्याश्च अविवित्तानेकपदार्थाविषया विभ्रमा प्रज्येरन् । पूर्ववत् .पृ० ३९ .

या भेदाग्रह को भ्रम कहा जाएगा तो "अहं मनुष्यः" को भी भ्रम मानना पडेगा क्योंकि यहाँ भी आत्मन् और मनुष्य के भेद का अग्रहण हो रहा है – *"न च ग्रहण स्मरणाविवेक एव भ्रमः "अहं मनुष्य" इति ग्रह्यमाणाविवेकस्य भ्रमत्वात्"।*[209]

## ३.३.३.माधवाचार्यकृत खण्डन

माधवाचार्य भी अख्यातिवाद के दो ज्ञान मानने खण्डन करते हैं। माधवाचार्य ने कहा है कि भ्रान्त व्यक्ति इदं के ज्ञान के बाद उसे रजत मानकर उठाने के लिए प्रवृत्त होता है यदि इदं के रूप में उसे रजत का ज्ञान न होकर केवल शुक्ति का ही ज्ञान होता तो वह कभी उसे उठाने के लिए प्रवृत्त नहीं होता क्योंकि रजत ही उसका अभीष्ठ है शुक्ति न साधन है न ही साध्य[210]। अतः यह सिद्ध हो जाने पर कि शुक्ति का ग्रहण भ्रान्त व्यक्ति को रजत के लिए प्रवृत्त नहीं करा सकता, उसी प्रकार रजत का स्मरण भी सामने स्थित वस्तु में प्रवृत्ति करा नहीं सकता क्यों कि स्मरण सदा अनुभवाधीन होता है। रजत का स्मरण केवल पूर्वानुभूत रजत ( जो कल दुकान में देखा गया था) में ही प्रवृत्ति करा सकता है – "*नाऽपि रजत स्मरणं पुरोवर्तिनि प्रवृत्तिकारणम्, तस्यानुभव पारतन्त्र्यतयानुभवदेश एव प्रवर्तकत्वात् "*[211] ।

## ३.३.४. ब्रह्मसिद्धिकारकृत खण्डन

मण्डनमिश्र का कहना है कि अख्यातिवादी ग्रहण और स्मरण में असंसर्ग के अग्रह को ही भ्रम कहते हैं यह समीचीन नहीं है, क्योंकि भ्रम स्थल में भ्रान्त व्यक्ति रजत को प्राप्त करने के लिए प्रवृत्त होता है और रजत के न मिलने पर "नेदं रजतम्" इस प्रकार का वह निषेध करता है। इस प्रकार की प्रवृत्ति और निषेध से सिद्ध होता है कि भ्रम स्थल में, भाव वस्तु ही प्रवर्तक

---

[209] पूर्ववत् .

[210] सर्वदर्शनसंग्रह, व्या० उमाशंकर शर्मा "ऋषि", चौखम्भा प्रकाशन, वाराणसी,२००५, पृ० ८२४.

[211] पूर्ववत्

नही हो सकता, क्योंकि अग्रहण का अर्थ अभाव है अभाव कभी प्रवर्तक नही हो सकता और प्रतिषेध भी प्राप्त का ही होता है – *"नेदं रजतम् इति प्रसक्तप्रतिषेधरूपा प्रतीतिः नाग्रहणेऽवकल्पतेप्रसंगाभावात् । न खल्वग्रहणं कस्यचित् प्रसंजकम् ,अभावो हि सः" ।* [212]

## ३.३.५.न्यायमकरन्दकारकृत खण्डन

प्राभाकर मत में समस्त ज्ञान यथार्थ ज्ञान होता है ज्ञान अयथार्थ होता ही नहीं । इस शुक्ति-रजत भ्रम स्थल पर शुक्ति ज्ञान और रजत ज्ञान दोनो यथार्थ हैं । अतः दोष भी कार्यजनन को मात्र बाधित कर सकता है, परन्तु नवीन ज्ञान को पैदा नहीं कर सकता । जैसे दोष से दूषित होने पर केवडे का बीज बट के अङ्कुर को उत्पन्न करने में समर्थ नहीं हो सकता। इसी कारण मानना पडेगा कि कारणगत दोष कारण में कार्य जनन शक्ति को बाधित करते हैं, कारण में नये कार्य को उत्पन्न करने की शक्ति उत्पन्न नहीं करते हैं।[213]

न्यायमकरन्दकार (आनन्दबोध भट्टारक) ने अख्यातिवादियों के इस तर्क का खण्डन किया है कि दोष नवीन ज्ञान की उत्पत्ति में असमर्थ है क्योंकि अद्वैत वेदान्त दोष से नवीन मिथ्याज्ञान की उत्पत्ति को मानता है । वे इस सन्दर्भ में दृष्टान्त देते हैं । दावाग्नि में जला हुआ (दूषित) वैत्र का बीज केले के वृक्ष को उत्पन्न करने की शक्ति रखता है – "*दावदहनदग्धवेत्रबीजादपि कदली काण्डोत्पत्तिदर्शनात् "।* [214]यदि यह कहा जाए जल जाने पर वह वेत्र बीज रहा ही नही वह अन्य हो गया है अतः वेत्र बीज से कदलीकाण्ड की उत्पत्ति में कारण नहीं सिद्ध नही हुआ? परन्तु ऐसा कहना उचित नहीं क्योंकि कच्चे घट को पकाने के बाद उसके रक्त हो जाने

---

212 ब्रह्मसिद्धि(मण्डनमिश्र), सम्पा० कुप्पुस्वामी शास्त्री, गवर्नमेण्ट प्रेस, मद्रास, १९३७ पृ० १४३.

213 भामती, पृ. २७, न्यायमकरन्द- पृ. ६० ।

214 न्यायमकरन्द, पृ ७५

पर भी उसे घट ही कहते हैं उसमें घटत्व तो विद्यमान रहता ही है अतः वेत्र बीज के पक जाने पर भी वह बीज है क्योंकि उसमें बीजत्व है । इसी प्रकार आनन्दबोध दूसरा उदाहरण देते हैं भस्मकदोष से दूषित जठराग्नि का दिया है उसमें बहुत अन्न पचाने का सामर्थ्य है । अतः इससे सिद्ध होता है अद्वैतवादी के अनुसार दोषों में नये कार्योत्पादन का सामर्थ्य होता है ।

**निष्कर्ष** - अतः अख्यातिवाद से भ्रम की व्याख्या नहीं हो सकती क्यों कि प्राभाकर मत में सभी ज्ञान यथार्थ होने पर भी ज्ञान दो प्रकार का होता है १.प्रामाणिक ज्ञान जिनमें प्रामाण्य स्वतः आता है २. अप्रामाणिक ज्ञान जिनमें प्रामाण्य परतः आता है। इसका आशय यह हुआ कि ज्ञान तो सभी यथार्थ होते हैं परन्तु कुछ ज्ञान यथार्थ होते हुऐ भी अप्रामाणिक होते हैं।जबकि न्याय-वैशेषिक और वेदान्तादि दर्शनों में अयथार्थानुभव अप्रमा या भ्रम कहा जाता है । यह बात तो पूर्णतः आत्मविरोधी है कि ज्ञान यथार्थ होते हुऐ भी अप्रामाणिक होते हैं अतः व्यावहारिक स्थल पर यह भ्रम की पूर्ण व्याख्या में अक्षम सिद्धान्त है ।

## ३.४. अन्यथाख्याति का खण्डन

अद्वैतवेदान्तियों ने न्याय के अन्यथाख्याति वाद को स्वीकार नहीं किया है । विशेषरूप से विवरणकार प्रकाशात्मयति, विमुक्तात्मयति और आनन्दबोध ने अन्यथाख्याति का प्रत्याख्यापन किया है ।

## ३.४.१.विवरणकारकृत खण्डन

विवरणकार ने अन्यथाख्याति पर अन्यथात्व क्या है ? पर प्रश्न उठाया है । उन्होने अन्यथा के सम्भावित तीन विकल्प दिये हैं - १. ज्ञान में अन्यथात्व २. ज्ञान की फलप्रकटता में अन्यथात्व ३. ज्ञानविषय का अन्यथात्व [215]

यदि ज्ञान में अन्यथात्व माने तो ज्ञान रजताकार ज्ञान है उसके अन्यथात्व का अर्थ है आलम्बन दूसरा हो । अतः रजतज्ञान का आलम्बन शुक्ति हो ऐसा सम्भव नहीं क्यों कि अन्य ज्ञान का आलम्बन अन्य नहीं हो सकता जिस प्रकार का ज्ञान होता है वही उसका आलम्बन हो सकता जैसे रजतज्ञान का रजत – *"सर्वत्र यदाकारं संवेदनं तदेवालम्बनं इति नियमे रजताकारसंवेदनविरुद्धं शुक्तिकालम्बनत्वमित्यर्थः"*। परन्तु यहाँ पुनः पूर्वपक्षी का आक्षेप है कि यह आवश्यक नहीं अपितु ज्ञान प्रयुक्त व्यवहार का विषय ही ज्ञान का आलम्बन होना चाहिऐ अतः रजतज्ञान का आलम्बन सीपी हो सकती है ?

इसका उत्तर देते हुए आचार्य प्रकाशात्मयति का कहना है कि यदि ज्ञान प्रयुक्त व्यवहार का विषय ज्ञान का आलम्बन होगा तब तो बाघ आदि को देखकर जो दण्ड ग्रहण किया गया है वह बाघ के ज्ञान का आलम्बन हो जाएगा अतः जैसा ज्ञान का आकार हो उसी अनुरूप ज्ञान का आलम्बन होना चाहिए – *"ननु न संविदाकारतया आलम्बनता सर्वत्र किन्तु संवित्प्रयुक्तव्यवहारविषयतेति चोदयति । इदं तावदयुक्तम्- न हि व्याघ्र सर्पादिज्ञानात् दण्डादिष्वादीयमानेषु व्याघ्रादिज्ञानस्य दण्डाद्यालम्बनम् । तस्माद तदाकार एवालम्बनमिति।*[216]

---

[215] केयमन्यथा ख्यातिः ? अन्याकारं ज्ञानावलम्बनं वा वस्तुनो वस्वान्तरात्मनावभासो वा, अन्यथा परिणते वस्तुनि ज्ञान वा ? पंचपादिकाविवरण पृ० ४४

[216] पूर्ववत् पृ० ४४-४५

यदि अन्तिम दोनों विकल्प ज्ञान के फल और विषय का अन्यथात्व माना जाए तो वहाँ अन्यथात्व बन नहीं सकता क्योंकि स्फुरण ही यहाँ फल है जो वस्तुनिष्ठ होता है, अतः रजतज्ञान के स्फुरण रूप फल में रजत को ही होना चाहिए । ज्ञान के विषय और वस्तु में अन्यथात्व मानने पर देशान्तरीय रजत जो कि शुक्ति में अन्यथा भाव को प्राप्त करता है उसमें क्या कारण है ? देशान्तरीय रजत और शुक्ति दोनों अत्यन्त भिन्न पदार्थ हैं फिर भी देशान्तरीय रजत शुक्ति में किस सम्बन्ध से भासता है ? इन समस्याओं का समाधान अन्यथाख्यातिवादी के पास नहीं है, अतः विवरणकार के अनुसार अनिर्वचनीय ही रजत शुक्तिरजत भ्रम में स्वीकार करना चाहिए [217]।

**३.४.२.न्यायमकरन्दकारकृत खण्डन** - आचार्य आनन्दबोध ने न्यायमकरन्द में अन्यथाख्याति के खण्डन के लिए प्रश्न उठाया है कि रजत व शुक्ति की अन्योन्यात्मकता क्या सत् से अनुभव गोचर है या असत् रूप से ?

१.सत् रूप से तो हो नहीं सकता क्यों कि सामने स्थित दोनों वस्तु एक दूसरे के अभाव रूप ही है (रजत में शुक्ति का और शुक्ति में रजत का अभाव है ।)। अतः सत् रूप से कैसे अनुभुति होगी ? और अन्योन्यात्मकता दोनो के मध्य मान भी ली जाए तो फिर 'नेदं रजतम्' करके बाध कैसे होगा?

२.असत् रूप से भी शुक्ति और रजत की अन्योत्मकता का अनुभव नहीं मान सकते क्योंकि एक वस्तु में दूसरी वस्तु का असत्व रहा करता है ।अन्योत्मकता कोई आरोपित करने वाली वस्तु नहीं है । यदि प्रथम पक्ष मानें तो केवल इदं(शुक्ति) का ही ज्ञान होना चाहिए यदि द्वितीय माने तो आभूषण आदि रूप में रजत का ज्ञान होना चाहिए इदं के रूप में नहीं – "*इयमन्योन्यात्मकता किं सत्वेनानुभवगोचरा असत्वेन वा, नाद्यः अन्योन्याभावात्मनोरनयोरैकात्म्यविरोधात्, नाप्यसत्वेन वस्त्वन्तरमेव वस्त्वन्तरस्य*

---

[217] पूर्ववत् पृ० ४९-५०

*असत्त्वमास्थीयते ,न चारोपितेयमन्योन्यात्मकता वस्त्वन्तरं, तत्सम्भवे वा दुर्निवारमनिर्वाच्यत्वं तस्य तन्मात्र लक्षणत्वात्"।* [218]

## ३.४.३.इष्टसिद्धिकारकृत खण्डन

विमुक्तात्मयति ने इष्टसिद्धि में अन्यथाख्याति के अन्यथात्व का खण्डन करते हुए कहा है कि जो वस्तु जैसी है उससे भिन्न होकर दिख नहीं सकती । जो अन्यत्र सत् रजत (दुकान में स्थित का) का यहाँ भास होता है यह कहना समीचीन नहीं है क्योंकि अनुभव तो सामने स्थित रजत का ही होता है न कि अन्यत्र रजत होने का – *"यस्तु ब्रूयादन्यत्रैव तद्रूप्य भाति नेहेति तस्य प्रतीतिविरोधः स्यात्, यतो नान्यत्र, भाति रूप्यमिहैव तु भाति"* । [219]अतः रजत की प्रतीति ही इस रजत की अन्यत्र सत्ता की कल्पना कर लेती है तो उसी युक्ति से उस रजत की यहीं ( जहाँ प्रतीत हो रहा है ) होने की कल्पना क्यों नहीं की जाती है –

*"सत्तां चेत्कल्पयेत् ख्यातिरसत्ख्यातेरयोगतः ।*

*यत्र यद्भाति तत्रैव तस्य तां किं न कल्पयेत्" ॥* [220]

**विशेष-** अन्यथाख्याति एवं विपरीतख्याति (कुमारिल भट्टाभिमत) दोनों में भ्रम की प्रक्रिया का साम्य होने से अन्यथाख्याति ही विपरीतख्याति कही जाती है । अतः यहाँ परम्परया उसका खण्डन माना जाना चाहिए । दोनों में जो अन्तर हैं वे पूर्व अध्याय में स्पष्ट कर दिये गये हैं ।

---

[218] न्यायमकरन्द पृ० ८७-८८.

[219] इष्टसिद्धि पृ० १२९.

[220] पूर्ववत् पृ० १३०.

## ३.५.सदसत्ख्याति का खण्डन

भामतीकार ने उक्त मत का उल्लेख करते हुए लिखा है कि वस्तुओं का तत्त्व दो प्रकार होता है १. सत्व ( स्वरूपतः) २.असत्व (पररूपतः) ।[221] इदंरूप से शुक्ति का ज्ञान होता है अतः वह इदं में होने से सत् है और रजत में न होने से असत् है। इसी प्रकार रजत भी रजत में होने से सत् तथा इदं (शुक्ति) में न होने से असत् है। सदसत्ख्याति में असत् का ज्ञान माना गया है इसलिए यह मत समीचीन नही है क्योंकि असत् विषयज्ञान स्वीकार करने पर आकाशकुसुम का भी ज्ञान स्वीकार करना पडेगा इसलिए असत् की ख्याति अद्वैतवेदान्त के अनुसार असंभव कल्पना है। इसी प्रकार इदमांश में भ्रान्ति है ही नहीं। आचार्य मण्डन मिश्र ने कहा है " एकान्तसत्वे वा भ्रान्तिरसत्वे किं प्रकाशताम्" [222]। अर्थात् एकान्त सत्व हो तो भ्रान्ति ही नहीं होगी और एकान्त असत्व हो तो ख्याति ही नहीं होगी इस प्रकार सांख्य का सिद्धान्त भ्रमज्ञान को ही नष्ट कर देता है। अतः यह सिदान्त भ्रम ज्ञान की पूर्ण व्याख्या देने में असमर्थ है।

## ३.६.सत्ख्याति का खण्डन

श्री चित्सुखाचार्य ने तत्त्वप्रदीपिका (चित्सुखी) में सत्ख्याति का प्रत्याख्यान किया है कि भ्रम में प्रतीत होने वाला पदार्थ सत् भी नहीं हो सकता क्यों कि यदि वह सत् होता तो "नेदं रजतम्" करके उसका बाध नहीं होता। अतः सत् होते हुए बाधित होना विरूद्ध है – *"नापि*

---

221 द्विविधं च वस्तुनां तत्त्वं सत्वमसत्वंच, तत्र पूर्वं स्वतः परं तु परतः । यथाहुः –

स्वरूपपररूपाभ्यां नित्यं सदसदात्मके ,वस्तुनि ज्ञायते किञ्चिद् रूपं कैश्चित्कदाचन्,॥ भामती,अध्यासभाष्य, पृ० २३ .

222 विभ्रमविवेक,४६, उद्धृत – शंकरोत्तर अद्वैत वेदान्त में मिथ्यात्व का निरूपण, ले०स्वामी अभेदानन्द, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर , १९७३.

*सत,नेदं रजतमित्यादिबाधविरोधात् । यत्र बाध्यते ततोऽन्यत्रास्तीति चेत् न तत्र प्रमाणनिरूपणात्" ।* [223]

सत्ख्याति के प्रत्याख्यान हेतु तत्त्वप्रदीपिकाकार ने निम्नलिखित प्रधान युक्तियाँ दी हैं –

१. यदि प्रत्येक वस्तु के परमाणु प्रत्येक वस्तु में पाये जाए तो स्वयं उस वस्तु के स्वरूप का निर्धारण कैसे होगा ? इस पर प्रतिपक्षी का कहना है कि परमाणु कोई स्थूल तो होते हैं नहीं जो स्थान घेरते हैं ।इसलिए सर्वत्र सर्वविध परमाणु रह सकते हैं । वस्तु विशेष में उसके परमाणुओं का उद्भूत रूप में मिलना ईश्वरेच्छा से निर्धारित है । भ्रमस्थल पर दोषवशात् उसका अतिक्रमण होता है तभी शुक्ति में रजत के परमाणु उद्भूत होकर सत्य रजत बन जाता है जो दोष के शिथिल होने पर विनष्ट हो जाता है । इसका उत्तर है कि दोष द्वारा ईश्वर के अतिक्रमण की कल्पना उचित नहीं है। यहाँ दोष ईश्वर से महान् बन गया है ।

२. यदि सच्चा रजत ही वहाँ उत्पन्न हुआ हो तो वह समीप स्थित दूसरे व्यक्ति को मिल जाना चाहिए क्योंकि भान्त व्यक्ति तो अभी दूर है और सत्य रजत परमाणुओं के मिलने से सत्य रजत उत्पन्न हो चुका है । एक ही समय वह रजत किसी के प्रति सत्य हो और अन्य के प्रति न हो तो ऎसी सत्यता कभी सत्यता नहीं हो सकती [224]।

सत्ख्याति के विरोध में महत्वपूर्ण बात यह हो सकती है शुक्तिरजत भ्रमस्थल पर तो द्रव्य मात्र के गुणों का रहना कदाचित् सम्भव हो परन्तु क्रियायुक्त जीवतुल्य या सजीव वस्तु तथा अतिविस्तीर्ण गन्धर्वनगर आदि की परमाणु कल्पना तो अशक्य है[225] ।

---

[223] तत्त्वप्रदीपिका, पृ० १२३.

[224] तत्त्वप्रदीपिका पृ १२४.

[225] शंकरोत्तर वेदान्त में मिथ्यात्व निरूपण, अभेदानन्द, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, १९७३ पृ० ५९.

## ३.७. अनिर्वचनीयख्याति की स्थापना

यदि 'इदं रजतम्' इस भ्रान्तिस्थल में रजत असत् है तो उसकी ख्याति नहीं होनी चाहिये और यदि सत् है तो उसका 'नेदं रजतम्' करके बाध नहीं होना चाहिये,[226] ख्याति और बाध दोनों सिद्ध करते हैं कि रजत अनिर्वचनीय है। अतः स्पष्ट है कि अद्वैतवेदान्ती भ्रम की व्याख्या अनिर्वचनीयख्याति द्वारा करते हैं।

# ३.७.१.अनिर्वचनीयख्याति-प्रतिपादन

## ३.७.१.१ .भामतीकार का मत

भामतीकार ने अनिर्वचनीय ख्याति का उपबन्ध करते हुए लिखते हैं कि "परीक्षक विद्वानों के विवाद का पर्यवसित अर्थ करते हुए आचार्य शंकर कहते - "*सर्वथाऽपि अन्यस्यान्यधर्मविभासतां न व्यभिचरति*" ।[227] अन्य वस्तु में अन्य वस्तु की कल्पना ही अनृतता है और अनृतता ही अनिर्वचनीयता है । सभी दार्शनिकों के मत में अनिर्वचनीयता अवश्यम्भाविनी है अतः अनिर्वचनीयता एक स्वतन्त्र सिद्धान्त है – *"अन्यस्यान्यधर्म कल्पनाऽनृतता सा चानिर्वचनीयतेत्यधस्तादुपपादितम् । तेन सर्वेषामेव परीक्षकाणां मतेऽन्स्यान्यधर्मकल्पनानिर्वचनीयताऽवश्यम्भाविनीत्यनिर्वचनीयत सर्वतन्त्राविरुध्दोऽर्थः इत्यर्थः"। [228]* यह अनिर्वचनीयता केवल परीक्षकविद्वानों तक सीमित न होकर लोक में भी

---

[226] रजतं भाति यद् भ्रान्तौ तत्सदेके परे त्वसत् ।

अन्येऽनिर्वचनीयं तदाहुस्तेन विचार्यते ॥

असतः ख्यात्ययोगात् सद्बाधायोगादसत्सत् ।

अतोऽनिर्वचनीयं तदिति पक्षेषु युक्तयः ॥ इष्टसिद्धि १,२,३. पा. ३९ विमुक्तात्मा, बडौदा १९३३ ।

[227] ब्रह्मसूत्रशांकरभाष्य (रत्नप्रभाटीका सहित), अनु० यतिवरभोलेबाबा, भारतीय विद्या प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथमभाग, २००४, ,पृ० ३७ .

[228] भामती पृ० ३३ .

प्रसिद्ध है जैसा भाष्यकार कहते हैं –"*न केवलमियमनृतता परीक्षकाणां सिद्धाऽपितु लौकिकानामपीत्याह "तथा हि लोकेऽनुभवः शुक्तिका हि रजतवदवभासत इति"।* [229] क्या यह भ्रमरूपता केवल अन्य वस्तु की अन्य रुपात्मकता रूप ही है अथवा यह अभिन्न तत्त्व में भी घटित होती है ? इसके परिहार के लिए भाष्यकार ने अध्यास (अनिर्वचनीय ख्याति) का दूसरा उदाहरण दिया है – एकश्चन्द्र सद्वितीयवदिति। जैसे एक चन्द्र में द्वित्वादि का भ्रम हो जाता है वैसे ही एक ब्रह्मन् में अनेक जीवरूपता का भ्रम हो जाता है – "*अन्यस्यान्यात्मताविभ्रमो लोकसिद्धः, एकस्य त्वभिन्नस्य भेदभ्रमो न दृष्टः इति कुतश्चिदात्मनोऽभिन्नानां जीवानां भेदविभ्रम इत्यत आह एकश्चन्द्रसद्वितीयवदिति"।* [230]

## ३.७.१.२.विवरणकार का मत

विवरणकार ने प्रथम तो सत्तात्रय का वर्णन करते हुए यह बताया है कि अध्यास आदि की सत्ता अविद्योपादिक सत्त्व है अर्थात् प्रातिभासिक है -१. पारमार्थिक सत्ता-परमार्थसत्त्वं ब्रह्मणः २. व्याव्हारिक सत्ता- अर्थक्रियासामर्थ्यं मायोपाधिकं आकाशादेः ३.प्रातिभासिक सत्ता-अविद्योपाधिसत्त्वं रजतादेः।

यद्यपि प्रकाशात्मयति माया और अविद्या में तात्विक भेद नहीं मानते केवल व्यवहार कृत तथा अवस्थाभेद को ही स्वीकार करते हैं[231]। प्रकाशात्मयति का मानना है कि माया और अविद्या एक ही है क्यों कि-

१. दोनों अनिर्वचनीय है अतः लक्षणसाम्य होने से एक है।

---

[229] पूर्ववत् .

[230] पूर्ववत् .

[231] पंचपादिकाविवरण पृ० ५०

२.जैसे जगत् आदि के उपादान कारण के रूप मे माया की कल्पना की जाती है। उसी प्रकार अध्यासादि के उपादान कारण के रूप में अविद्या की कल्पना की जाती है। इसी के साथ इन दोनों के विकार जगत् और अध्यास आदि अनिर्वचनीय हैं , अतः दोनो उपादान के रूप के कल्पित होने के कारण तथा दोनों के विकारों के भी अनिर्वचनीय रूप में कथन होने से दोनों एक है। "माया तु प्रकृतिं विद्यात्" इत्यादि श्रुतियों में प्रकृति के अर्थ में माया का प्रयोग हुआ है। माया और अविद्या दोनो प्रकृति होने से एक है।

३.शास्त्रव्यवहार से भी माया और अविद्या में अभेद है –

- श्रुतिदृष्टान्त - *"तस्याभिध्यानाद्योजनात्तत्त्वभावाद् भूयश्चान्ते विश्वमायानिवृत्तिः - इत्यादि श्रुतौ सम्यग्ज्ञाननिवर्त्याविद्यायां मायाशब्दप्रयोगात्"*[232] । यहाँ तत्त्वज्ञान से निवृत्त होने वाली अविद्या के लिए माया शब्द का प्रयोग किया है।

- स्मृति दृष्टान्त - *"तरत्यविद्यां विततां हृदि यस्मिन् निवेशिते।*

  *योगी मायामयेयाय तस्मै विद्यात्मने नमः" ॥ इत्यादि स्मृतौ मायाविद्ययोः सामानाधिकरण्येन तत्त्वज्ञानेन कर्तव्याभिधानात्"* ।[233] अर्थात् इस स्मृति में योगी के तत्त्वज्ञान से निवृत्त होने रूप अर्थ में माया और अविद्या का सामानाधिकरण्य रूप से प्रयोग किया है।

- अद्वैतवेदान्त-शास्त्र के दृष्टान्त - *"मायामात्रं तु कार्त्स्नेनानभिव्यक्तस्वरूपत्वादिति"* इस सूत्र में आचार्य बादरायण ने स्वयं स्वप्न में माया शब्द का प्रयोग किया है जो अविद्या का कार्य है । भाष्यकार आचार्य शंकर ने भी *"अविद्या मायाऽविद्यात्मिका*

---

[232] पूर्ववत् .

[233] पूर्ववत्, पृ०५२ .

*मायाशक्तिरिति"* इस प्रकार माया और अविद्या के लिए परस्पर एक दूसरे का प्रयोग किया है । ब्रह्मसिद्धिकार ने भी *"एवमेवेयमविद्या मायामिथ्या प्रत्ययः"* इस प्रकार दोनो को एक कहा है ।

इस प्रकार आचार्य प्रकाशात्मयति ने माया और अविद्या तात्विक रूप से एक बताया है तथा अन्त में बताया कि ये दोनो केवल व्यवहार में विक्षेप शक्ति की प्रधानता से माया और आवरण शक्तिप्रधानता से अविद्या शब्दों से व्यव्हृत है – *विक्षेपप्राधान्येन माया आच्छादनप्राधान्येनाविद्येति व्यवहारभेदः*[234] ।

**माया- अविद्या ऐक्य के सन्दर्भ में विप्रत्तिपत्ति- द्वय और उनका समाधान**[235] **-**

१.शंका-यदि ऐसा कहा जाए कि अविद्या अपने आश्रय को मोह लेती है माया अपने आश्रय को मोहित नहीं करती तो अनुचित है क्योंकि यदि आश्रय को द्रष्टा कहे तो पास में बैठकर माया को देखता हुआ मोहित तो होता ही है । यदि आश्रय को माया का कर्ता कहें तो वह मायावी होने से मोह का अभाव तो वहाँ भी नहीं किन्तु बाध के निश्चय और प्रतिकार जानने से मोह तो दूर हो जाएगा । अतः यह विप्रतिपत्ति उचित नहीं है।

२.शंका- यहाँ एक और शंका उपस्थित होती है कि कर्ता (ईश्वर) माया को अपनी इच्छा अनुसार कर बना सकता है परन्तु (जीव) अविद्या को अपनी इच्छानुसार नहीं बना सकता ।

समाधान -मन्त्र -औषधी आदि में निमित्त कारण में या कर्ता स्वतन्त्र है परन्तु परन्तु माया में नहीं है । यदि दूसरा विकल्प लें तो कर्ता अगुँली आदि नेत्र दबाने से दो चन्द्रमा केशों आदि का गुच्छों का दिखाई देना आदि भ्रमों (अविद्या) को उत्पन्न कर सकता है । इसके अतिरिक्त

---

[234] पूर्ववत् .

[235] पूर्ववत् .

मन्त्र- औषधी आदि के सेवन से होने वाला भ्रम तथा स्वाप्निक भ्रम (अविद्या) आदि कर्ता की इच्छा से उत्पन्न किये जाते हैं अतः यह विप्रत्तिपत्ति भी अनुचित है।

इसके पश्चात् प्रकाशात्मयति अनिर्वचनीय ख्याति का प्रतिपादन करते हैं। अख्याति और अन्यथाख्याति के अनेक दोषों का प्रकटन करते हुए अनिर्वचनीयख्याति का कथन करते हैं। विवरणकार ने अनिर्वचनीय ख्याति को ही अध्यास कहा है तथा यह माया का व्यापार होने से माया ही कही जाती है।

अनिर्वचनीय ख्याति की स्थापना करते हुये प्रकाशात्मयति कहते हैं कि अख्यातिवाद में सद् (प्रत्यक्ष) और असद्( स्मृति) दो ज्ञान मानना पडेगा, प्रत्यक्ष पदार्थ की स्मृति, स्मरणाभिमान, तत्ता का प्रमोष, स्मृति का कारण , तन्निमित्तक प्रवृत्ति और जन्मान्तर में अनुभूत स्मृति इत्यादि दोष जो प्रमाणविरुद्ध है , की कल्पनाएं करनी पडेगी। इसी प्रकार अन्यथाख्याति में अन्यत्र प्राप्त का अन्य स्थल पर होना, इन्द्रियों का जन्मान्तर में अनुभव, देशकाल का व्यवधान आने पर भी पदार्थ को ग्रहण करना और उस प्रकार के पदार्थ के न देखे गये दोष शक्ति कल्पना करना, किसी प्रकार का सम्बन्ध न रहने भी रजत का प्रत्यक्ष होना ऐसी प्रमाणविरूद्ध अनेक कल्पनाएं करनी पडेगी। अतः इन समस्त दोषों को दूर करने के लिए जो जैसे ज्ञात हुआ है उसका मिथ्या एक स्वभाव है अर्थात् "रजत नहीं अपितु मिथ्या रजत ही प्रतीत हुआ है" यह जो अनुभवसिद्ध है उसे स्वीकार कर लेना चाहिए। इस मिथ्यात्व का अविद्या उपादान है यह कल्पना अन्वय व्यतिरेक से सिद्ध है अतः इसे मायामय जानना चाहिए –*"अतः सर्वदोषपरिहाराय यथा प्रतिपन्नस्य मिथ्यात्वं नामैकः स्वभावो " नास्त्यत्र रजतम्, मिथ्यैव रजतमभादि इत्यनुभवसिद्धः समाश्रयणीयः अविद्योपादानकल्पनायाश्चान्वय- व्यतिरेकसिद्धत्वादित्याह अतोमायामयमिति"* ।[236]अब प्रकाशात्मयति अनिर्वचनीय ख्याति को परिभाषित करते हुए कहते हैं कि सत्यवस्तु का

[236] पूर्ववत्, पृ० ५१.

मिथ्या वस्तु के साथ मिलकर प्रतीत होना माया है यही मिथ्या है यही अनिर्वचनीयख्याति है और यही अध्यास है – *"सत्यस्य वस्तुनो मिथ्यावस्तुसंभेदोऽवभासमानो माया मिथ्याऽनिर्वचनीयख्याति"* [237] । इस प्रकार विवरणकार प्रकाशात्मयति ने अनिर्वचनीय ख्याति को मिथ्या तथा माया कहा है ।

## ३.७.१.३.रत्नप्रभाकार का मत

रत्नप्रभाकार ने अनिर्वचनीयख्याति को स्पष्ट करते हुए कहा है कि शुक्ति-रजत भ्रम स्थल पर शुक्ति में प्रत्यक्ष दिखलाई देने वाला रजत, देशान्तर (अख्याति व अन्यथाख्याति) और बुद्धि (आत्मख्याति) में तो रह नहीं सकता । यदि उसे शून्य (असत्ख्याति) माने तो उसका प्रत्यक्ष नहीं हो सकता।यदि वह शुक्ति (सत्ख्याति) में ही है तो उसका बाध नहीं हो सकता ।इसलिए यह प्रातीतिक रजत मिथ्या है । आरोप्य (रजत) का मित्थ्यात्व तो अनुभव सिद्ध है इसमें किसी युक्ति की अपेक्षा नहीं है क्योंकि वह नेदं रजतम् इस ज्ञान से बाधित होता है - *शुक्तौ अपरोक्षस्य रजतस्य देशान्तरस्य बुद्धौ वा सत्त्वायोगात्, शून्यत्वे प्रत्यक्षत्वायोगात् शुक्तौ सत्वे बाधायोगात् मिथ्यात्वमेवेति भावः। आरोप्यमिथ्यात्वे न युक्त्यपेक्षा, तस्य अनुभवसिद्धत्वात्*[238]।

---

[237] पूर्ववत्, पृ० ५१.

[238] रत्नप्रभा पृ० ३८

## ३.७.२. अनिर्वचनीयत्व का स्पष्टीकरण

**पंचपादिकार –**

पंचपादिकार ने मिथ्या शब्द से अनिर्वचनीयत्व का स्पष्ट किया है -

*"मिथ्या शब्दो द्वयर्थः अपह्नववनोऽनिर्वचनीयता वचनश्च"।* [239] मिथ्या को अनिर्वचनीय भी कहा है । नृसिहाश्रृम ने वेदान्ततत्त्वविवेक में इसे सदसदनधिकरणत्वरूप से अनिर्वचनीय बताया है।

**विवरणकार –**

प्रकाशात्मयति ने मिथ्या की परिभाषा दी है – "*प्रतिपन्नोपाधावभावप्रतियोगित्वमेव मिथ्यात्वं नाम"।* [240] यहाँ प्रतिपन्न उपाधि से आशय अपने आश्रय रूप से अभिमत है इससे शशविषाण आदि अलीक पदार्थों में अतिव्याप्ति नहीं होगी क्यों कि उनका कोई अधिष्ठान नहीं है । इससे ब्रह्मन् में भी अतिव्याप्ति नहीं होगी क्यों कि ब्रह्मन् सभी का अधिष्ठान है, ब्रह्मन् का अधिष्ठान कोई नहीं । विवरणकार का अनुसरण करते हुए वेदान्तपरिभाषाकार धर्मराजाध्वरीन्द्र ने स्पष्टीकरण हेतु अत्यन्ताभाव तथा यावत् पद जोड दिया है – *मिथ्यात्वं च स्वाश्रयत्वेनाभिमतयावन्निष्ठात्यन्ताभाव प्रतियोगित्वम्* । 'यावत्' पद से संयोग आदि में अतिव्याप्ति नहीं होगी जैसे कपिसंयोग का मूल में अभाव तो मिथ्या का लक्ष्य कपि प्रतियोगि के अभाव को बताना नहीं है ।

विवरणकार ने ज्ञानबाध्यत्वरूप मिथ्यात्व का एक और लक्षण दिया है – *बाधकज्ञान सिद्धस्य प्रतिपन्नोपाधिपाधावभावप्रतियोगीत्वलक्षणस्य मिथ्यात्वस्य पुनः स्वशब्देन परामर्शाच्च*

---

239 पंचपादिका पृ० ६७

240 पचपादिकाविवरण पृ० ५३

*बाधविषयो मिथ्यात्वमिति*[241] । अर्थात् बाधक ज्ञान से जिसका निराकरण हो वही मिथ्या है रजतादि का शुक्ति के ज्ञान से तथा जगतादि का ब्रह्मज्ञान से बाध होने के कारण मिथ्या है । इसलिए अद्वैत सिद्धिकार ने कहा है – *ज्ञाननिवर्त्यं वा मित्थ्यात्वम्*[242] ।

(चित्र सं० ३.१) विवरणकार के अनुसार मिथ्या का लक्षण -

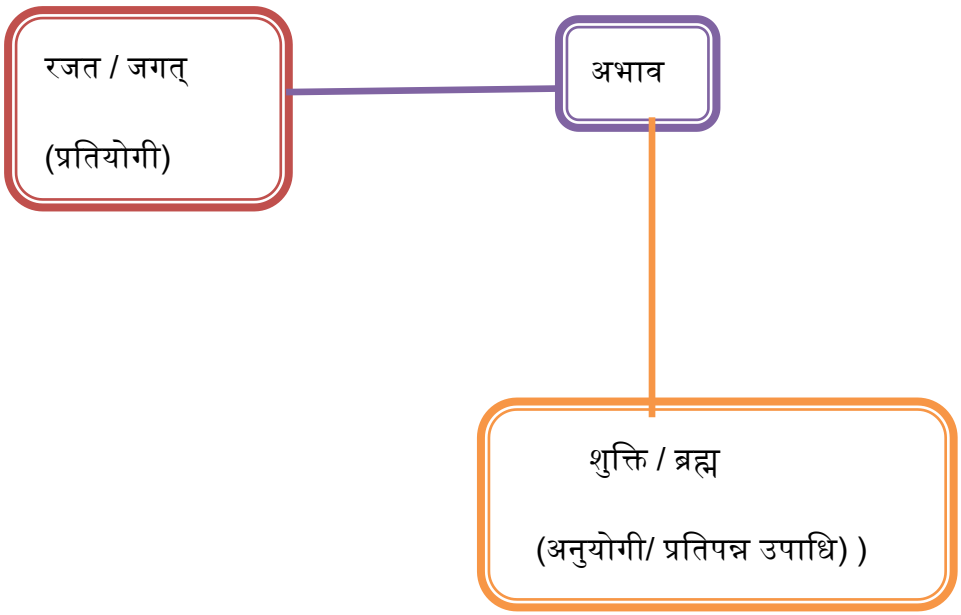


चित्सुखाचार्य ने मिथ्या के दो लक्षण दिया है प्रथम है -*सदसविलक्षणत्वं मिथ्यात्वं* ।[243] दूसरा लक्षण में विवरणकार का अनुगमन किया है – स्वाश्रय में अत्यन्ताभाव का प्रतियोगी होना –

*सर्वेषामपिभावानां, स्वाश्रयत्वेन संमते* ।

---

[241] पूर्ववत् .

[242] इष्टसिद्धि पृ० १६०

[243] तत्वप्रदीपिका पृ० ३३

*प्रतियोगित्वमत्यन्ताभावं , प्रति मृषात्मता*[244] ॥

अद्वैतसिद्धिकार मधुसूदन सरस्वती ने सद् के अतिरिक्त जो भी है वह मिथ्या है और त्रिकालाबधित तो केवल एकमात्र सत् है ब्रह्मन् । इसके अतिरिक्त शुक्तिरजत- जगतादि समस्त मिथ्या है – *सद्विविक्तत्वं वा मिथ्यात्वं*[245] ।

अनिर्वचनीयता पर परवर्ती अद्वैताचार्यों ने पर्याप्त विचार किये हैं- चित्सुखाचार्य ने अनिर्वचनीयत्व का लक्षण करते हुये तत्त्वप्रदीपिका में पूर्व पक्ष की ओर से दो कोटियां प्रस्तुत की हैं। पूर्वपक्ष का कहना है कि "अनिर्वचनीयता" से सिद्धान्ती का तात्पर्य क्या (१) निरुक्ति विरहता से या (२) निरुक्ति निमित्त रहितता से है?[246] दोनों ही पक्ष असंगत है, १.निरुक्ति विरहता को अनिर्वचनीय नहीं कहा जा सकता क्योंकि अद्वैतवादी ,जब रजत अनिर्वचनीय है, ऐसा कथन करते हैं तब निर्वचन होने के कारण भ्रमस्थलीय रजत की अनिर्वचनीयता नहीं रह पाती। २.द्वितीय विकल्प में दो बातें हैं- निरुक्ति-निमित्त (कारण) रहितता से तात्पर्य निरुक्ति के लिये ज्ञान का अभाव अथवा अर्थ का अभाव? क्योंकि ज्ञानाभाव से भी कथन नहीं हो सकता जब घट का ज्ञान ही नहीं तो घट का निर्वचन कैसे होगा ? इसी प्रकार घट विषय ही नहीं होगा तो उसका ज्ञान नहीं होगा और ज्ञान नहीं होगा तो उसका निर्वचन नहीं हो सकता इस प्रकार निरुक्ति के ये दो निमित्त या कारण है । अतः इसका उत्तर यह है कि अद्वैतवेदान्ती भी ज्ञान की निरुक्ति-निमित्तता स्वीकार करते हैं – "*रजतादिज्ञानस्य निरुक्तिनिमित्तस्य मायावादिभिरभ्युपगमात्*" ।[247]यदि अर्थ(विषय)की रहितता को स्वीकार किया

---

[244] तत्त्वप्रदीपिका पृ० ३९

[245] अद्वैतसिद्धि पृ० १९५.

[246] ननु किमिदमनिर्वचनीयत्वं किं निरुक्तिविरहः किं वा

निरुक्तिनिमित्तविरहः? तत्त्वप्रदीपिका पृ.- ७५ ।

[247] तत्त्वप्रदीपिका पृ. ७५ ।

जाए तो असत् ख्याति में प्रवेश का प्रसंग हो जाएगा – अर्थस्य सतो विरहेऽसत्ख्यातिप्रसंगात्।[248] अब प्रश्न यह है कि जब अनिर्वचनीयता निरुक्ति रहितता तथा निरुक्तिनिमित्त रहितता नहीं है तो क्या है ? अनिर्वचनीयत्व में उक्त प्रकार पूर्वपक्ष करने के पश्चात् चित्सुखाचार्य ने इस का एक युक्तिसंगत लक्षण प्रस्तुत किया है -

*"प्रत्येकं सदसत्वाभ्यां विचारपदवीं न यत् ।*

*गाहते तदनिर्वाच्यमाहुर्वेदान्तवेदिनः" ॥ [249]*

इसी को और अधिक स्पष्ट करते हुए चित्सुखाचार्य कहते हैं - सत्व और असत्वरूप से जिस का विचार सम्भव नहीं, दोनों कोटियों को मिलाकर भी जिसका विचार सम्भव नहीं वह अनिर्वाच्य है - *सत्वेवासत्वेन च विचारसहत्वे सति सदसत्वेन च यद्विचारं न सहते तदनिर्वाच्यम् ।*[250] अद्वैतसिद्धिकार का लक्षण भी उक्त लक्षण के समान है।[251] चित्सुखाचार्य ने 'ज्ञानबाध्यत्व' लक्षण को भी अनिर्वाच्यत्व का निर्दोष लक्षण कहा है।[252] उन्होंने बाध का अर्थ 'प्रतिपन्नोपाधि में अभावबोधन' किया है - बाधो हि नाम प्रतिपन्नोपाधावभावबोधनम्। । अर्थात्

---

[248] तत्त्वप्रदीपिका पृ. ७५

[249] तत्त्वप्रदीपिका पृ. ७९ ।

[250] तत्त्वप्रदीपिका, पृ० ७६.

[251] अद्वैतसिद्धिः एवं लघुचन्द्रिका, पृ. ६२१ ।

[252] तत्त्वप्रदीपिका, पृ. ७८ ।

अपने आश्रय में प्रतीत होने वाली वस्तु का अपने आश्रय में अभाव [253] । इसी लक्षण को अद्वैतसिद्धिकार ने *'प्रतिपन्नोपाधौ बाध्यत्वं वा'* [254] कहा है।

न्यायमकरन्दकार ने बताया है कि अनिर्वचनीयता का अर्थ निर्वचन का अभाव (किसी प्रकार से कहा नहीं जा सकता) नहीं है । सत् और असत् कोटियों से पृथक्- पृथक् या दोनों से एक साथ विलक्षण होना भी अनिर्वचनीयता नहीं है क्योंकि ऐसा हो तो सत् से विलक्षण होना असत् में तथा असत् में विलक्षण होना सत् , सत् और असत् दोनों (उभय से) विलक्षण होना पृथक्-पृथक् सत् और असत् में प्राप्त दोनों में प्राप्त होता है । अतः पृथक्-पृथक् एक प्रकार से( सत् और असत् से) विलक्षण होते हुए दोनों से विलक्षण होते हुए दोनो से विलक्षण होना अनिर्वचनीयता है *"यत्तावत् निर्वचनानर्हतैवानिर्वाच्यतेत्यभ्यदाधायि तत्रामभ्युपगम एव।यत्तु नापि सदसत्प्रकारविलक्षणता इत्यादि तत्र यद्यपि एकैकप्रकारवैलक्षण्योभयप्रकारवैलक्षण्ययोः अस्ति व्यभिचारः, तथापि एकैकप्रकारवैलक्ष्यावच्छिन्नोभयप्रकारवैलक्ष्ण्यस्य लक्षणभावे न दोषं पश्यामः"* [255]। न्यायमकरन्दकार ने इसी को स्पष्ट करते हुए कहा है कि असत् नरश्रृंग की कभी प्रतीति नहीं होती सत् ब्रह्मन् का त्रिकाल में बाध नहीं होता जबकि रजतादि की प्रतीति और बाध दोनो होने से सदसत् से विलक्षण है अतः अनिर्वचनीय है - *नात्यन्तासतो नरविषाणस्य प्रतिभासगोचरता नाप्यत्यन्तासतश्चिदात्मनो बाधसम्भवः तदिहोभयान्यथानुपपत्या उभयविलक्षणता रजतादेराश्रीयत इति*[256] ।

---

[253] पूर्ववत् ।

[254] अद्वैतसिद्धिः पृ. ६११ ।

[255] न्यायमकरन्द, पृ० ११५.

[256] न्यायमकरन्द, पृ० ११६.

विमुक्तात्म यति ने इष्टसिद्धि में बताया है कि भ्रमज्ञान तथा बाधज्ञान दोनो की व्यवस्था एवं युक्तता तभी रहती है जब भ्रम में प्रतीत होने वाली वस्तु तथा उसके ज्ञान को सत्त्व, असत्त्व , सदसत्त्व –इन सब से रहित पृथक् अनिर्वचनीय अविद्यात्मक माना जाए -

*सत्त्वे न भ्रान्ति बाधौस्तां नासत्वे ख्यातिबाधकौ*

*सदसद्भ्यामनिर्वाच्याविद्या वेद्येस्सह भ्रमाः*[257] ॥

भ्रान्ति में जो भी कुछ ज्ञात होता है वह वस्तुतः है या नहीं इसका कोई निर्णायक प्रमाण नहीं होने से वह अनिर्वचनीय ही है - *भ्रान्तौ यावत्किञ्चिद्भाति तस्य सर्वस्य भावेऽभावे च प्रमाणाभावादनिर्वचनीयतैवेति सिद्धम्*[258]।

### ३.७.३.अनिर्वचनीयख्याति (भ्रम) की प्रक्रिया –

यह जान लेने के पश्चात् की अनिर्चनीयख्याति क्या है ? अनिर्वचनीयत्व से अद्वैतवाद का क्या आशय है ? अब इस अध्याय में अनिर्वचनीय ख्याति की प्रकिया पर विचार किया जा रहा है।पूर्व अध्याय सं २ में अनिर्वचनीय ख्याति में यद्यपि वेदान्तपरिभाषाकार (धर्मराजाध्वरीन्द्र) तथा सिद्धान्तलेशसंग्रहकार (अप्पयदीक्षित) के मत की प्रक्रिया के सन्दर्भ में चर्चा की जा चुकी है तथापि अनिर्वचनीयख्याति की प्रक्रिया को उपर्युक्त मतों का अनुमोदन करते हुऐ विवरणप्रमेयसंग्रहार विद्यारण्यमुनि ने वृत्तिद्वय व विवर्तद्वय के आधार पर भ्रमरहित एवं स्पष्ट दृष्टि प्रदान की है अतः यहाँ उनके मत को प्रस्तुत किया जा रहा है -

**विवरणप्रमेयसंग्रहकार का मत -** विवरणप्रमेय संग्रह में विद्यारण्य मुनि ने अनिर्वचनीय ख्याति (भ्रम) की पूर्ण तथा व्यवस्थित प्रक्रिया का वर्णन किया है – १. पहले दोषयुक्त

---

257 इष्टसिद्धि, १/९.

258 पूर्ववत् पृ० १२१.

इन्द्रिय से इदमांश को ही विषय करने वाली वृत्ति उत्पन्न होती है २.इसके बाद यह अंश और उसकी ग्राहक वृत्ति में चैतन्य अभिव्यक्त होता है । ३. इस दशा के चैतन्य में विद्यमान अविद्या दोष से(सामग्री में विद्यमान दोष से) संक्षुब्ध हो जाती है । ४. यह अंश से अवच्छिन्न चैतन्य में रहने वाली अविद्या क्षुब्ध होकर सादृश्य से उद्भूत हुए रजतसंस्कार की सहायता से रजत के आकार में विवर्त रूप परिणाम को प्राप्त हो जाती है ५. वृत्ति से अवच्छिन्न चैतन्य में स्थित अविद्या संस्कार से सहकृत होकर उस रजत को विषय करने वाली वृत्ति बन जाती है ५. ये दोनों रजत विवर्त और वृत्ति विवर्त अपने अपने अधिष्ठान रूप में स्थित एक साक्षी चैतन्यद्वारा प्रकाशित होते हैं । इसी से रजत का अवभास होता है [259]।

यद्यपि इस प्रक्रिया में अन्तःकरण वृत्ति और अविद्यावृत्ति ये दो पृथक्-पृथक् ज्ञान है तथापि उन दोनो के विषय क्रमशः 'सत् इदं' तथा 'मिथ्या रजतम्' परस्पर तादात्म्य होने से एक हो जाते हैं "इदं रजतम्" इस प्रकार का ज्ञान होता है । विद्यारण्य प्रतिपादन में दो वृत्तियाँ है – अन्तःकरणवृत्ति तथा प्रमाता में विद्यमान अविद्यावृत्ति तथा विवर्त भी दो है –

१. विषयावच्छिन्न चैतन्य में स्थित अविद्या का रजताकार विवर्त ( अर्थाध्यास)।

२. प्रमातृचैतन्य में स्थित अविद्या का उक्त रजत को विषय सा करता हुआ वृत्त्याकार विवर्त (ज्ञानाध्यास) ।

विवरणकार की ही बात का समर्थन करते हुए मधुसूदन सरस्वती का कहना है भ्रम वृत्तिद्वयात्मकज्ञान है अधिष्ठान (शुक्ति) अंश में अन्तःकरण वृत्ति तथा अध्यस्त अंश में (रजत) अविद्या वृत्ति दोनों वृत्तियों में तादात्म्य होने से तथा दोनो का साक्षिचैतन्य से भान होने से

---

[259] प्रथमं दोषसहकृततेनेन्द्रियेणदन्तामात्रविषयान्तःकरणवृत्तिर्जन्यते । तत इदन्तायां तद्ग्राहकवृत्तौ च चैतन्यमभिव्यंञ्जते । तच्चैतन्यनिष्ठा चाविद्या दोषवशात् संक्षुभ्नाति तत्रेदमंशावच्छिन्नचैतन्यस्थाऽविद्या संक्षुभिता सती सादृश्यादुद्भितबोधितरूप्यसंस्कारवशात् रूप्याकरेण विवर्तते । वृत्यवच्छिन्नचैतन्यस्थाऽविद्या तु रूप्यग्राहिवृत्तिसंस्कारसहकृता वृत्तिरूपेण विवर्तते तौ च रूप्यग्राहिवृत्तिविवर्तौ स्वस्वाधिष्ठानेन साक्षिचैतन्येनावभास्यते इत्येवं रजताभासः । विवरणप्रमेयसंग्रह , सम्पा० कृष्णपन्त, शास्त्री, अच्युत ग्रन्थमाला, काशी, १९९६,पृ० १२७-१२८.

भ्रमज्ञान फलित होता है – *"अधिष्ठानांशे अन्तःकरणवृत्तिः अध्यस्तांशे चाविद्यावृत्तिः । तस्यां च तादात्म्यस्य भानात् नाख्यातिमतप्रवेशः"* । [260]

**निष्कर्ष -**

निष्कर्षरूप में कहा जा सकता है कि अनिर्वचनीयख्याति ही एकमात्र ऐसा सिद्धान्त है जो भ्रम की व्याख्या में पूर्ण और व्यवस्थित है । उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि अध्यास ही अनिर्वचनीयख्याति है जो माया या अविद्या का कार्य होने से अविद्या ही कहा जाता है इस अनिर्वचनीयख्याति या अध्यास या मिथ्यात्व या अविद्या का प्रमाणासहिष्णुत्व (प्रमाणों से अज्ञात) या विचारासहिष्णुत्व ( विचार से परे होना) अद्वैतवेदान्त शास्त्र में निर्विवाद रूप से स्वीकृत है इसी का किञ्चित् दिग्दर्शन यहाँ किया जा रहा है –

आचार्य शंकर ने माया को अनिर्वचनीय तथा सदसदादि कोटियों के विचार से रहित बताया है- **"***अव्यक्तनाम्नी परमेशशक्ति"*। [261]

*" सन्नाप्यसन्नाप्युभयात्मिका नो"* । **262**

**वेदान्तसिद्धान्तमुक्तावलीकार** के अनुसार अज्ञान को प्रमाणों से जानना ऐसा ही माना गया है जैसे किसी के द्वारा उत्तम तेजवाले दीपक से अन्धकार को जानने की चेष्टा की जाए –

*"अज्ञानं तु ज्ञातुमिच्छेत् यो मानेनात्यन्त मूढधीः ।*

*स तु नूनं तमः पश्येद् दीपेनोत्तम तेजसा" ॥*[263]

---

[260] अद्वैतसिद्धि, सम्पा० अनन्त कृष्ण शास्त्री, परिमल पब्लिकेशन, दिल्ली,१९८२, पृ० ६५२.

[261] विवेकचूडामणि, अनु० मुनिलाल, गीताप्रेस गोरखपुर, वि० स०२०६५, पृ० ३२.

[262]पूर्ववत् .

सुरेश्वराचार्य का मत है प्रमाण के द्वारा प्रतिस्थापित न किये जाने में ही अविद्या का विद्यात्व है। यदि वह प्रमाण से सिद्ध हो जाए तो अवस्तु के स्थान के पर वस्तु बन जाए-

*"अविद्यया अविद्यात्वमिदमेव तु लक्षणम्*

*यत्प्रमाणसहिष्णुत्वमन्यथा वस्तु सा भवेत्" ॥* [264]

सुरेश्वराचार्य ने नैष्कर्म्यसिद्धि में अविद्या की तुलना दिवान्ध के द्वारा परिकल्पित अन्धकार से की है जैसे दिन में अन्धकार नहीं होता है तथापि दिवान्ध को दिन में भी यह लगने लगता है कि कुछ न कुछ अन्धकार सा है – *सेयं भ्रान्तिर्निरालम्बा सर्वन्यायविरोधिनी।*

*संहते न विचारं सा तमो यद्वत् दिवाकरम् ॥* [265]

इष्टसिद्धिकार का विचार है अविद्या की दुर्घटता में दोष नहीं है दुर्घट होना उसके लिए दूषण न होकर भूषण ही है। यदि किसी प्रकार से वह घटित हो जाए तो अविद्या का अविद्यात्व ही दुर्घट हो जाएगा – *दुर्घटत्वमविद्यायाः भूषणं न तु दूषणम्।*

*कथञ्चित् घटमानत्वेऽविद्यात्वं दुर्घटं भवेत् ॥* [266]

---

263 वेदान्तसिद्धान्त मुक्तावली, अच्युत कार्यालय काशी, पृ०१२५.

264 बृहदारण्यभाष्यवार्तिक, आनन्दाश्रम संस्कृत सीरीज पूना, १९९२, पृ० १८१.

265 नैष्कर्म्यसिद्धि, सम्पा० कर्नल जी० ए० जैकोब, चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी, १९९२ ३/६६

266 इष्टसिद्धि, १/१४०

# अध्याय - ४

# अध्यासभाष्य विश्लेषण : भामती एवं विवरण टीकाओं के विशेष परिप्रेक्ष्य में

# अध्याय४. अध्यासभाष्य विश्लेषण: भामती एवं विवरण टीकाओं के विशेष परिप्रेक्ष्य में

## ४.१.अध्यासभाष्य: एक परिचय

एक, चेतन, साक्षी और निर्गुण आत्मन् या ब्रह्मन्[267], अनेक सगुण जीवों, जड पदार्थों में कैसे भासित होता है तथा कैसे इस जगत् में ज्ञाता, कर्ता और भोक्ता के रूप में व्यहार करने वाले जीव की उपपत्ति कैसे होती है ? इस प्रमुख तत्त्वमीमांसीय एवं ज्ञानमीमांसीय समस्या के समाधान हेतु आचार्य शंकर ने ब्रह्मसूत्रों पर भाष्य लिखने से पूर्व उपोद्धात रूप में अध्यासभाष्य का उपवर्णन किया तथा एक मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त प्रस्तुत किया है कि किस प्रकार एक, चेतन, ब्रह्मन् या आत्मन् के अनेक अनात्मन् पदार्थों में भासित होने का कारण अस्मद्-युष्मद् प्रत्यय या सत्यानृत का मिथुनीकरणरूप अध्यास/अज्ञान/अविद्या[268] का उदय होता है जिसके कारण जीव अपने आप को ज्ञाता कर्ता भोक्ता मानने लगता है । अध्यासभाष्य मानवीय व्यवहार का मनोवैज्ञानिक आधार प्रस्तुत करता है किस प्रकार आत्मन् शुद्ध चैतन्य होकर भी जगत् में प्रमाण-प्रमेय व्यवहार का कर्ता जीव बन जाता है।शंकराचार्य ने अध्यासभाष्य में अध्यास का विवेचन करते हुए दर्शन की मूलभूत समस्या भ्रम का आनुभाविक एवं व्यावहारिक विश्लेषण किया है। भामतीकार के अनुसार अध्यास भाष्य के दो भाग है -

१. आक्षेप-भाष्य-'*युष्मदस्मत्प्रत्ययगोचरयोः'* से लेकर *'मिथ्याभवितुं युक्तम्'* तक अध्यास की अनुपपत्ति को दिखाने से 'आक्षेप भाष्य' कहलाता है ।

---

267 "आत्मा च ब्रह्म" ब्रह्मसूत्रशांकरभाष्य (रत्नप्रभा टीका सहित),अनु० यतिवरभोलेबाबा, भारतीय विद्या प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथमभाग, पृ०८८,२००४.

268 तमेतमेवंलक्षणमद्यासं पण्डिता अविद्येति मन्यन्ते ।" ब्रह्मसूत्रशांकरभाष्य, वही,५२

२.समाधान भाष्य – "तथापि से लेकर नैसर्गिकोऽयं लोकव्यव्हारः" तक का भाष्य 'समाधान भाष्य' कहलाता है क्योंकि इसमें अध्यास की उपपत्ति को दिखाया गया है। 'समाधान भाष्य' जिस प्रकार के प्रारम्भ में 'तथापि' है, उसी प्रकार आक्षेप भाष्य के प्रारम्भ में 'यद्यपि' पद होना चाहिए। अतः आक्षेप भाष्य के प्रारम्भ में यद्यपि पद का अध्याहार कर लेना चाहिए - *"युष्मदस्मदप्रत्ययगोचरयोरिति । अत्र च युष्मदस्मदित्यादिर्मिथ्या भवितुं युक्तमित्यन्तः शंकाग्रन्थः। तथापीत्यादिपरिहारग्रन्थः। तथापीत्यभिसम्बन्धाच्छङ्कायां यद्यपीति पठितव्यम्"*[269]।

प्रस्तुत अध्याय में अध्यास भाष्य के मूल सम्प्रत्ययों जैसे भाष्य के भाष्यत्व, प्रयोजन और मंगलाचरण प्रतिपत्ति आदि पर विचार किया जा रहा है।

## ४.१.१ अध्यासभाष्य: भाष्यत्व विचार –

शंकराचार्यकृत ब्रह्मसूत्रभाष्य 'शारीरकभाष्य' नाम से प्रसिध्द है। शारीरकभाष्य के प्रारम्भ में निबद्ध अध्यास-भाष्य के भाष्यत्व पर यहाँ विचार किया जा रहा है। भाष्य का लक्षण है–

*सूत्रार्थो वर्ण्यते यत्र पदैः सूत्रानुसारिभिः ।*

*स्वपदानि च वर्ण्यन्ते भाष्यं भाष्यविदो विदुः ॥*[270]

अथातो ब्रह्मजिज्ञासा[271] यह प्रथम सूत्र है। भाष्य के प्रारम्भ में निबद्ध अध्यासभाष्य में सूत्र का अर्थ न तो प्रतिपद व्याख्यायित किया गया है। न ही सूत्र से सम्बध्द स्वमत का उपस्थापन किया है। अतः अध्यासभाष्य का भाष्यत्व व्यवहार ही अनुचित है। अतः

---

[269] ब्रह्मसूत्रशांकरभाष्यम्, भामती टीका सहित, व्या० स्वामी योगीन्द्रानन्द, चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी, २००५, पृ० ६.

[270] पंचपादिकाविवरण , अनु० किशोरीदास स्वामी, स्वामी रामतीर्थ मिशन, राजपुर, देहरादून, वि० स० २०६०, पृ० १२

[271] ब्रह्मसूत्र १/१//१, ब्रह्मसूत्रशांकरभाष्य (रत्नप्रभा टीका सहित),अनु० यतिवरभोलेबाबा, भारतीय विद्या प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथमभाग, ,२००४ पृ० ६०.

प्रकाशात्मयति ने विवरण में इस मत को उपस्थापित करते हुए कहा है – *"नेदं भाष्य व्याख्यानपदवीमारोढुमर्हति भाष्यलक्षणाभावात्" इति तत्रेदं भाष्यं सूत्रकलामपि न प्रतिपादयति, अतो न व्याख्यानार्हम्" इति च ।*[272]

यहाँ कहा गया है कि "*अथातो ब्रह्मजिज्ञासा*" यह सूत्र मुमुक्षूओं की शास्त्र में प्रवृत्ति हेतु रचित है । अतः शास्त्र में प्रवृत्ति को सिद्ध करने हेतु विधिद्योतक 'कर्त्तव्या' इस पद का अध्याहार करना चाहिए । ऋजुविवरण में कहा गया है *"शास्त्रे प्रवृत्तिरेव प्रथमसूत्रस्य प्रयोजनं , विध्यभावे तदभावः"।* अतः सूत्र का अर्थ है जिज्ञासा पद से द्योतमान विचार को लक्ष्य कर साधनचतुष्टयसम्पन्न मुमुक्षू के द्वारा ब्रह्म विचार करना । इस सूत्र में अधिकार का उल्लेख कर देने पर विषय और प्रयोजन का अर्थतः सूचित कर देने पर भी दोनों (विषय और प्रयोजन) की स्पष्टता अपेक्षित है ।

*'युष्मदस्मत्प्रत्ययगोचरयोः'* यहाँ से प्रारम्भ होकर *'अहमिदममेदम्'* पर्यन्त पूर्वभाष्य, *'अस्यानर्थोप्रहाणायाऽऽत्मैकत्वविद्यापतिपत्तये सर्वेवेदान्ता आरभ्यन्ते'* इस उत्तरभाष्य से सम्बध्द होकर वेदान्त शास्त्र के विषय तथा प्रयोजन की सिद्धि करते हैं । यहाँ इन दोनों भाष्य अंशों से बन्ध के अविद्यात्मकत्व (अध्यास) के प्रतिपादन द्वारा वेदान्तशास्त्र के जीवब्रह्मैक्य रूप विषय तथा अविद्यानाश रूप प्रयोजन को बताया गया है । अतः प्रथम सूत्र के भाष्य के प्रति अपेक्षित होने से अर्थात् सूत्रार्थ से सम्बद्ध होने के कारण अध्यासभाष्य का भाष्यत्व सिद्ध है[273] ।

---

272 पंचपादिकाविवरण, अनु० किशोरीदास स्वामी, स्वामी रामतीर्थ मिशन, राजपुर, देहरादून, वि० स० २०६०, पृ० १२

273 एतेन सूत्रार्थास्पर्शितत्वादध्यासग्रन्थो न भाष्यं इति निरस्तम्। आर्थिकार्थ स्पर्शितत्वात् । रत्नप्रभा , ब्रह्मसूत्रशांकरभाष्य (रत्नप्रभा टीका सहित),अनु० यतिवरभोलेबाबा, भारतीय विद्या प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथमभाग, २००४ पृ० १३.

**शंका-**

यहाँ पूर्वपक्ष की शंका उपस्थित होती है कि *'अस्यानर्थोप्रहाणायाऽऽत्मैकत्वविद्यापतिपत्तये सर्वेवेदान्ता आरभ्यन्ते'* इस भाष्यांश में *'अस्यानर्थहेतोः प्रहाणाय'* से प्रयोजन तथा *आत्मैकत्वविद्याप्रतिपत्तये'* से विषय को बता दिया गया है तो *'युष्मदस्मत्प्रत्ययगोचरयोः'* यहाँ से प्रारम्भ होकर *'अहमिदममेदम्'* पर्यन्त भाष्य द्वारा अध्यास का उपस्थापन क्यों किया गया है अतः यह *'युष्मदस्मत्प्रत्ययगोचरयोः'* इत्यादिक भाष्यांश निरर्थक है ?

**समाधान -**

इसका समाधान करते हैं कि ब्रह्मज्ञान जीव में प्रमातृत्व-कर्तृत्व –भोक्तृत्व के हेतुभूत अज्ञान का नाशक है जो सत् न होकर मिथ्या है । जब तक मिथ्या अज्ञान का नाश नही होगा तो जीवब्रह्मैक्य रूप शास्त्र प्रयोजन की सिद्धि कहाँ से होगी ? अतः युष्मदस्मत्प्रत्ययगोचरयोः भाष्य भी विषय- प्रयोजन के प्रतिपादन की सिध्दि में उपादेय है अतः किसी भाष्यांश में नही अपितु सम्पूर्ण अध्यासभाष्य में भाष्यत्व है यह सिध्द होता है ।[274]

[274] तत्रविध्यपेक्षितेष्वधिकारिविषयफलानुबन्धेषु विषयफलयेरुपपादनाय बन्धस्य मिथ्यात्वमत्र वर्ण्यते इति सूत्रसंगतमेवेदं भाष्यं व्याख्येयं । पंचपादिकाविवरण, अनु० किशोरीदास स्वामी, स्वामी रामतीर्थ मिशन, राजपुर, देहरादून, वि० स० २०६० पृ०१२.

## (चित्र सं० ४.१) अध्यासभाष्य का भाष्यत्व

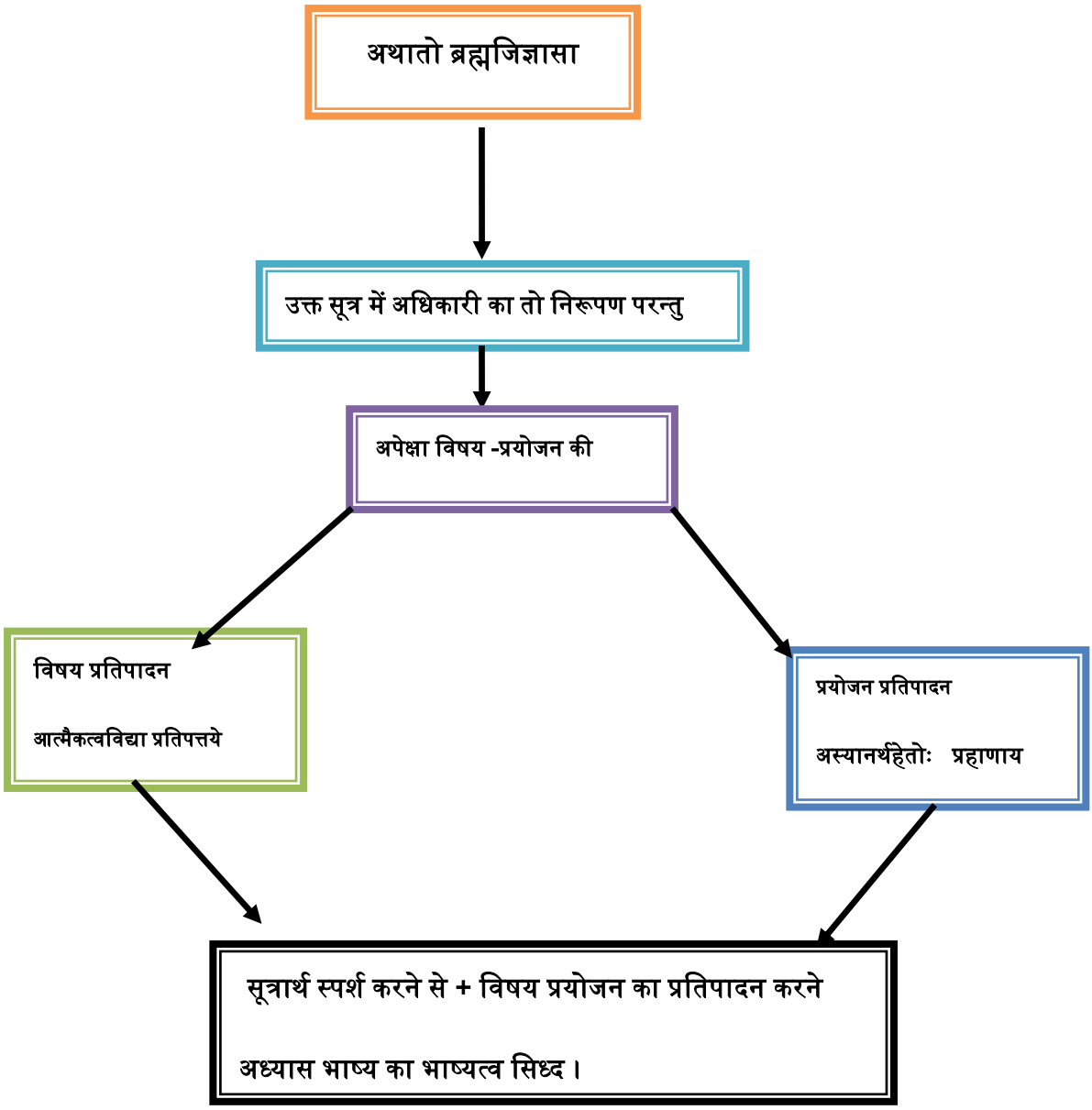


स्रोत- पंचपादिकाविवरण, अनु० किशोरीदास स्वामी, स्वामी रामतीर्थ मिशन, राजपुर, देहरादून, वि० सं० २०६०, पृ०१२

### ४.१.२ .अध्यासभाष्य में मंगलाचरण सम्बद्ध विप्रत्तिपत्ति का निराकरण

*'समाप्तिकामो मंगलमाचरेत्'* इत्यादि शिष्टाचारानुमोदित तथा *"मङ्गलादीनि मङ्गलमध्यानि मङ्लान्तानि हि शास्त्राणि प्रथन्ते वीरपुरुषाणि च भवन्ति आयुष्मत्पुरुषाणि च, अध्येतारश्च यथा स्युरिति"*[275] इत्यादि व्याकरणमहाभाष्यकार पतंजलि प्रोक्त मंगलाचरण ग्रन्थ की निर्विघ्न परिसमाप्ति हेतु ग्रन्थ के आरम्भ में अवश्य किया जाना चाहिये। आचार्य शंकर ने एकादशोपनिषद् सहित जिन भी ग्रन्थों पर भाष्य किया है सभी में मंगलाचरण अवश्य किया है।

*'युस्मदस्मदप्रत्ययगोचरयोः तमप्रकाशवदादि'* पंक्तियों से प्रारम्भ ब्रह्मसूत्र- अध्यासभाष्य में आचार्य शंकर ने मंगलाचरण नहीं किया है। ऐसी विप्रतिपत्ति विवरणकार ने पूर्वपक्ष के रूप में प्रस्तुत की है कि अध्यासभाष्य अव्याख्येय है क्योंकि भाष्य के प्रारम्भ में मंगलाचरण नहीं किया गया है –*"नन्वेमपि न व्याख्येयमिदं भाष्य, शास्त्रादौ मंगलाचरणाभावात्, विघ्नोपसंसृष्टतया शास्त्रार्थेऽप्रतिपत्यन्यथाप्रतिपत्ति विप्रतिपत्तिसम्भवात्, शिष्टाचारपरिपालनहीनतया चानप्तप्रणीतत्वप्रसंङ्गादिति "।*[276] पूर्वपक्षी के अनुसार भले ही शङ्कर शिष्टों में मूर्धन्य है, परन्तु शिष्ट पुरुषों का निष्ठीवनादि (थूँकना आदि कर्म) कर्म का अनुसरण योग्य नही है।[277]

परन्तु *'आदौ नमस्क्रियाशीर्वावस्तुनिर्देश एव वा"* [278] इत्यादि वचनों से मंगलाचरण तीन प्रकार का होता- १. नमस्क्रियात्मक २. आशीर्वादात्मक ३. वस्तुनिर्देशात्मक

यहाँ शङ्कर ने वस्तुनिर्देशात्मक विशिष्टदेवतानुस्मरणरूप मंगलाचरण किया है । युष्मदस्मदप्रत्ययगोचरयोः से लेकर इतरेतरभावानुपपत्तौ पर्यन्त भाष्य में शंङ्कर ने

---

[275] व्याकरणमहाभाष्यः, पश्पशान्हिक, व्या० युधिष्ठिर मीमांसक, चौखम्भा प्रकाशन , नई दिल्ली, २००७,पृ०१३.

[276] पंचपादिकाविवरण, अनु० किशोरीदास स्वामी, स्वामी रामतीर्थ मिशन, राजपुर, देहरादून, वि० स० २०६०,पृ. १२

[277] ननु शिष्टानां निष्ठीवनादि प्रवृत्तिः किमन्येनानुसरणीयेती? , पंचपादिकाविवरण, अनु० किशोरीदास स्वामी, पूर्ववत् ।

[278] पंचपादिकाविवरण अनु० किशोरीदास स्वामी , पूर्ववत् ।

अध्यास- अभाव का प्रदर्शन कर समस्त उपद्रवों से रहित प्रत्यगात्म रूप विशिष्ट देवता का स्मरण किया है ।[279] भाष्य में अस्मत्प्रत्यय (आत्मन् ) को प्रकाशस्वरूप कहकर मंगलाचरण कर दिया गया है ।

पूर्वपक्ष पुनः प्रस्तुत होता है – परन्तु भाष्य में तो अध्यास के अभाव को दिखाने हेतु विशुद्धात्मतत्त्व रूप देवता का स्मरण किया गया है अतः अन्य प्रयोजन के लिये किया गया मंगलाचरण क्या विघ्नों का नाश कर सकता है ?

यहाँ विवरण का प्रत्युत्तर है कि बिना इच्छा के जलाई गयी अग्नि भी जलाती ही है या धूमादि प्रयोजन के लिये जलाई गयी अग्नि जिस प्रकार तृणादि को जला कर भस्म कर देती है उसी प्रकार यहाँ अध्यास के नाश हेतु किया गया आत्मतत्त्वरूप विशिष्टदेवता का स्मरण विघ्नों के नाश में समर्थ है – "*अन्यार्थमपि देवतास्मरणं स्वभावादेव विघ्नोपप्लवं धक्ष्यति, धूमार्थ इव वह्निः तृणादिकमित्यभिप्रायः" ।*[280]

इस प्रकार यहाँ आत्मतत्त्व का प्रकाश रूप में स्मरण कर भाष्यकार ने मंगलाचरण कर दिया है इस लिए भाष्यकार पर शिष्टाचार के उल्लङ्घन का दोष उचित नही है । पंचपादिकाकार ने कहा है – *तदन्यपरादेव भाष्यवाक्यात् निरस्तसमस्तोपपल्वं चैतन्यैकतानमात्मानं प्रतिपद्यमानस्य कुतो विघ्नोपपल्वसम्भवः । तस्मात् अग्रणी शिष्टाचारपरिपालने भगवान् भाष्यकारः ।*[281]

---

[279] शिष्टाचारपरिपालनाय विघ्नोपशान्तये च विशिष्टदेवतातत्त्वानुस्मरणलक्षणं मंगलाचरणं कृतमित्याह। पंचपादिकाविवरण अनु० किशोरीदास स्वामी , पूर्ववत् ।

[280] पंचपादिकाविवरण अनु० किशोरीदास स्वामी , पूर्ववत ।

[281] पंचपादिका, अनु० किशोरीदास स्वामी, स्वामी रामतीर्थ मिशन, राजपुर, देहरादून, वि० स० २०६०,पृ.१४१.

## ४.१.३ .युष्मदस्मदप्रत्यय विचार

अध्यासभाष्य में प्रमुख शंका "युष्मदस्मत्प्रत्यय" पद के साधुत्व तथा अर्थ के विषय में उठती है। पूर्वपक्षी का कहना है कि भाष्यकार प्रोक्त "युष्मदस्मत्प्रत्यय" पद का प्रयोग असाधु है क्यों कि "प्रत्ययोत्तरपदयोश्च" ( पा० सू०७।२।९८) के अनुसार प्रत्यय या उत्तरपद परे रहते "युष्मत्" तथा अस्मत् शब्दों में मपर्यन्त क्रमशः "त्व" एवं "म" आदेश होना चाहिये । इस प्रकार 'युष्मत्' तथा 'अस्मत्' पद में मपर्यन्त वर्णों के स्थान के स्थान पर क्रमशः 'त्व ' तथा 'म' कर देने पर 'त्वत्' तथा 'मत्' रूप बनते है अतः भाष्य में 'युष्मदस्मत्प्रत्यय' के स्थान पर त्वत्-मत्-प्रत्यय होना चाहिये क्यों कि व्यवहार में युष्मत् तथा अस्मत् पद में मपर्यन्त वर्णों के स्थान पर क्रमशः "त्व तथा म" आदेश कर देने पर प्रत्यय परे रहते तो रूप बनता है – त्वदीयं पुस्तकम्, मदीयम् गृहम्, एवं उत्तरपद परे रहते रूप बनता है – त्वत्पुत्रः, मत्पुत्रः अतः भाष्यकार प्रयुक्त "युष्मदस्मत्प्रत्यय" प्रयोग असाधु है ।

इसका समाधान यह है कि अन्यत्र उचित होने पर भी यह शंका इस प्रसंग में अनुचित है क्योकि पाणिनि के सूत्र 'त्वमावेकवचने' ( पा०७/२/९७) के अनुसार उक्त 'त्व' और 'म' आदेश तभी होता है जब इनसे एकवचन अर्थात् एकवस्तु का बोध होता हो जबकि अध्यासभाष्य में प्रयुक्त युष्मत् पद केवल एक अचेतन वस्तु नही अपितु देह, इन्द्रिय, अन्तःकरण जगत् आदि अचेतन वस्तुओं का बोधक उसी प्रकार अस्मत् चैतन्यरूप अर्थ मूलतः एक ही होने पर भी,उपाधि भेद से अनेक जीवों का वाचक है । अतः ये दोनों पद बहुत्व के वाचक होने से उक्त सूत्र प्रभावी नही हो सकता ।

अतः सिद्धान्त यह है कि जब उद्देश्य करके बात की जाती है तो वह चैतन्य युष्मत् पद का अर्थ होता है और अहंकारादियुक्त चेतन अस्मत् पद का अर्थ होता है तब अभिधा से इन प्रसिद्ध अर्थों में प्रयोग होने पर ही इन शब्दों के मपर्यन्त भाग को त्व और म आदेश होते हैं । किन्तु लक्षणा वृत्ति से अन्य अर्थ गृहीत होने पर त्व और म आदेश नही होता है । यहाँ अस्मत् पद चिन्मात्र का तथा युष्मत् पद जडमात्र का लक्षक है । दोनों में लक्षकत्व समान रूप से

विद्यमान है । यदि ऐसा न किया जाए तो युष्मत् और अस्मत् के स्थान पर बहुत्व (अनेकार्थत्व) विवक्षित होने से *'युष्मदस्मदोः षष्ठीचतुर्थीद्वितीयास्थानयोर्वान्नावौ' (पा० सू० ८/१/२०)* सूत्र के अनुसार युष्मत् और अस्मत् के स्थान पर वां एवं नौ आदेश होकर *'युष्मदस्मत्प्रत्ययगोचरयोः'*के स्थान पर *'वांनौप्रत्ययगोचरयोः'* होना चाहिये क्योंकि पद से परे रहने वाले तथा पद से आदि में न रहने वाले षष्ठी, चतुर्थी और द्वितीया विभक्ति में स्थित युष्मद् और अस्मद् के स्थान पर क्रमशः "वां" और "नौ आदेश होते हैं किन्तु यहाँ यह इसिलिये नही हो पा रहा है क्यों कि लक्षणा वृत्ति से अस्मत् पद चिन्मात्र का तथा युष्मत् पद जडमात्र का बोधक है ।[282]

यहाँ फिर एक शंका है कि *'युष्मदस्मत्प्रत्ययगोचरयोः'* में अस्मत् शब्द चेतनवाची है तथा युष्मत् शब्द अचेतनवाची । जड की अपेक्षा चेतन को पूज्य होना चाहिये और पूज्य होने पर '*अभ्यर्हितं पूर्वम्*[283] 'इस वार्तिक के द्वारा अस्मत् पद को युष्मद् पद के पूर्व रखना और वाक्य का प्रारम्भ *'अस्मद्युष्मत्प्रत्ययगोचरयोः'* होना चाहिये । इसके विपरीत यदि युष्मदस्मत् रखा जाता है तो '*त्यदादीनि सर्वेर्नित्यम्' (पा० सू० १/२/७२)* के अनुसार त्यद् तद् आदि सर्वनाम शब्दों के साथ अन्य किसी शब्द का प्रयोग हो तो केवल त्यदादि ही शेष रह जाते हैं तथा इस पर पठित वार्तिक '*त्यदादिषु यत्परं तच्छिष्यते'* इस वचनानुसार जैसे *'स च अयं च इमौ'* यह एकशेष होता है उसी प्रकार यहाँ *"अस्मत्प्रत्ययगोचरयोः"*यह एकशेष होना ।

इसका समाधान रत्नप्रभाकार यह देते हैं विवक्षा होने पर ही सन्धि ,कारक आदि आदेश होते हैं । इसका प्रमाण स्वयं महर्षि पाणिनि है । माहेश्वर सूत्रों " अइउण्, ऋलृक् आदि १४ सूत्रों में नियमानुसार स्वर सन्धियाँ हो सकती थीं किन्तु उन्होने विवक्षित नहीं समझा और स्पष्टता के लिए वैसे ही रहने दिया । अतः विवक्षित न होने के कारण न तो यहाँ व्यतिक्रम (

---

282 "अत्र शब्दक्षकयोरिव चिन्मात्रजडमात्रलक्षकयोरपि न त्वमादेशः लक्षकत्वाविशेषाद्"। रत्नप्रभा,पृ० १६

283 अभ्यर्हितं पूर्वम् इति न्यायात् । रत्नप्रभा ,पृ० १६

अस्मद् –युष्मद् से पहले) तथा एकशेष (अस्मद् –युष्मद् के स्थान पर केवल एक ही शेष) नहीं होगा।उदाहरण के लिए "युष्मदष्मदोरनादेशे " इसमें न तो उन्होंने अस्मद् को युष्मद् से पूर्व किया है न ही एकशेष अस्मद् है क्योकि यहाँ इसकी विवक्षा नही है[284] ।

यहाँ एकशेष का तथा व्यतिक्रम न होने का एक और कारण भामतीकार तथा रत्नप्रभाकार यह देते हैं और वह यह कि यदि एकशेष कर देने पर केवल अस्मद् ही शेष रहता । इसके अतिरिक्त यद्यपि अस्मद् में युष्मद् का भाव निहित है तथापि अध्येता को युष्मद् तथा अस्मद् पद से क्रमशः पृथक -पृथक ज्ञेय अनात्मन् जडतत्त्व और आत्मतत्त्व का स्पष्ट ज्ञापन नही हो पाता । अतः इन द्विविध पदार्थों की भिन्नता ही नहीं अपितु तमःप्रकाशवत् विरुद्धता का प्रत्यायन कराने के लिये के लिए आवश्यक रहा कि यहीं दोनों पदों का प्रयोग हो । अस्मत् के साथ युष्मद का जैसा अत्यन्तविरोध है वैसा अन्य शब्द का नहीं । यद्यपि इदम् से भी बाह्य पदार्थ की प्रतीति करवाई जा सकती थी परन्तु भामतीकार का कहना है कि हमारी दृष्टि में इदम् की अस्मद् के साथ वैसा अत्यन्तविरोधत्व न होने युष्मद् का प्रयोग अधिक उचित है – *"इदमस्मत्प्रत्ययगोचरयोः इति वक्तव्ये युष्मद्ग्रहणमत्यन्तभेदोपलक्षणार्थम्।यथा अहंकारप्रतियोगी त्वंकार नैवमिदंकार एते वयमिमें वयमास्माह इति बहुल प्रयोगदर्शनात् ।*[285]

रत्नप्रभाकार का मानना है कि इदम् अस्मद् के व्यहार में सन्निकट है तथा युष्मद् अस्मद् से अत्यन्तविरुद्धता का ज्ञापक है क्यों कि वेद तथा लोक में इदम् शब्द अस्मद् के समान अर्थ में

---

[284] युष्मदस्मदोः इति सूत्र इव अत्रापि पूर्वनिपातैकशेषयोरप्राप्तेः एकशेषे विवक्षितविरोधास्फूर्तेश्च । रत्नप्रभा, पृ० २६

[285] भामती, पृ० ६

प्रयुक्त हुए हैं जैसे *"इमेंवयमस्माहे, इमें विदेहा.....अयमहमस्मि"* ।[286] अतः भाष्यकार द्वारा प्रयुक्त *'युष्मदस्मत्प्रत्ययगोचरयोः'* साधु प्रयोग है ।

## ४.१.४. युष्मदस्मद्प्रत्यय में तमःप्रकाशवत् विरुद्धता विचार

यह स्पष्ट हो जाने पर कि अस्मद्प्रत्ययगोचर आत्मन् (चेतन) तथा युष्मद्प्रत्यगोचर देह, इन्द्रिय अन्तःकरणादि (अचेतन) पदार्थ परस्पर तम या अन्धकार और प्रकाश के समान अत्यन्त विरुद्ध है अतः इनमें परस्पर इतरेतरभाव या तादात्म्याभाव सम्भव नहीं जैसा भाष्यकार कहा है - *युष्मदस्मत्प्रत्ययगोचरयोः विषयविषयिणोः तमःप्रकाशवद्विरुद्धस्वभावयोः इतरेतरभावानुपपत्तौ सिद्दायां तद्धर्माणामपि सुतराम् इतरेतरभावानुपपत्तिः*[287] ।

यह विरोध या तादात्म्याभाव या इतरेतराभाव किस प्रकार का है ? विरोध दो प्रकार का होता है -

१.निवर्त्य-निवर्तक भाव – एक दूसरे का निवर्तक होता है जैसे प्रकाश अन्धकार का । यहाँ एक की सत्ता होने पर दुसरे की सत्ता नही हो सकती । ऎसा होने पर तो अध्यास नहीं हो सकता क्योंकि अध्यास तो आत्म और अनात्मन् के मिथुनीकरण का परिणाम है । यह

---

286 पराकप्रतीचोर्विरोधस्फुरणार्थं विरुद्धशब्दयोग्यत्वस्यस्याऽपि वक्तव्यात् । अत एव इदमस्मद्प्रत्ययगोचरयोरिति वक्तव्येऽपीदंशब्दोऽस्मदर्थे लोके वेदे च बहुशः "इमे वयमास्महे इमे विदेहाः.....अयमहमास्मि इति च प्रयोगदर्शनात् नास्मच्छब्दविरोधिती मत्वा युष्मच्छब्दः प्रयुक्तः इदं शब्दप्रयोगं विरोधास्फूर्तेः । रत्नप्रभा, पृ० १६,२००४.

287.ब्रह्मसूत्रशांकरभाष्य (रत्नप्रभा टीका सहित),अनु० यतिवरभोलेबाबा, भारतीय विद्या प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथमभाग, पृ०८८,२००४.

मीमांसक तथा न्याय का मत है जिसे विवरणकार ने पूर्वपक्ष के रूप में केचित् कहकर प्रतिपादित किया है ।[288]

२.सहानवस्थानयित्व – सह + अनवस्थान अर्थात् दोनों का साथ साथ न रहना ।

विवरणकार के अनुसार यहाँ युष्मद् –अस्मद् में विरोध अत्यन्त विरुद्ध स्वभावत्व है अर्थात् दोनों एक दूसरे से विलक्षण है भिन्नस्वरूप वाले हैं । विवरणकार ने यहाँ विरुद्ध स्वभावत्व दो प्रकार का बताया है –

१.एक देश और काल में ( साथ साथ न रहना )। दोनों आत्मन् और अनात्मन् ,तम और प्रकाश के समान एक साथ एक देश और काल में नही रह सकते ।

२. पदार्थ के धर्मों का विरोध - दोनों आत्मन् और अनात्मन् परस्पर भिन्न धर्म क्रमशः चेतनत्व और अचेतनत्व रूप विरोधी धर्म वाले हैं अतः साथ –साथ नहीं रह सकते ।[289]

तो फिर विरुद्ध स्वभावत्व होने पर आत्मन् के रहने पर अनात्मन् की या प्रकाश के रहने पर अन्धकार की सत्ता कैसे रहती है ? अध्यास कैसे हो सकता है ? यह सिद्ध करने के लिए कि ऐसा नहीं होता कि प्रकाश के रहने पर अन्धकार की सत्ता नही रहती – इसको सिद्ध करने के लिए विवरणकार एक दृष्टान्त देते हैं कि किसी विस्तृत प्रदेश में पूर्ण प्रकाश पर यदि कोई आँख बन्द कर ले तो यह अन्धकार की उपलब्धि है । कान बन्द कर लेने वाले को अन्दर शब्द

---

[288] ननु तमो नाम् आलोकाभावमात्रमिति केचित्, रूपदर्शनाभावमात्रमित्यन्ये । पंचपादिका-विवरण, पूर्ववत, पृ० १४

[289] तत्र द्विविधो विरोधः द्विविधा च इतरेतभावानुपपत्तिः । कथम् ? द्वयोः पदार्थयोरेकदेशकालाभावः पदार्थधर्मो विरोधः । पंचपादिकाविवरण,पूर्ववत्, पृ १३.

सुनायी देता है ।प्रकाश से नष्ट हुआ अन्धकार अपने मूल कारण से उसी प्रकार उत्पन्न हो जाता है जैसे मेंघों के टकराने पर महाविद्युत उत्पन्न हो जाती है ।[290]

(चित्र सं ४.२) आत्म- अनात्म में तमःप्रकाशवत् विरूद्धता

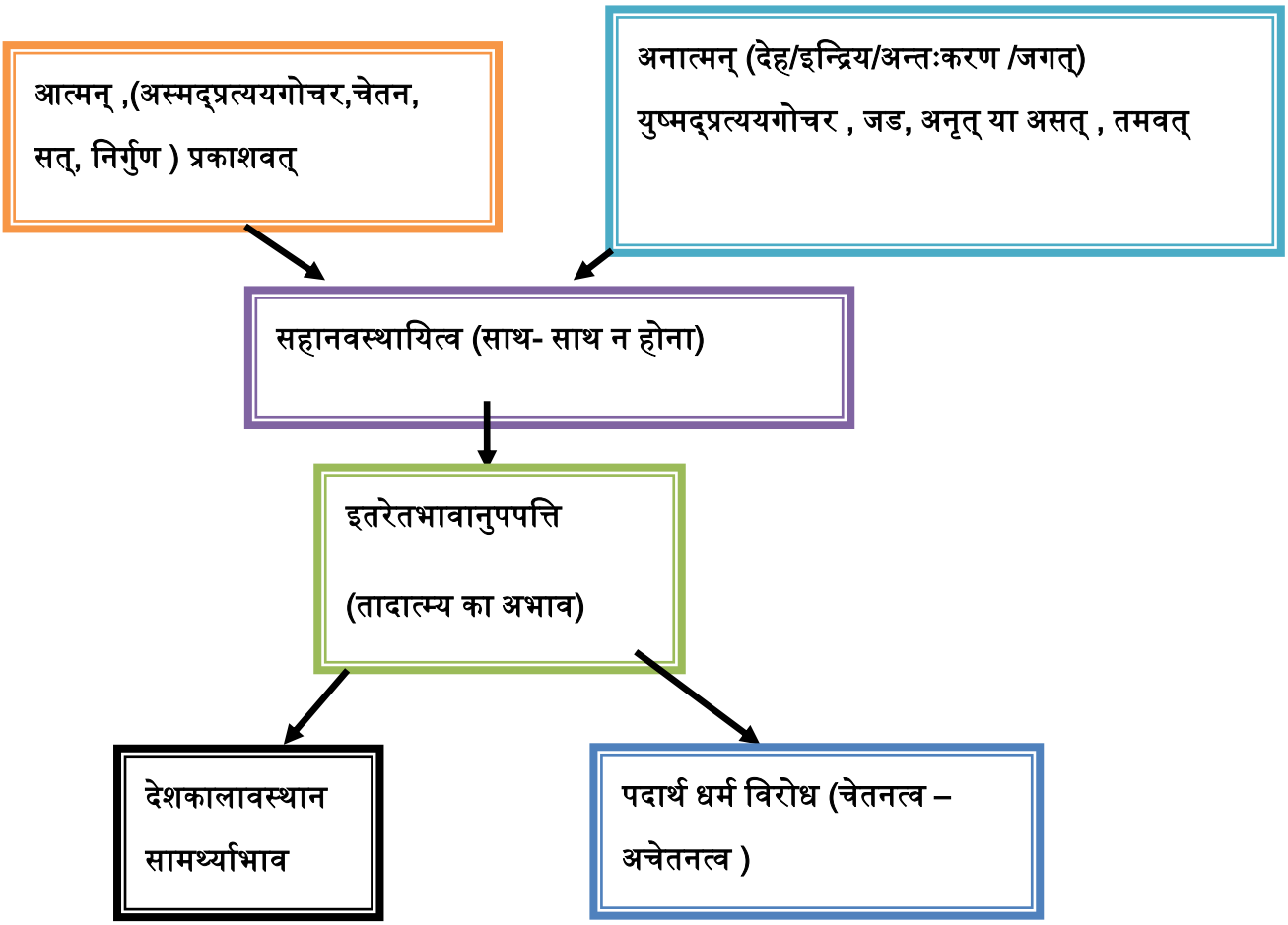


स्रोत- पंचपादिकाविवरण, अनु० किशोरीदास स्वामी, स्वामी रामतीर्थ मिशन, राजपुर, देहरादून, वि० सं० २०६०, पृ० ५८.

---

[290] बहुलालोकविततेऽपि देशे निमीलितनयनस्य गोलान्तरवर्तिततमोदर्शनमन्धकारोपलब्धिः पिहितकर्णपुटस्याऽऽन्तरशब्दोपल्ब्धि वन्न विरुध्यते । आलोकविनाशितस्य च तमसः पुनर्मूलकारणादेव झटिति महाविद्युतादिजन्मवत् जन्म सिद्धयति ।
पंचपादिकाविवरण, पूर्ववत्, पृ १४.

पंचपादिकाकार कहते हैं कि किसी मन्द प्रकाश वाले घर में वस्तु का रूप अन्धकार वाले भाग में दिखाई नही देती परन्तु प्रकाश वाले भाग में वस्तु का रुप दिखाई देता है। छाया तथा धूप दोनों परस्पर विरोधी हैं परन्तु आतप (छत्र) की छाया में न्यूनाधिकभाव धूप की गर्मी रहती है । इसका आशय यह है कि प्रकाश न होने पर वस्तु का स्वरूप नहीं है ऐसा कदापि नहीं है वह वस्तु तो है परन्तु दोनों का सहावस्थान नही है अर्थात् दोनों की साथ- साथ उपलब्धि नहीं हो पा रही है[291] ।इसी प्रकार दोनों चित् -अचित् परस्पर विरोधी होने पर भी दोनों का मिथुनीकरण होता है । अतः दोनों के मध्य विरुद्धता अत्यन्त विरुद्ध स्वभावत्व है न कि सहानवस्थान या निवर्त्यनिवर्तक भाव ।

## ४.१.५. मिथुनीकरण –नैसर्गिकत्व- लोकव्यवहार विचार

सम्पूर्ण लोकव्यवहार अचेतन (देह /इन्द्रिय/ अन्तःकरण) तथा चेतन (आत्मन्तत्त्व) के मिथुनी करण का परिणाम है जैसा भाष्यकार कहते हैं –

सत्यानृते मिथुनीकृत्य नैसर्गिकोऽयं लोकव्यव्हारः[292] अब यहाँ मिथुनीकृत्य,नैसर्गिक तथा लोकव्यवहार पद की सार्थकता पर चर्चा अपेक्षित है । अतः उन पर विचार किया जा रहा है–

**१.मिथुनीकृत्य-** शङ्कर का मन्तव्य है कि यह दोनों विषय-विषयि (आत्मन्- अनात्मन्) वस्तुतः कभी एक नही हो सकते , दोनों पृथक्- पृथक् हैं किन्तु दोनों का एक दूसरे पर आरोप कर देने पर उनमें युग्मभाव सम्भव हो रहा है ।मिथुनीकृत्य पद से इसे व्यक्त किया गया है । शाब्दिक व्युत्पत्ति है मिथुन शब्द + च्वि + ल्यप् । च्वि प्रत्यय का प्रयोग अतद्भूतभाव में होता है ।[293]

---

[291] दृश्यते हि मन्दप्रदीपे वेश्मनि अस्पष्टं रूपदर्शनं इतरत्र च स्पष्टम् । तेन ज्ञायते मन्दप्रदीपे वेश्मनि तमसो ईषदनुवृत्तिरिति । तथा छायायामपि औष्ण्यं तारत्म्येन उपलभ्यमानं आतपस्यापि तत्र अवस्थानं सूचयति । पंचपादिकाविवरण पृ० १२१.

[292] ब्रह्मसूत्रशांकरभाष्य,अनु० यतिवरभोलेबाबा, भारतीय विद्या प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथमभाग, पृ०१०,२००४

[293] अभूततदभावे इति वक्तव्यं । भामती, व्या०, स्वामी योगीन्द्रानन्द, चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी, २००५, पृ१६.

अर्थात् कोई वस्तु जो जैसी नहीं है उसे दूसरे रूप में सिद्ध होने का भाव प्रदर्शित करने के लिये च्वि प्रत्यय का प्रयोग यहाँ हुआ है। चित् और अचित् जो परस्पर भिन्न हैं और दोनों के आधार भिन्न हैं , दोनो में एक साथ रहने की योग्यता का अभाव है , उनमें युग्म भाव बन ही नही सकता। न बनने वाले भाव को बनता हुआ दिखलाने के लिए च्वि प्रत्यय का प्रयोग हुआ है । भामतीकार ने कहा है – "*सत्यं चिदात्मा, अनृतं बुद्धीन्द्रिय देहादि, ते द्वे धर्मिणि मिथुनीकृत्य युगलीकृत्येत्यर्थः । न च संवृत्तिपरमार्थसतोः पारमार्थिकं मिथुनमस्तीति अभूततदभावार्थस्य च्वेः प्रयोगः" ।*[294] जिसका तात्पर्य सहास्थायित्व की अपेक्षा भिन्नस्थिति दिखलाना ही है। अर्थात् इसका उद्देश्य है यह बतलाना कि जिन दोनों को एक साथ मिला दिया गया है, वे वस्तुतः भिन्न हैं।

समासेऽनञ्पूर्वे क्त्वो ल्यप् ( पा०७/१/३७) सूत्र से मिथुनीकृत्य में क्त्वा प्रत्यय के स्थान पर ल्यप् प्रत्यय हुआ है। इस सूत्र के अनुसार समास के पूर्वपद में नञ् से भिन्न कोई अन्य अव्यय स्थित हो तो उस समास में धातु से परे क्त्वा के स्थान पर ल्यप् आदेश हो जाता है। यहाँ मिथुन पद में नञ् अव्यय न होने से ल्यप् प्रत्यय हुआ है। यहाँ रत्नप्रभाकार ल्यप् प्रत्यय का प्रयोजन बताते हुए कहते हैं कि मिथुनीकृत्य से पूर्व प्रयुक्त पद लोकव्यवहार से दो प्रकार के अध्यास बताये है[295] –

१. अर्थाध्यास – "*लोक्यते मनुष्योऽहमित्यभिमन्यते इति लोकोऽर्थाध्यास*"जैसे मैं मनुष्य हूँ।

२ ज्ञानाध्यासो - *"तद्विषयो व्यवहारोभिमान इति ज्ञानाध्यासो दर्शितः"* ।लोकविषयक व्यवहार ही ज्ञानाध्यास है। जैसे मैं भोजन करता हुँ।

---

294 भामती, व्या०, स्वामी योगीन्द्रानन्द, चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी, २००५ पृ० १६

295 रत्नप्रभा,पूर्ववत्, पृ०२८

३. स्वरूपाध्यास - इसके अतिरिक्त आत्मन् का अनात्मन् में स्वरूप अध्यास है – *अनृतं युष्मदर्थ तस्य स्वरूपतोऽपि अध्यासात् तयोर्मिथुनीकरणमध्यास इति ।*[296]

ये तीनों भिन्न-भिन्न अध्यास हैं यहाँ पूर्व-पूर्व अध्यास उत्तरोत्तर अध्यास के प्रति संस्कार द्वारा कारण है अतः पूर्वकालिक हेतुत्व को बताने के लिये यहाँ ल्यप् का प्रयोग हुआ है -

*"तत्र पूर्वपूर्वाध्यासस्य उतरोत्तराध्यासं प्रति संस्कारद्वारा पूर्वकालत्वेन हेतुत्वद्योतनार्थं ल्यपः प्रयोगः" ।*[297]

**२.नैसर्गिक** – यह मिथुनीकरण का भाव नैसर्गिक है । सर्ग सृष्टि का नाम है । निःशेष रूप से सृष्टि का भाव ही नैसर्गिक है । सृष्टि प्रकृति अथवा माया से है । प्रकृति या माया अनादि है । अतः तज्जन्य सृष्टि का भाव भी अनादि है *"तदेव स्पष्टयति नैसर्गिक इति । प्रत्गात्मनि हेतुहेतुमद्भावेन अध्यासप्रवाहोऽनादिरित्यर्थः"।*[298] इस प्रकार अनादिकाल से यह आरोपणप्रकिया और लोकव्यहार चला आ रहा है । नैसर्गिक पद से यहाँ अनादित्व बतलाया है, वहीं यह भी प्रकट किया है कि सम्पूर्ण जगत् तथा तथा उसके समस्त व्यापार सर्वथा मिथ्या है, इनकी वास्तविक सत्ता नही है ।

**३.लोकव्यवहार** – आचार्यों ने इस पद की अनेक प्रकार से व्याख्या की है वाचस्पति मिश्र ने इसका सीधा अर्थ लोगों का क्रियाकलाप अथवा अभिधान लिया है *"लोकानां व्यवहारः स चायमहमिति व्यपदेशः"।* जबकि रत्नप्रभाकार में गोविन्दानन्द तथा न्यायनिर्णय में आनन्दगिरि ने इसका अर्थ लोक और लोक विषय अभिमान या व्यवहार किया है और उससे अर्थाध्यास और ज्ञानाध्यास सम्पन्न किया है। रत्नप्रभाकार कहते हैं - *यथा लोक्यते मनुष्योऽहमिति अभिमन्यत इति लोकः अर्थाध्यासः । तद्विषयो व्यव्हाराभिमान इति*

---

[296] रत्नप्रभा, पूर्ववत्, पृ०२८

[297] रत्नप्रभा, पूर्ववत्, पृ०२८

[298] रत्नप्रभा पृ०

*ज्ञानाध्यासो दर्शितः।*[299] आनन्दगिरि दोनों अध्यासों को एक- दूसरे का अपेक्षित बताकर अर्थ करते हैं -- *लोक्यते मनुष्योहमिति ज्ञायत इति ज्ञानोपसर्जनोऽर्थाध्यासो लोकविषयो व्यवहार इति अर्थोपसर्जनो ज्ञानाध्यासश्चोक्तः।*[300]

## ४.२. अध्यासभाष्य का प्रयोजन

महर्षि बादरायण प्रणीत प्रथम सूत्र है "*अथातो ब्रह्मजिज्ञासा"* यहाँ अथ शब्द आन्तर्यार्थक है अधिकारार्थ नहीं। अतः भाष्यकार आचार्य शंकर को भाष्य का प्रारम्भ यहीं से करना था। क्यों कि उन्होने युष्मदस्मप्रत्ययगोचरयोः तमःप्रकाशवद्विरुद्धास्वभावयोः इत्यादि वाक्यों से पहले अध्यास नामक सुप्रसिद्ध भाष्य का प्रणयन किया। *"प्रयोजनमनुद्दिश्य न मन्दोऽपि प्रवर्तते"* इत्यादि वचनानुसार विद्वानो में अग्रगण्य भाष्यकार भगवान् शंकर ने निश्चय ही किसी विशिष्ट प्रयोजन को दिखाने के लिए अध्यासभाष्य को उपस्थापित किया है। यहाँ भामतीकार और विवरणकार की दृष्टि से अध्यास- भाष्य के प्रयोजन का विश्लेषण किया जा रहा है।

### ४.२. १. भामतीकार का मत –

*'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा'* इस प्रथम सूत्र में वक्ष्यमाण ब्रह्म अजिज्ञास्य है क्यों कि इस जगत् में वही वस्तु जिज्ञास्य होती है जो सन्देहास्पद तथा सप्रयोजन हो। अविकल इन्द्रिय से दृष्ट पुरोवर्ती घट में किसी की जिज्ञासा नहीं हो सकती उसके असन्दिग्ध होने से तथा न ही काक की दन्तगवेषणा में किसी प्रेक्षावान् पुरुष की जिज्ञासा हो सकती है उसके निष्प्रयोजन होने से। यहाँ पूर्वपक्षी का मन्तव्य है कि ब्रह्म अजिज्ञास्य है क्योंकि वह पुरोवर्ती घट के समान असन्दिग्ध तथा काकदन्तगवेषणा के समान निष्प्रयोजन है। इसे 'व्यापकविरुद्धोपलब्धि' कहा

---

[299] रत्नप्रभा, पूर्ववत्, पृ०२८

[300] उद्धृत- ब्रह्मसूत्रशांकरभाष्य , व्या० हनुमान प्रसाद षट शास्त्री, चौखम्भा विध्याभवन वाराणसी २०१०, पृ० १३.

है । व्यापक = सन्देहास्पदत्व + सप्रयोजनत्व विरुद्ध = असन्देहास्पदत्व + निष्प्रयोजनत्व उपलब्धि = प्राप्ति अर्थात् ब्रह्म के विषय में यहाँ असन्देहास्पदत्व निष्प्रयोजनत्व प्राप्ति हुई है।

**ब्रह्म असन्दिग्ध है –**

इस प्रथम वक्तव्य की सिद्धि का हेतु - ब्रह्म असन्दिग्ध है क्यों कि "बृहत्वात् बृंहणत्वाद्वाऽऽत्मैव ब्रह्मेति गीयते " अर्थात् बृहत्(व्यापक) या बृंहण ( अपने शरीरादि की व्यापकता के कारण आत्मन् ही ब्रह्म है । यह आत्मन् कीट पतंगे से लेकर देव तथा ऋषियों आदि प्राणधारियों के देह, इन्द्रिय मन बुद्धि से भिन्न इदंकारास्पद बाह्य पदार्थों से भिन्न है । अहं इस अपरोक्ष अनुभव द्वारा अवगत होने कारण उन सभी से भिन्न है । कैसे? जैसे योऽहं बाल्यावस्थायां पितृपितामहादिकमनुभूतवान् स एवाहं वृद्धावस्थायां पुत्रपौत्रादिकं अनुभवामि[301] । यहाँ अवस्थाभेद होने पर शरीर परिवर्तित हुआ है परन्तु जो अनुभव कर रहा है वह आत्मन् अपरिवर्तित एक सा है । जैसे किसी धागे में पिरोए गये पुष्प एक दुसरे से व्यावृत्त होते हैं किन्तु धागा सर्वत्र एकता बनाए रखता है- *तस्माद्येषु व्यावर्तमानेषु यदनुवर्तते तत्तेभ्यो भिन्नं यथा कुसुमेंभ्यः सूत्रम्* [302] । अतःसर्वव्यापक होने के कारण तथा सभी प्राणीयों के अहंकारास्पद रूप में अवगत आत्मन् या ब्रह्म तो प्रसिद्ध है अतः वह असन्दिग्ध है अतः अजिज्ञास्य है ।

**ब्रह्म काकदन्तगवेषणावत् निष्प्रयोजन है –**

---

[301] भामती पृ० ४ .

[302] भामती पृ० ४ .

इसकी सिद्धि में पूर्वपक्ष तर्क प्रस्तुत करता है कि जीव में कर्तृत्वभोक्तृत्वादि रूप संसार की निवृत्ति रूप अपवर्ग ही वेदान्त का प्रयोजन है[303] । जीव में कर्तृत्वभोक्तृत्वादि संसार (अविद्याकृत होने से) अनादि चला आ रहा है [304] । उसी प्रकार आत्मज्ञान भी आत्मरूप होने से अनादि है । जब दो पदार्थ अनादिकाल से साथ-साथ चले आ रहे हैं तब उनमें उन नाश्य-नाशकभाव (ब्रह्म (आत्मन्) अज्ञान का नाशक है ।) कैसे हो सकता है ?[305] क्यों कि साथ-साथ रहने वाले पदार्थ में परस्पर विरोध नही माना गया है अतः ब्रह्म निष्प्रयोजन है । अतः अनुभूयमान देहादि से व्यतिरिक्त नित्यशुद्धबुधमुक्तस्वभाव आत्मन् () का प्रतिपादन सहस्त्र उपनिषद् भी नहीं कर सकते ? अतः उपनिषदों को उपचरितार्थक या गौणार्थक मानना उचित है – *न चाहमिति सर्वजनीनस्फुटतरानुभवसमर्थित आत्मन् देहेन्द्रियादिव्यतिरिक्तः शक्य उपनिषदां सहस्त्रैरपि तस्मादनुभवविरोधातदुपचरितार्था एवोपनिषद् इति युक्तमुत्पश्यामः [306]।*

**समाधान -**

अब भामतीकार इसका समाधान प्रस्तुत करते है कि –

**ब्रह्म सन्देहास्पद है** – उपर्युक्त शंकाद्वय के समाधान में ही अध्यासभाष्य का प्रयोजनत्व है । व्यावहारिक अनुभव में अहम्-अहम् इस प्रकार का ज्ञापक जो जीव है वह उसहृ विशुद्ध आत्मतत्त्व को द्योतित नही करता जो समस्त कर्तृत्वादि उपाधियों से रहित अनन्त, आनन्दरूप, चैतन्य, एकरस, उदासीन, एक, अद्वितीय रूप में श्रुतिस्मृतिपुराणों में वर्णित है[307]। व्यावहारिक अनुभव में 'अहम्-अहम्' इस प्रकार का जीव को जो ज्ञान होता है

---

[303] संसारनिवृत्तिरपवर्ग इह प्रयोजन विवक्षितम् । भामती पृ०४

[304] नैसर्गिकोऽयं लोकव्यव्हारः। ब० सू० शा० भा०

[305] स चेदयमनादिरनादिनात्मयाथात्म्यज्ञानेन सहानुवर्त्तते कुतोऽस्य निवृत्तिविरोधात्। भामती पृ० ५

[306] भामती पृ० ६.

[307] यद्यहमित्यनुभवे आत्मतत्वं प्रकाशेत न त्वेतदस्ति । तथा हि
समस्तोपाध्यनवच्छिन्नातानन्दचैतन्यैकरसमुदासीनमेकमद्वितीयमात्मतत्त्वं श्रुतिस्मृतिपुराणेषु गीयते । भामती पृ० ९

अध्यास के कारण है। अध्यास भेदाग्रह (भेद का अग्रहण) के कारण होता है।[308] आत्मन् और अनात्मन् में भेद का ज्ञान न होने से होता है। अतः अध्यासभाष्य को प्रस्तुत कर ब्रह्म के सन्देहास्पदत्व तथा आलोच्यत्व को सूचित किया गया है।

**ब्रह्म सप्रयोजन है -**और उपनिषदवाक्यों का जो अप्रामाण्य बताया गया वह भी अनुचित है क्योकि अप्रामाण्य तीन प्रकार का होता है – १. विपरीतार्थ बोधकत्व २.अबोधकत्व ३. सन्दिग्धार्थ बोधकत्व – "अप्रामाण्यं त्रिधा भिन्नं मिथ्यात्वाज्ञानसंशयै :" (श्लो० वा०)[309] उपनिषद विपरीत अर्थ के बोधक नहीं क्योंकि कि उपनिषद् वेद के भाग हैं अतः पौरुषेय दोष भ्रम, प्रमाद, आलस्य, करणपाटव और लोभादि दोषों से रहित है। अबोधकत्वरूप अप्रामाण्य इसलिए नहीं क्यों कि उपनिषद् रूप वैदिक वाक्य अपने समुचित अर्थ के बोधक है। वेद में प्रामाण्य स्वतः सिद्ध है अतः सन्दिग्धार्थ बोधकत्वरूप अप्रामाण्य भी उपनिषदों में सम्भव नहीं अतः उपनिषदों को अन्य प्रत्यक्षादि प्रमाण से प्रमाणित होने की अपेक्षा (प्रमितावनपेक्षा) नही है [310]। "*ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति*"[311] इत्यादि वेदान्त वाक्य या उपनिषदवाक्य ही कहते हैं मुक्ति में ब्रह्मज्ञान का प्रयोजन है अतः इससे ब्रह्म का सप्रयोजनत्व सूचित होता। ब्रह्म के सन्देहास्पदत्व तथा सप्रयोजनत्व को प्रस्तुत करने के लिए ही अध्यासभाष्य उपस्थापित किया गया है ऐसा भामतीकार का मत है।[312]

---

[308] अध्यासो भेदाग्रहेण व्याप्तं। भामती पृ०२३

[309] भामती पृ० १०.

[310] तस्यापौरुषेयतया निरस्तसमस्तदोषाशंङ्कस्य बोधकतया च स्वतःसिद्धप्रमाणभावस्य स्वकार्य्ये प्रमितावनपेक्षित्वात्। भामती पृ० १०.

[311] मुण्डकोपनिषद् ३/२/९ ईशादि नौ उपनिषद् , गीताप्रेस गोरखपुर, वि०सं० २०६५.

[312] उपचरितार्था एवोपनिषद् इत्याशयवानाशङ्कपरिहरति युष्मदस्मद्प्रत्यगोचरयोरिति। भामती पृ० ६

## ४.२.२. विवरणकार का मत

अनुबन्ध चतुष्टय के ज्ञान के पश्चात् ही शास्त्र में प्रवृत्ति होती है । अनुबन्ध से आशय है "*अनु स्वज्ञानादनन्तरं बध्नन्ति शास्त्रे ग्रन्थे वा आसज्जयन्ति ये ते अनुबन्धा:"*। वेदान्त में अधिकारी कौन यह आद्य ब्रह्मसूत्र में बताया है "अथातो ब्रह्मजिज्ञासा" । यहाँ साधनचतुष्टयसम्पन्न को अधिकारी बताया गया है । जीवब्रह्मैक्यरूप विषय तथा अज्ञाननिवृत्तिरूप प्रयोजन यहाँ अर्थतः सूचित हुआ है जिसे शब्दतः सूचित करने की अपेक्षा है । यही भाष्यकार द्वारा अध्यास भाष्य को उपस्थापित करने का प्रयोजन है । यहाँ विवरणकार अध्यास भाष्य के प्रयोजन को बताते हुए कहते हैं कि '*युष्मदस्मत्प्रत्ययगोचरयोः'* से लेकर *'अहमिदं ममेदं'* तक का भाष्य तथा *"अस्यानर्थहेतोः प्रहाणायाऽऽत्मैकत्वविद्यापतिपत्तये सर्वे वेदान्ता आरभ्यन्ते"* पर्यन्त भाष्य के साथ वेदान्त के विषय और प्रयोजन की सिद्धि करता है ।विवरणकार प्रयोजन बताते हुए कहते हैं –*"शास्त्रस्यारम्भनिमित्तविषयप्रयोजनवत्त्वप्रत्यनीकस्य बन्धस्याविद्यात्मकत्वं निर्दिशत् भाष्यद्वयं विषयप्रयोजने प्रतिपादयतीति"*। [313]

"अस्यानर्थहेतोः प्रहाणायाऽऽत्मैकत्वविद्यापतिपत्तये सर्वेवेदान्ता आरभ्यन्ते" के द्वारा अनर्थहेतोः प्रहाणाय से जीवब्रह्मैक्यगत अज्ञान निवृत्ति रूप प्रयोजन सिद्ध होता है तथा आत्मैक्त्वविद्यापतिपत्तये से जीवब्रह्मैक्य रूप विषय का ज्ञान होता है । अतः विषय और प्रयोजन को बताना इस उत्तरभाष्य का प्रयोजन है । परन्तु युष्मदस्मत् रूप पूर्वभाष्य का क्या प्रयोजन है ? इस विषय में विवरणकार का मत है कि विषय और प्रयोजन बिना अध्यास के सिद्ध नही होगा, क्यों कि जीवब्रह्मैक्य में प्रवृत्ति क्यों हो? क्योकि देहेन्द्रियादि का आत्मन् में अध्यास कर लोकव्यवहार प्रचलित है । जिससे देहेन्द्रियान्तःकरणावच्छिन्न जीव तथा अपरिच्छिन्न सर्वज्ञ आत्मन् में भेद की आपत्ति हो जाती है । भेद के होने पर जीवब्रह्मैक्य (विषय) की सिद्धि कैसे होगी? अतः इस भेद के कारण अध्यास या अविद्या जानना आवश्यक

[313] पंचपादिकाविवरण पृ० ९

है क्योंकि अज्ञान को जाने बिना तदैक्यगत अज्ञान की निवृत्ति कैसे होगी ? अतः युष्मदस्मत्प्रत्ययगोचरयोः से लेकर अहमिदं ममेंदं तक के पूर्वभाष्य का प्रयोजन अध्यास का सांगोपांग वर्णन कर ज्ञान से उसका निवर्तकत्व प्रतिपादित करना है । विवरणकार अध्यासभाष्य के प्रयोजन को बताते हुए लिखते है *–विषयादिसिद्धिहेतोरध्यासस्य सिद्धिहेतुभूतानि लक्षणसम्भावनासद्भावप्रमाणानि प्रतिपादयता भाष्यकारेण भाष्येण सह लक्षणादिभिः स्वार्थमध्यासं साधयित्वा विषयप्रयोजने साधयति ।*[314]

### ४.२.३ अन्य मत -

रत्नप्रभाकार का मत भी विवरणकार के समान ही प्रतीत होता है । वे कहते हैं कि "ज्ञान से ही मुक्ति होती है" ऐसा मन में विचार कर ब्रह्मसूत्र पर भाष्य करने की इच्छा से भाष्यकार भगवान् श्रीशंकराचार्य के वचन "विचार करना चाहिए" (अथातो ब्रह्मजिज्ञासा) यह जो जिज्ञासा पद का श्रौत अर्थ है वह तब तक नही बन सकता जब तक विषय और प्रयोजन का ज्ञान न हो । अतः आदि सूत्र से अर्थतः सूचित विषय व प्रयोजन की सिद्धि के लिए अध्यास के आक्षेप और समाधान भाष्य को उपस्थापित करते हैं – *सिद्धान्ते ज्ञानादेवमुक्तिरिति विवेकः ।इति सर्वं मनसि निधाय ब्रह्मसूत्रव्यातुकामो भगवान भाष्यकारः सूत्रेण विचारकर्तव्यतारूप श्रौतार्थानुपपत्या अर्थात् सूत्रितं विषयप्रयोजनवत्त्वमुपोद्धातत्वात् तत्सिद्धिहेत्वध्यासाक्षेपसमाधानभाष्याभ्यां प्रथमं वर्णयति ।*[315]

## ४.३. अध्यास का लक्षण एवं स्वरूप

---

[314] पंचपादिकाविवरण पृ० १०

[315] रत्नप्रभा पृ० १२

अधिकृत्य आस्ते आधारमाश्रित्य तिष्ठति इस अर्थ में अधि पूर्वक+आस् धातु+ अच्" प्रत्यय करने पर अध्यास पद की निष्पत्ति होती है। एक अन्य व्युत्पत्ति के अनुसार अधि उपसर्गपूर्वक क्षेपणार्थक असु धातु से घञ् प्रत्यय "भावे घञ्"[316] करने पर अर्थ होता है विक्षेप जो वेदान्त के अनुसार त्रिगुणात्मक ज्ञान विरोधी अज्ञान या माया का कार्य है।अध्यास- निवृत्ति[317] अद्वैत-वेदान्त का प्रयोजन है। अतः इसके लक्षण की अनिवार्यता हेतु भाष्यकार लक्षण प्रस्तुत करते हैं-

१. स्मृतिरूपः परत्र पूर्वदृष्टावभासः [318]। स्मृतिरूपमिव रूप यस्य अर्थात् असन्निहित विषयतत्व[319], परत्र पर शब्द से सप्तम्यर्थ में त्रल् प्रत्यय करने पर अर्थ होता है अपने से भिन्न अधिकरण में। पूर्वदृष्टावभासः से आशय है पूर्वदृष्ट का संस्कारवश अवभास या बाधित ज्ञान अर्थात् जो स्मृतिरूप तथा पूर्वदृष्ट सर्प या अनात्मन् (देह/इन्द्रिय/अन्तःकरण/जगत् /युष्मद्प्रत्ययगोचर /जड /अनृत् /असत्) का संस्कारवश परत्र अर्थात् रज्जु या आत्मन् (अस्मद्प्रत्ययगोचर ,चेतन, सत् निर्गुण) में जो अवभास है वह अध्यास है। अवभास से आशय अव- बाधित + भास- ज्ञान अर्थात् यह ज्ञान कालान्तर में रज्जुज्ञान या आत्मज्ञान से बाधित हो जाता है। इन पदों पर भामती मत के अनुसार विस्तृत चर्चा की जायेगी।

२.अतस्मिन् तदबुद्धिः " अध्यासो नाम अतस्मिन तद् बुद्धिरित्यवोचाम्"[320] अर्थात् जो वह नही है अर्थात् सर्प या अनात्मन्, रज्जु या आत्मन् नहीं है तथापि रज्जु या आत्मन् में सर्प तथा अनात्मन् वाला ज्ञान अध्यास है।

**(चित्र सं ४.३) आचार्य शंकर के अनुसार अध्यास का लक्षण**

---

[316] अष्टाध्यायी ३/३/१८.

[317] तदैक्यप्रमेयगताज्ञाननिवृत्ति स्वस्वरूपानन्दावामिश्च। वेदान्तसार (विद्वन्मनोरञ्जनीटीका सहित) व्या० बदरीनारायणशुक्ल, मोतीलाल बनारसीदास, नईदिल्ली, २००६, पृ० २३.

[318] ब० सू० शा० भा०, पृ० ३२.

[319] असन्निहितविषयत्व वा स्मृतिरूपत्वं। भामती पृ०

[320] ब० सू० शा० भा० पृ० ५४

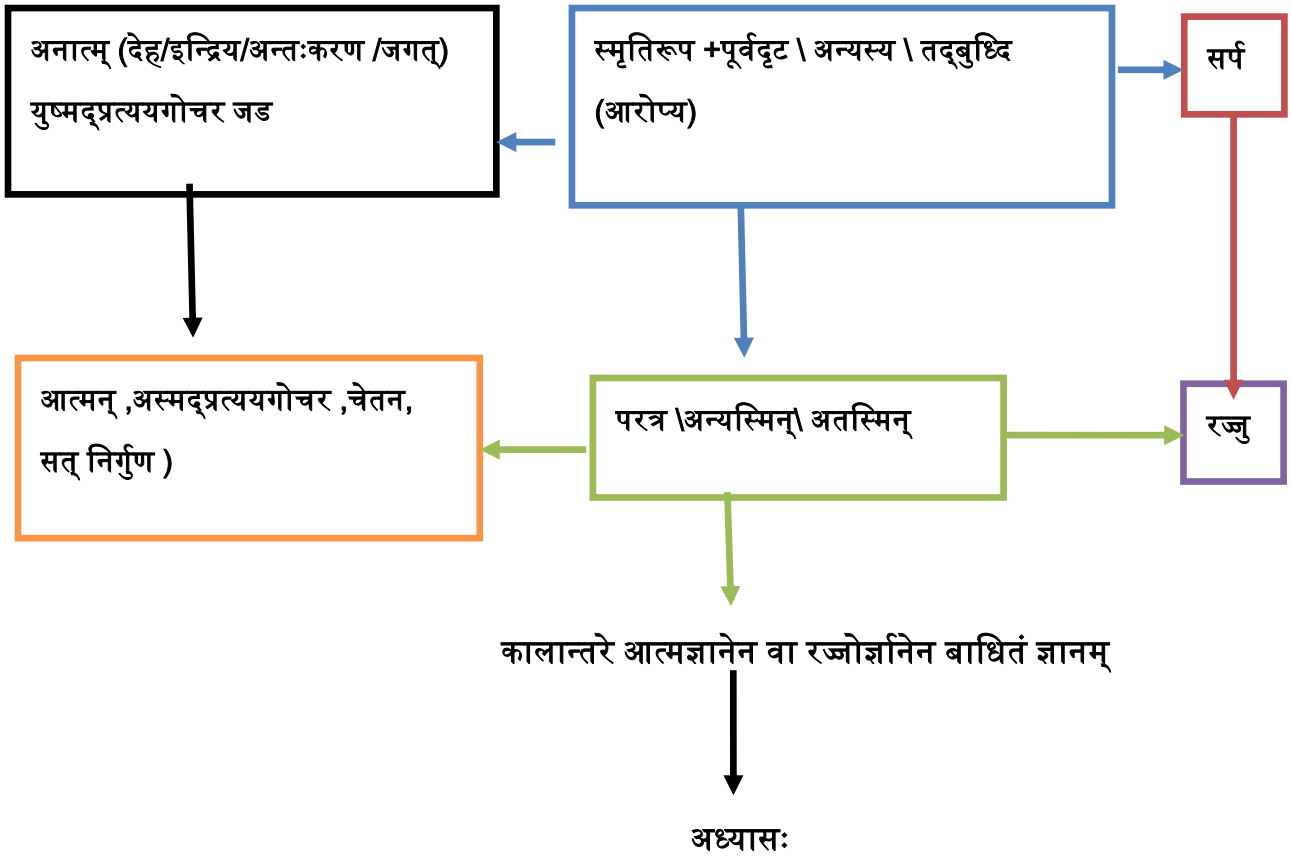


**विशेष** - समस्त परीक्षकों के मत को परीक्षण कर आचार्य ने एक और लक्षण दिया है जिसमें सभी मत समाहित हो जाते हैं – ३.अन्यस्य अन्य धर्मावभासता इति न व्यभिचरति । भामतीकार ने इसे 'स्मृतिरूपः परत्र पूर्वदृष्टावभासः' इस लक्षण का संक्षिप्ताभिधान मात्र कहा है [321]। अर्थात् उस दीर्घ लक्षण को पुनः अल्प शब्दों से परिभाषित किया है । यह मत वेदान्त को भी अभिमत है । भामतीकार ने इस लक्षण को अनिर्वचनीय ख्याति के प्रदर्शन में उपादेय बताया है तथा अनिर्वचनीय ख्याति कहकर इसे सर्वतन्त्र-अविरुद्ध अर्थ कहा है । भामतीकार कहते हैं- *अन्यस्य अन्यधर्मकल्पना अनृतता सा अनिर्वचनीयतेत्यधस्तादुपपादितम् । तेन सर्वेषामेंव परीक्षकाणां अन्यस्य अन्यधर्मकल्पनानिर्वचनीयताऽवश्यम्भाविनीत्यनीर्वचनीयता सर्वतन्त्रविरूद्धोऽर्थः इत्यर्थः ।*[322]

---

[321] अध्यासो नाम अतस्मिन तद् बुद्धिरित्यवोचाम् इति स्मृतिरूपः परत्र पूर्वदृष्टावभासः इत्यस्य संक्षेपाभिधानं । भामती पृ० ५०

[322] भामती पृ० ३३

## ४.३.१. भामतीकार का मत

"कोऽयं अध्यास "? यहाँ वस्तुतः किम् के दो अर्थ होते हैं १आक्षेप २. जिज्ञासा । परन्तु पूर्वपक्षी ने किम् से प्रश्न किया है उसका भामतीकार आक्षेप अर्थ लेते हैं अर्थात् अध्यास क्या है? अर्थात् वह कोई वस्तु नही है या अध्यास की सत्ता नहीं है या अध्यास उपपन्न नही हो सकता। भामतीकार कहते हैं – *समाधाता लोकसिद्धमध्यासलक्षणं आचक्षाण एवाक्षेपं प्रतिक्षपति* [323] अर्थात् आक्षेप का समाधान करने वाला अध्यास का लोकप्रसिद्ध अर्थ प्रस्तुत करता है ।

भामतीकार ने अध्यास का लक्षण "अवभास" करते हैं तथा स्मृतिरूप, परत्र , पूर्वदृष्ट को इसका उपव्याख्यान या उपलक्षण मानते हैं - *अवसन्नोऽवमतो वा भासोऽवभासः। प्रत्यान्तर बाधश्चास्यावसादोऽवमानो वा ।* [324] अवभास से क्या आशय है? इस विषय में भामतीकार बताते है अवसन्न या अवमत ज्ञान अवभास है । अर्थात् वह ज्ञान जो अन्य ज्ञान से बाधित होता है उसे अवसन्न या अवमत ज्ञान कहते हैं । यहाँ अवभास को अवसन्न या अवसाद तथा अवमत ज्ञान कहा है अर्थात् अधिष्ठानत्व के साक्षात्कार ज्ञान होने पर बाध होना अवसाद है और यौक्तिक ज्ञान के आधार पर ज्ञान का तिरस्कार होना अवमान कहलाता है । जैसे "शुक्तौ इदं रजतम्" यह ज्ञान "नेदं रजतम् शुक्तिरियम्" इस ज्ञान के द्वारा बाधित (अवसाद) या तिरस्कृत (अवमत ) हो जाता है । इसे अवभासरूप अध्यास को भामतीकार ने मिथ्या कहते हैं ।

अब इस मिथ्या ज्ञान के उपव्याख्यानरूप पदों की सार्थकता दिखाते हैं –

पूर्वदृष्टावभासः इस पद की सार्थकता के विषय में कहते हैं कि यहाँ षष्ठी तत्पुरुष है – पूर्वदृष्टस्य अवभासः । मिथ्या ज्ञान तब तक नहीं हो सकता जब तक आरोप के विषय

---

323 भामती पृ० १८.

324 भामती पृ० १८.

(अधिष्ठान) तथा आरोपणीय वस्तु( रजतादि पदार्थ) की उपस्थिति ना हो यहाँ पूर्वदृष्ट पद के द्वारा अनृत(असत्य) आरोपणीय वस्तु (रजतादि) की उपस्थिति को बताया है । उस आरोपणीय वस्तु की केवल दृष्टता(प्रतिति) अपेक्षित है पारमार्थिक सत्ता नहीं अतैव दृष्ट पद की सार्थकता है । भ्रमस्थल में केवल दर्शन की वर्तमानकालता अपेक्षित है । यद्यपि पूर्वदृष्ट रजतादि पदार्थ की प्रातिभासिक सत्ता है व्यावहारिक नहीं तथापि आरोपणीयत्व रूप से असत् होने के कारण अनृत या असत्य कहा जाता है । अध्यास या भ्रम के विषय की अनृत विरुद्ध सत्यता को प्रकट करने के लिये परत्र ( अपने से भिन्न अधिकरण में जो प्रातिभासिक रूप से सत् है ।) का प्रयोग किया गया है ।इस प्रकार यहाँ सत्य और अनृत का युग्म प्रस्तुत किया गया है ।

यदि अध्यास का लक्षण "परत्र दृष्टावभासः" इतना ही किया जाये तो इस लक्षण से प्रत्यभिज्ञा में अतिव्याप्ति हो जाती है जैसे स्वस्तिमति नाम की गोत्व व्यक्ति में पूर्वदृष्ट गोत्व जाति का परत्र कालाक्षी नाम की गो व्यक्ति में अवभास ( सत्य ज्ञान ) होता है । इसी प्रकार पाटलिपुत्र में पूर्वदृष्ट देवदत्त का वाराणसी में अवभास ( सत्य ज्ञान ) होता है । अवभास पद स्वयं सत्यज्ञान में प्रयुक्त होता है - नीलस्यावभासः पीतस्यावभासः [325]

इस प्रकार गोत्वादि जाति एवं देवदत्तादि व्यक्तियों के प्रत्यभिज्ञा की सत्य अनुभूति में प्रसक्त अतिव्याप्ति को दूर करने लिए भाष्यकार ने स्मृतिरूप: पद का उपपादन किया है । प्रशंसायां रूपम् इस सूत्र के द्वारा स्मृति शब्द से 'रुपम्' प्रत्यय करके जो स्मृतिरूप शब्द निष्पन्न होता है वह यहाँ अनुप्रयुक्त है क्यों कि उससे स्मृति की प्रशस्ततो अर्थ की प्रतीति होती है किन्तु यहाँ केवल उसका अंश मात्र विवक्षित है , अतः भामतीकार बहुव्रीहि समास के स्मृतिरूप शब्द का अर्थ बताते हुए कहते हैं – स्मृतेः रूपमिव रूपमस्य । इस प्रकार निष्पन्न स्मृतिरूप पद द्वारा विषय के असन्निहितत्व (विषय के निकट ना होना)को बताया है – असन्निहितविषयत्वं

[325] अवभासपदं समीचीनेऽपि प्रत्यये प्रसिध्दं नीलस्यावभासः पीतस्यावभासः इत्यत भामती पृ० २९.

स्मृतिरूपत्वं । जैसे शुक्तौ इदं रजतम् आदि भ्रम स्थल पर शुक्ति में आरोपणीय वस्तु रजत असन्निहित (सन्निकृष्ट नहीं) है । तभी तो शुक्ति में रजत का ज्ञान असत् है । जबकि इसके विपरीत प्रत्यभिज्ञा में सन्निहितविषयत्व होता है ।जैसे- देवदत्त में देवदत्त की ही प्रत्यभिज्ञा । अतः स्मृतिरूपत्व पद प्रत्यभिज्ञा में अतिव्याप्ति वारणार्थ प्रयुक्त हुआ है[326]। स्मृतिरूपत्व पद के कारण इस लक्षण की कही अव्याप्ति भी नही है क्यों कि सभी भ्रम प्रकारो में इसका सम्यक अन्वय हो जाता है –

१.स्वाप्रज्ञान- स्वपन देखते समय स्मर्यमान माता –पिता आदि में निद्रा दोष के कारण उनकी असन्निधानता का भान नही हो पाता और पूर्व जागृत अवस्था में दृष्ट सन्निहित देशकाल वृत्तित्व का समारोप होकर इयं में माता, अयं में पिता ऐसी प्रतीति होती है ।

२. पीतः शंखः – ऐसा भ्रम पीलिया रोग वाले व्यक्ति को होता है । उसके नैत्रों से निकली हुई शुभ्र रश्मियों के साथ पीलिया का कारणीभूत कुपित पित्त द्रव्य वैसे ही चिपक जाता है जैसे चाँदी पर सोने का रंग चढा हो । उस पित्त द्रव्य को साथ चिपकाए नेत्र रश्मिया बाहर निकलकर श्वेत शंख पर फैल जाती है । अतिसामीप्य दोष के कारण पित्त द्रव्य का ग्रहण नही हो पाता और पीलिया रोग के कारण शंखगत शुक्ल वर्ण का भान नहीं हो पाता, पित्तगत पीत वर्ण और शंख के वास्तविक असम्बन्ध का ग्रहण नही पाता । जैसे पीतं स्वर्णपिण्डं, पीतं बिल्वफलम् आदि स्थलो पर गुण और गुणी द्रव्य का असम्बन्धाग्रह होता है वैसे ही पीतः शंखः इत्यादि भ्रम स्थलों पर पूर्वदृष्त पीतत्व और तपनीयपिण्डत्वादि के समानाधिकरण्य का पीतत्व और शंखत्व आदि में आरोप करके पीलिया वाला व्यक्ति व्यवहार करने लगता है पीतः शंखः ।

३. प्रतिबिम्ब विभ्रम स्थलों में – द्रष्टा पुरुष के सम्मुखस्थ दर्पण या जलादि स्वच्छ पदार्थों पर उसकी नेत्र रश्मियाँ जाती हैं और दर्पण तल पर प्रसृत सूर्य के प्रखर प्रकाश से टकराकर द्रष्टा

---

[326] असन्निहितविषयत्वं स्मृतिरूपत्वं सन्निहितविषयत्वं च प्रत्यभिज्ञानं समीचीनमिति नातिव्याप्ति । भामती पृ.२०.

के मुख की ओर ही मुड जाती है और मुख का ही पूर्णतया ग्रहण करती है। रश्मियो के तोड-मोड या सीधा ना हो पाने के कारण मुख की ग्रीवास्थता और अनभिमुखता का भान नही हो पाता। फलतः द्रष्टा के द्वारा दर्पणादि में पूर्वदृष्ट दर्पणादि का देश और आभिमुख्य अपने मुख में आरोप करके व्यवहार किया जाता है- अहं दर्पणे मुखं पश्यामि। इसी प्रकार द्विचन्द्र भ्रम ,दिग्भ्रम,गन्धर्व नगर वंशोरग ( बांस के दण्ड में सर्प का भ्रम ) आदि भ्रमों में भी यथा सम्भव यह लक्षण घटा लेना चाहिये- *एतेन द्विचन्द्रदिङ्मोहालातचक्रगन्धर्वनगरवंशोरगादिविभ्रमेष्वपि यथासम्भवं लक्षणं योजनीयम्।* [327]

इस प्रकार स्मृतिरूप परत्र पूर्वदृष्टावभासः पर भामतीकार अपना मत उपस्थापित करते हैं।

## ४.३.२. विवरणकार का मत

विवरणकार ने अध्यास को अनिर्वचनीय रूप में प्रस्तुत किया है। इस विषय में कहते हैं कि रज्जु –सर्प भ्रम में प्रतीत होने वाला सर्प मिथ्या है एवं अनिर्वचनीय है तथा इसका कारन अविद्या या माया है। जब भ्रम दूर हो जाता है तो तब हमें इस बात की अनुभूति होने लगती कि अभी तक हमें जिस भ्रम की प्रतीति हो रही है वह मिथ्या एवं भ्रम ही था –*"सत्यस्य वस्तुनो मिथ्यावस्तुसम्भवोऽवभासमानः माया मिथ्या अनिर्वचनीयख्यातिः अध्यास एवायं इत्यर्थः"।* [328]

यद्यपि विवरणकार ने अध्यास के लक्षण पर अधिक चर्चा न कर अध्यास कारण अविद्या पर तथा अनिर्वचनीय ख्याति पर अधिक चर्चा भी है। विवरणकार ने अध्यास के दो लक्षणों का संक्षेप में व्याख्यान किया है –

---

[327] भामती पृ० २१

[328] पंचपादिका विवरण पृ०,६२

१.*स्मर्यमाणसदृशः अन्यात्मनावभासमानो अन्योऽर्थो अध्यासः*[329]- स्मर्यमाण के सदृश अन्य रूप से प्रतीयमान अन्य अर्थ अध्यास है। जैसे *शुक्तौ इदं रजतम्*। शुक्ति स्मर्यमाण रजत के समान प्रतीत हो रही है इसे "अध्यास" कहते हैं।

२. *परस्य परात्मना अवभासोऽध्यासः* [330]- अन्य का अन्य के द्वारा अवभास या प्रतीत होना। जैसे रज्जु का सर्प के रूप में अवभास होना।

## ४.३.३.रत्नप्रभाकार का मत

शंकराचार्योक्त अध्यासलक्षण व्याख्यान प्रसंग में रत्नप्रभाकर का भामतीकार से कुछ वैमत्य दिखाई देता है।भामतीकार के मत में अवभास ही अध्यास है और स्मृतिरूप- परत्र-पूर्वदृष्ट पद उसके उपव्याख्यान के लिए है यह उपर्युक्त है। रत्नप्रभाकार के मत में 'परत्रावभासः' यह अध्यास का लक्षण है स्मृतिरूप--पूर्वदृष्ट पद उसके उपव्याख्यान के लिए है तथा परत्र से आशय अयोग्य अधिकरण से है – "*अत्र परत्र अवभास इत्येव लक्षणम् । शिष्टपदद्वयं तदुपपादनार्थम् तस्य अयोग्यमधिकरणं परत्र पदार्थः*"।[331]अवभास पद का अर्थ इनके अनुसार अवभासित होना प्रतीत होना है। बाधित ज्ञान नही जो भामतीकार को अभिमत है- "*अवभास्यते इति अवभासः प्रतीयमानरजतादिवस्तु इत्यर्थः*"।[332] अतः अयोग्य अधिकरण में भासित होना ही अध्यास है। जैसे रजत का सीप में भासित होना यह अध्यास है क्योंकि रजत का योग्य अधिकरण रजत स्वयं है जो कि अपने अयोग्य अधिकरण सीप में भासित हो रहा है।

---

329 पंचपादिका विवरण पृ०, ३६

330 पंचपादिका विवरण पृ०,३४

331 रत्नप्रभा पृ० ३२

332 रत्नप्रभा पृ० ३२

यहाँ रत्नप्रभाकार अध्यास का एक विशिष्ट लक्षण देते हैं – "*एकावच्छेदेन स्वसंसृज्यमाने स्वत्यन्ताभावति अवभास्यत्वमध्यस्त्वमित्यर्थः*"।[333] एक ही अवच्छेद से एक ही काल में जिसमें जिसके संसर्ग का अवभास मालुम हो पड़े किन्तु रहे अत्यन्ताभाव, उस अधिकरण में अवभासित होने वाला पदार्थ अध्यास कहलाता है। जैसे सीप में इदन्तता के अवच्छेद से एक ही काल में रजत के संसर्ग का अवभास होता है और उसका (रजत) सीप में अत्यन्ताभाव भी है।

इस लक्षण में एकावच्छेदेन यह पद संयोग में अतिव्याप्ति वारणार्थ प्रयुक्त हुआ है जैसे 'वृक्षे कपि संयोगवान्' यहाँ एक ही काल में वृक्ष में शाखा पर बन्दर के संयोग का अवभास है तथा मूल में अत्यन्ताभाव। अतः इस अतिव्याप्ति के लिए एकावच्छेदेन पद दिया है क्यों कि वृक्ष में शाखा पर बन्दर का संयोग है जबकि मूल में उसका अत्यन्ताभाव। यहाँ शाखा और मूल दो भिन्न अवच्छेदक है अतः अतिव्याप्ति नही होगी।

प्रथमतः घट-अभाव युक्तभूतल में पीछे से लाए घट का भान होता है इसलिए घट में अतिव्याप्ति वारणार्थ स्वसंसृज्यमाने पद दिया है इससे जिसका एक ही काल में भाव और एक ही काल में अभाव हो वह वस्तु अपेक्षित है। पृथिवी में अवभासित होने वाली गन्ध में अतिव्याप्ति वारणार्थ स्वात्यन्ताभावति पद दिया है अन्यथा गगनाभावयुक्त भूमि में गन्ध भासता है अतः गन्ध का अत्यन्ताभाव मिथ्या हो जाएगा। अत्यन्ताभाव में स्व (गन्ध)विशेषण जोड देने पर स्व (गन्ध) का अत्यन्ताभाव भूमि में नही है। इससे गन्ध में अतिव्याप्ति नही होती है। शुक्ति इदन्तत्व के अवच्छेद से एक काल में रजत के संसर्ग का अवभास का एवं रजत का अत्यन्ताभाव दोनों रहते हैं। अतः इस लक्षण में अव्याप्ति दोष नही है। यदि यह कहा जाए कि अध्यास का लक्षण तो हुआ परन्तु इसमें असम्भव दोष है क्यों कि सीप में चाँदी की सामग्री ही नही है तो रजत संसर्ग कहाँ से आ जाएगा ? इस प्रकार

---

[333] रत्नप्रभा पृ० ३२

मानने पर अन्यथाख्याति से उत्तर की अपेक्षा होगी ।अन्यथाख्याति के वारणार्थ यहाँ पद प्रस्तुत हुआ स्मृतिरूप अर्थात् स्मर्यमाणसदृश । स्मर्यते इति स्मृतिः सत्य रजतादि तस्य रूपमिव रूपमस्य इति स्मृतिरूपः वा स्मर्यमाणसदृशः शुक्तिः ।[334] अर्थात् जो रजतादि की प्रतीति हुई क्यों कि शुक्ति स्मर्यमाणसदृश / स्मृतिरूप (रजत के सदश) है । यहाँ जो रजतादि आरोप्य को स्मृयमाणसदृश कहा है क्यों कि संस्कारजन्य हैं तो दोनों में अर्थात् रजत(स्मर्यमाण) और स्मृति क्या भेद है ? तो आरोप की भी स्मृति संज्ञा होनी चाहिए । परन्तु ऐसा नही है क्यों कि स्मृति केवल संस्कार जन्य होती है जबकि आरोप अविद्या आदि दोष,सम्प्रयोग और संस्कार तीनों से जन्य है ।इस प्रकार रत्नप्रभाकार ने अध्यास का विस्तृत विश्लेषण किया है ।

## ४.३.४ अन्यमत

विवेकचूडामणि में आचार्य शंकर ने बहुत काव्यात्मक शैली में अध्यास के स्वरूप को बताया है। पुरुष का अनात्मनवस्तुओं में अहम इस आत्मबुद्धि (अध्यास ) का होना ही जन्म मरण रूपी क्लेशों की प्राप्ति कराने वाला अज्ञान से प्राप्त हुआ बन्ध है जिसके कारण यह जीव इस असत् शरीर को सत्य समझकर इसमें आत्मबुद्धि हो जाने से तन्तुओं से रेशम के कीट के समान इसका विषयों द्वारा पोषण मार्जन और रक्षण करता है –

*अत्रानात्मन्यहमिति मतिर्बन्धः एषोऽस्य पुसः*

*प्राप्तोऽज्ञानाज्जननमरणक्लेशसम्पातहेतुः ।*

*यैनेवायं वपुरिदमसत्सत्यमित्यात्मबुद्ध्या*

*पुष्यत्युक्षत्यवति विषयैस्तन्तुभिः कोशकृद्वत् ॥*[335]

---

[334] रत्नप्रभा पृ० ३८

[335] विवेकचूडामणि श्लो० १३९, अनु० मुनिलाल, गीताप्रेस गोरखपुर , वि० स०२०६५ पृ० ३८

पद्मपादाचार्य के अनुसार अतद्रूप में तदरूप के अवभास ही अध्यास है –

*अध्यासो नाम अतद्रूप तद्रूपावभासः स मिथ्येति भवितुं युक्तमिति ।*[336]

कल्पतरू में अमलानन्द ने कहा है – "*असन्निहितस्य परत्र प्रतीतिरध्यास "* | [337]

वेदान्तसारकार सदानन्दयोगीन्द्र अध्यास को अध्यारोप कहकर वस्तु सच्चिदानन्द ब्रह्म पर अवस्तु अज्ञानादि सकल जड समूह के आरोप रूप में परिभाषित करते हैं –

*असर्पभूतायां रज्जौ सर्परोपवद् वस्तुन्यवस्त्वारोपोऽध्यासः। वस्तु सच्चिदानन्दानन्ताद्वयं ब्रह्म अज्ञानादिसकलजडसमूहोऽवस्तु ।* [338]

## ४.४. अध्यास के भेद

आचार्य शंकर ने यद्यपि अध्यास के भेदों के विषय में शब्दतः उल्लेख नहीं किया परन्तु अध्यास पर चर्चा के करते हुए उसके भेदों को सूचित किया है - *पुत्रभार्यादिषु सकलेषु विकलेषु वा अहमेंव सकलो विकलः वेति बाह्यधर्मानात्मन्यध्यवस्यति । एवमहप्रत्ययिनमशेष स्वप्रचारसाक्षिणि प्रत्यगात्मन्यध्यवस्यति* आदि को प्रस्तुत कर अध्यास के भेदों की ओर इंगित किया है जिन्हें लक्ष्य कर टीकाकारों ने अध्यास के भेदों पर चर्चा की है । जिनका मत अधोलिखित प्रस्तुत किया जा रहा है ।

### ४.४. १. भामतीकार का मत

---

336 पंचपादिका, पृ० ६७.

337 कल्पतरु , ब्रह्मसूत्रशांकरभाष्य ( भामती,**कल्पतरु**, परिमल टीकाओं सहित), सम्पा० कन्हैया लाल जोशी, परिमल पब्लिकेशन, नई दिल्ली, १९८२.

338 वेदान्तसार पृ० ४५.

भामतीकार ने अध्यास के दो भेदों पर चर्चा की है – १.अहंकाराध्यास २. ममकाराध्यास इन्ही को क्रमशः धर्म्यध्यास (धर्मी अध्यास) तथा धर्माध्यास कहा है। इनमें जो द्वितीय भेद है धर्माध्यास या ममकाराध्यास यह समस्त अनर्थों का हेतु है – *"तत्राहमिति धर्मितादात्म्याध्यासमात्रं ममेंत्यनुत्पादितधर्माध्यासं नार्थहेतुरिति धर्माध्यासमेंव ममकारं साक्षादशेषानर्थसंसारकारणमुदाहरण प्रपञ्चेनाह पुत्रभार्यादिषु"* ।[339] इसलिए धर्माध्यास या ममकाराध्यास को पहले वर्णित किया है कि जब आत्मन् में देह / इन्द्रिय/ अन्तःकरण आदि बाह्य पदार्थों का तादात्म्याध्यास करके ममेंदं शरीरं, मम इन्द्रियाणि, स्थूलोऽहं, कृशोऽहं, अन्धोऽहं, मम कामना, मम विचिकित्सा इत्यादि व्यवहार करने लगता है। देह के धर्मभूत पुत्रभार्यादि के स्वामित्व एवं कृशकत्वादि का आरोप करके व्यवहार करता है। मम पत्नी, मम पुत्रः इनके सकल विकल होनेपर ही मै सकल विकल हुँ। अर्थात् पुत्रभार्यादि के सफलता तथा विफलता होने पर अपने स्वामित्व के सफल/ विफल होने पर अपने आप सफल विफल मानता है।इस प्रकार पुत्रादि बाह्य पदार्थों के धर्म स्वामित्व परम्परा से आत्मन् में संचारित और अध्यस्त होते रहते हैं – *स्वस्य खलु साकल्यात् स्वामीश्वरः सकलः सम्पूर्णो भवति। तथा स्वस्य वैकल्येन स्वाम्यवैकल्यात् स्वामीश्वरो विकलोऽसम्पूर्णो भवतीति। बाह्यधर्माः ये वैकल्यादयः स्वाम्यप्रणालिकया सञ्चारिताः शरीरे तानात्मन्यध्यस्यतीत्यर्थः ।* [340] इसी प्रकार वह इन्द्रिय और अन्तःकरण के धर्मों का अपने ऊपर आरोप करता है। यहाँ अनात्मन् के धर्मों का आत्मन् में अध्यास होता है।

जो प्रथम भेद अहंकाराध्यास या धर्मिन् का अध्यास है उसे भामतीकार बताते हुए कहते हैं अहंकाराध्यास या धर्म्यध्यास (धर्मि -अध्यास) में पहले अहं-प्रत्ययी अन्तःकरण का( जिसमें अहं इस प्रकार की वृत्ति जागृत हो गयी है) आत्मन् में अध्यास होता है जो (आत्मन्) अन्तः करण की वृत्तियों का स्वगतचैतन्य (ज्ञान) और तटस्थता के कारण साक्षी है। इस प्रकार

---

[339] भामती पृ० ५०

[340] भामती पृ० ५०

अन्तःकरण से तादात्म्यापन्न होकर प्रत्यगात्मन् में कर्तृत्व भोक्तृत्व उपपादित होता है - "*एवमहप्रत्ययिनमशेषस्वप्रचारसाक्षिणि प्रत्यगात्मानमध्यस्य ।अहंप्रत्ययो वृत्तिर्यस्मिन्नन्तःकरणादौ सोऽहम्प्रत्ययी तं स्वप्रचारसाक्षिणि इति चैतन्योदासीनताभ्यां अन्तः करण प्रचारसाक्षिणि प्रत्यगात्मनि अध्यस्य कर्तृत्वभोक्तृत्वे उपपादिते*" ।[341]

इसके पश्चात "*तं च प्रत्यगात्मानं तदविपर्येणान्तःरणादिष्वध्यवस्यति*" । अन्तःकरणगत अचैतन्य (जडता) के विपरीत जो चैतन्य है उस चैतन्य से उपलक्षित आत्मन् अर्थात् प्रत्यगात्मन्[342] का अन्तःकरण में अध्यास होता है । इसके बाद जीव अपने आप को "अहं कर्ता अहं भोक्ता" का व्यवहार करने लगता है । अहम्प्रत्यय होने से यह अहंकाराध्यास कहलाता है तथा आत्मन् में कर्तृत्व - भोक्तृत्व के पश्चात् ही वह देह-इन्द्रिय तथा बाह्य धर्मादि का अध्यास रूप धर्माध्यास करता है अतः धर्मिन् के अध्यास (अहंकाराध्यास) को धर्माध्यास (ममकाराध्यास) का कारण बताया है ।

## ४.४.२. रत्नप्रभाकार का मत-

रत्नप्रभाकार गोविन्दाचार्य ने अध्यास के पाँच भेदों पर चर्चा की है । यहाँ "अहमिदं ममेंदं नैसर्गिकोऽयं लोकव्यव्हारः " पर टीका करते हुए दो भेद बताए गये हैं –

१. अर्थाध्यास – "*लोक्यते मनुष्योऽहमित्यभिन्यते इति लोको अर्थाध्यासः*"।[343] अर्थात् मै मनुष्य हुँ । ऐसे अभिमान के विषय को लोग जो कहते हैं वह अर्थाध्यास है ।

---

[341] भामती पृ० ५१

[342] प्रतीपं विपरीतं अञ्चति जानाति आत्मानं इति प्रत्यगात्मा जीवः। जब शुद्ध चैतन्य अन्तः करण से उपलक्षित होकर आत्मन् के विपरीत अपने को कर्ता भोक्ता जानता तब वह चैतन्य प्रत्यगात्मा कहलाता है । भामती पृ०३३.

[343] रत्नप्रभा पृ० २६

२. ज्ञानाध्यास – *"तद्विषयोव्यवहारोऽ भिमान इति ज्ञानाध्यासो दर्शितः"*[344] । लोकविषयक व्यवहार या अभिमान लोकव्यवहार इसे ही ज्ञानाध्यास कहते हैं ।

३. अन्योन्याध्यास- गोविन्दाचार्य का मत है कि *"अयोन्यस्मिन् अन्योन्यात्मकाम्"* से भाष्यकार ने अन्योन्याध्यास पर चर्चा की है । जाड्य तथा चैतन्यादि धर्मों के क्रम से अहंकार और आत्मन् धर्मी है ।आपस में अत्यन्त भिन्न उन दोनों धर्मियों का परस्पर भेद ज्ञान न होने से परस्पर में परस्पर का तादात्म्य और परस्पर के धर्मों का विनिमय होने से अध्यास करके लोकव्यवहार होता है । इसे अन्योन्याध्यास कहते हैं - *"जाड्य चैतन्यादिधर्माणां धर्मिणौ अहंकारात्मनौ तयोरत्यन्तं भिन्नयोः इतरेतरभेदाग्रहेण अन्योन्यस्मिन् अन्योन्यतादात्म्यमन्योन्यधर्मांश्च व्यत्यासेन अद्यस्य लोकव्यवहार इति योजना"।*[345]

इसके बाद अहमिदं ममेंदं पर टीका करते हुए दो अन्य भेद बताते हैं -

४. तादात्म्याध्यास – अत्र अहमिदं इत्यनेन " मनुष्योऽहम् " तादात्म्याध्यासो दर्शितः । सत्ता के एक होने पर भी दो वस्तुओं का परस्पर तादाम्य है । "मैं मनुष्य हुँ" इसमें मैं (आत्मन्) तथा मनुष्य में ऐक्य रूप अंश का भान होता है । यह तादात्म्याध्यास है । *"सत्तैक्ये सति मिथो भेदस्तादात्म्यम् । तत्र मनुष्योऽहं इति एक्यांश भानम् "*।[346]

---

[344] रत्नप्रभा पृ० २६

[345] रत्नप्रभा पृ० २६

[346] रत्नप्रभा पृ० २६

५. संसर्गाध्यास – *"ममेंदं इति संसर्गाध्यास । ममेंदं इति भेदांश रूप संसर्गभानमिति"*[347]मेंरा यह" में भेदांश रूप संसर्ग का ज्ञान भान होता है इसलिए यह संसर्गाध्यास है ।

### ४.४.३ अन्य मत

सर्वदर्शनकार "माधवाचार्य " के अनुसार अध्यास दो प्रकार का होता है –

*स चाध्यासो द्विविधः अर्थाध्यासो ज्ञानाध्यासश्चेति ।* एक वस्तु का दूसरी वस्तु पर आरोप ही अर्थाध्यास है और जब मिथ्याज्ञान का आत्मन् पर आरोप होता है तब वह ज्ञानाध्यास हो जाता हो जाता है । अन्यथा प्रतीति के तीन कारण है – प्रमाण, दोष और संस्कार । इन्हीं से अध्यास होता है – *प्रमाण दोष संस्कार जन्यान्यस्य परात्मता*

*तदीश्वाध्यास इति हि द्वयमिष्टं मनिषिभिः ॥* [348]

"वाचस्पत्यम् "में श्री तारानाथ तर्कवाचस्पति ने बताया है कि अन्यथाभूत वस्तु में अन्यथारूप से ज्ञान होना ही भ्रम है । यह भ्रम दो प्रकार का है – १. विपर्यय २. सशंय – भ्रम च तद्धति तत्प्रकारज्ञानम् । तद्भावयतितत्प्रकारं ज्ञानं यथा शुक्तौ " इदं रजतम्" इति ज्ञानम् । भ्रमो द्विविधः विपर्यासः संशयश्च ।[349]

## ४.५.अध्यास का कारण एवं चिदात्मा में उसकी संभावना

### ४.५.१. अध्यास का कारण

---

[347] रत्नप्रभा पृ० ३१.

[348] सर्वदर्शनसंग्रह, व्या० उमाशंकर शर्मा "ऋषि", चौखम्भा प्रकाशन, वाराणसी २००८, पृ०८०.

[349] वाचस्पत्यम् पृ० ७८.

अध्यास के लक्षण और भेदों तथा स्वरूप पर पूर्ण चर्चा हो जाने पर उसके कारण पर चर्चा अत्यन्त आवश्यक है। यद्यपि अध्यास का मूल कारण अविद्या है यह भाष्यकार ने स्पष्ठ कर दिया है मिथ्याज्ञाननिमित्तः सत्यानृतेमिथुनीकृत्य अहमिदं ममेंदमिति नैसर्गिकोऽयं लोकव्यव्हारः ।[350] इस अविद्या या माया के अध्यास के प्रति उपादानकारणत्व तथा निमित्तकारणत्व का व्याख्यान टीकाकारों ने अपने मत प्रदर्शनपूर्वक किया है। कुछ टीकाकार जैसे विवरणकार ने अविद्या को अध्यास के उपादान कारण तथा प्रमातृदोष – सादृश्यज्ञान – पूर्वानुभूतसंस्कार आदि को निमित्त कारण माना है । यद्यपि अध्यास के कारण लेकर टीकाकारों में कोई विशिष्ट मतभेद नहीं है तथापि यहाँ टीकाकारों का मत स्वतन्त्र रूप से प्रस्तुत किया जा रहा है जिससे अध्यास के कारण को लेकर एक स्पष्ट एवं भ्रमरहित दृष्टि प्राप्त हो सके।

## ४.५.१.१ अविद्या

अविद्या (माया) या अज्ञान ही इस समस्त आध्यासिक जगत की निर्मात्री शक्ति है। अध्यास के प्रति इस अविद्या को लेकर टीकाकारों व विद्वानों ने किस प्रकार अपने विचार व्यक्त किये इस दृष्टि से उनके मत को प्रस्तुत किया जा रहा है –

### ४.५.१.१.१ पंचपादिकाकार का मत

भाष्यकारप्रोक्त 'मिथ्याज्ञाननिमित्तः' पर व्याख्या करते हुए पंचपादिकाकार कहते हैं कि "*मिथ्या च तदज्ञानं मिथ्याज्ञानम् । मिथ्येति अनिर्वचनीयता उच्यते । अज्ञानमिति च जडात्मिका अविद्याशक्तिः ज्ञानपर्युदासेन उच्यते । तन्निमित्तः तदुपादानः इत्यर्थः*" ।[351]

---

[350] ब० सू० शा० भा०, पृ० २६.

[351] पं० पां० पृ०, १४६.

पंचपादिकाकार के अनुसार अविद्या ही अध्यास का निमित्त व उपादान दोनों कारण हैं । मिथ्या जो अज्ञान है वही मिथ्याज्ञान है (कर्मधारय समास)। यहाँ मिथ्या शब्द का अर्थ अनिर्वचनीयता है और अज्ञान से आशय जडात्मिका अविद्याशक्ति है जो ज्ञान से पर्युदासित ( बाधित) होने के कारण तद्भिन्न व तद्सदृश है । यहाँ एक शंका है कि अविद्यारूपी निमित्त से होने वाले व्यवहार को नैसर्गिक क्यों माना जाए ? इसका उत्तर यह है कि यह बाह्य पदार्थों तथा आध्यात्मिक बुध्यादि जितनी वस्तुएं है उनके स्वभाव की सत्ता का अनुसरण करने वाली है अर्थात् उनकी सत्ता का ज्ञान कराने वाली है - *अवश्यं एषा अविद्याशक्तिः बाह्यात्मिकेषु वस्तुषु तत्स्वरूपमात्रानुबन्धिनी अभ्युपगन्तव्या*[352]।

## ४.५.१.१.२ विवरणकार का मत

विवरणकार के अनुसार अविद्या अध्यास का उपादान कारण है ।अब अविद्या अध्यास का उपादान कारण कैसे है ? इस शंका का समाधान करते हुए प्रकाशात्मयति कहते हैं अविद्या एवं अध्यास में परस्पर अन्वय- व्यतिरेकि सम्बन्ध है "अविद्या के रहने पर अध्यास होता है तथा न रहने पर नहीं होता जैसे सुषुप्ति में अध्यास नहीं होता और जाग्रत अवस्था में होता है क्योंकि जाग्रत अवस्था में अविद्या है – *"ननु कथं मिथ्याऽज्ञानमध्यासस्योपादानम् ? तस्मिन् सति अध्यासस्य उदयात् असति चानुदयादिति ब्रूमः"*।[353]

यदि विषय-इन्द्रिय आदि में दोष को अध्यास के प्रति उपादान कारण माना जाऐ तो यहाँ विवरणकार का मानना है कि विषय -इन्द्रिय आदि में दोष निमित्त कारण है जो उपादान की अपेक्षा से अज्ञान के करणरूप में प्रविष्ट हो गया है – *"ननु क्लृप्तं विषयेन्द्रियादिदोषः कारणमिति ? सत्यम्, निमित्त तु तत् । उपादानापेक्षयामज्ञानमनुप्राविशति"*। [354] आत्मन् या

---

[352] पं० पा०, पृ० १४६.

[353] पं० पा० वि०, पृ० १९.

[354] पं० पा० वि०, पृ० १९.

अन्तःकरण भी तो अध्यास का उपादान कारण होता सकता है इसका उत्तर देते हुए प्रकाशात्मयति कहते हैं कि आत्मन् निर्विकार है तथा अन्तःकरण को इन्द्रियों कि अपेक्षा है। अतः उपादान कारण केवल अविद्या ही हो सकती है- "*नन्वात्मा अन्तःकरण वा भ्रान्तिज्ञानोपादानं भविष्यति ? न आत्मनोऽपरिणामित्वात् । अन्तःकरणस्य च इन्द्रियसंयोगादिसापेक्षत्वात्*"।[355]

अतः विवरणकार के अनुसार अविद्या अध्यास का उपादान कारण है तथा विषय इन्द्रियादि में दोष निमित्त कारण है।

### ४.५.१.१.३ भामतीकार का मत

*"तमेतमेवं लक्षणं पण्डिता अविद्येति मन्यन्ते"* [356] इस भाष्यांश पर टीका करते हुए भामतीकार ने अविद्या को अध्यास का मूल कारण बताते हुए कहते हैं कि आत्मन्- अनात्मन् रूप अध्यास सर्वानर्थरूप है शुक्तिरजतादि भ्रम नहीं इस आत्म- अनात्मन् रूप अध्यास मूल कारण अविद्या है। अतः उसका उच्छेद अत्यन्त आवश्यक है उसका उच्छेद करने के लिए ही वेदान्तादि शास्त्र प्रवृत्त हुए हैं।उसके स्वरूप का जब तक ज्ञान नहीं हो जाता तब तक उसका उच्छेद नहीं किया जा सकता। अतः वही विशेषतः व्युत्पादनीय है सभी अध्यास नहीं – "*अविद्या हि सर्वानर्थबीजमिति श्रुतिस्मृतिपुराणादिषु प्रसिद्धम्, तदुच्छेदाय वेदान्ताः प्रवृत्ता इति वक्षति। प्रत्यगात्मन्यनात्माध्यास एव सर्वानर्थहेतुर्न पुनः रजतादिविभ्रमा इति स एवाविद्या, तत्स्वरूपं चाविज्ञातं न शक्यमुच्छेतुमिति तदेव व्युत्पाद्यं नाध्यासमात्रम्*"।[357]

### ४.५.१.१.४ रत्नप्रभाकार का मत

---

[355] पं० पा० वि०, पृ० १९.

[356] ब० सू० शा० भा०, पृ० ४२.

[357] भा०, पृ० ४१.

रत्नप्रभाकार के अनुसार "मिथ्याज्ञाननिमित्तः" शब्द से अध्यास का उपादान कारण अविद्या को बताया गया है। अध्यास अविद्या का कार्य होने से अविद्या ही कहा जाता है – *अध्यासम् अविद्याकार्यत्वाद् अविद्या इति मन्यन्ते इत्यर्थः ।* [358] मिथ्या-अज्ञान जिसका निमित्त कारण हो उसका नाम मिथ्याज्ञाननिमित्त है। अज्ञान यद्यपि उपादान कारण है तो भी उसे निमित्त कारण कहा है इसका कारण यह है कि स्फुरण होते हुए आत्मतत्त्व का आवरण करने से मिथ्याज्ञान दोषरूप है , अहंकाराध्यास करने वाले ईश्वर की उपाधि है और यही मिथ्याज्ञान संस्कार,काल और कर्म आदि निमित्त रूप में परिणत होकर अध्यास का निमित्त होता है यह निमित्त पद से दिखलाया गया है – "*अध्यासस्य उपादानमाह – मिथ्याज्ञाननिमित्त इति । मिथ्या च तदज्ञानं मिथ्या ज्ञानं तत् उपादानं यस्य स तन्निमित्ततदुपादानक इत्यर्थः । अज्ञानस्य उपादानत्वेऽपि संस्फुरदात्मतत्त्वावरकतया दोषत्वेन अहंकाराध्यासकर्तुः ईश्वरस्य उपाधित्वेन संस्कार-काल- कर्मादिनिमित्तपरिणामित्वेन च निमित्तत्वमिति द्योतयितुं निमित्तपदम्" ।*[359]

## ४.५.१.२ भेदाग्रह : भामतीकार का मत

आत्मन् जो चेतन है का अनात्मन् पदार्थ से भेद का अग्रहण होना या शुक्ति रजतादि भ्रमस्थलों पर रजत एवं शुक्ति में भेद का ग्रहण न होना भी अध्यास का कारण है । भामतीकार भेदाग्रह को अध्यास का कारण बतलाते हुए कहते हैं कि अध्यास व्याप्य है और भेदाग्रह व्यापक। अभिप्राय यह है कि "यत्र यत्राध्यासः तत्र तत्र भेदाग्रहः । भेद का ग्रहण होना ही भेदाग्रह का निवर्तक है। अतः व्यापक ( भेद का अग्रहण) की निवृत्ति हो जाने पर

---

358 र० प्र०, पृ० ४२.

359 र० प्र०, पृ० २९

व्याप्य (अध्यास) की भी निवृत्ति हो जाती है - *अध्यासो भेदाग्रहेण व्याप्तस्तदविरूद्धश्चेहास्ति भेदग्रहः स भेदाग्रहं निवर्तयंस्तद्व्याप्तमध्यासमपि निवर्यतीति ।* [360]

## ४.५.१.३ अन्य कारण – सादृश्यज्ञान -प्रमातृदोष- पूर्वानुभूत संस्कार : वेदान्तपरिभाषाकार का मत

वेदान्तपरिभाषाकार ने सादृश्यज्ञान -प्रमातृदोष- पूर्वानुभूत संस्कार को भी अविद्या के साथ प्रमुख कारणों में स्थान दिया है । वेदान्तपरिभाषाकार के अनुसार काच-कामालादि (दृष्टि मन्दता) नेत्र दोषों से दूषित नेत्र वाले व्यक्ति के चक्षुरिन्द्रिय का सामने रहने वाले द्रव्य के साथ संयोग सन्निकर्ष हो जाने पर इदमाकार ( इस प्रकार) चाकचिक्याकार अन्तःकरण वृत्ति उत्पन्न होती है । अर्थात् सीप के चमकीलेपन (चाकचिक्य) के कारण अन्तःकरण में वह चमकीलापन प्रतीत होता है। इस वृत्ति में इदम् से अवच्छिन्न हुआ चैतन्य प्रतिबिम्बित होता है। इस प्रकार उत्पन्न हुई वृत्ति में चैतन्य के प्रतिबिम्बित होने पर तडागोदकन्याय से वृत्ति बाहर पडती है जिससे इदमवच्छिन्न चैतन्य= प्रमेंयचैतन्य, वृत्यवच्छिन्न चैतन्य= प्रमाणचैतन्य अन्तःकरणावच्छिन्न = प्रमातृचैतन्य यह त्रिविध चैतन्य अभिन्न हो जाता है

तडागोदकन्याय से आशय है जैसे तालाब का पानी नाली से बहकर खेत या क्यारी के समान त्रिभुज –चतुर्भूजादि रूप धारण कर लेता है उसी प्रकार वृत्ति के विषय पर पडने पर वह विषयाकारित हो जाती है जिससे प्रमेंयचैतन्य - प्रमाणचैतन्य –प्रमातृचैतन्य में ऐक्य हो जाता है । इस प्रकार त्रिविध चैतन्य के एक हो जाने पर अविद्या रजताकार और रजतज्ञानाकार से परिणत होती है ।

चाकचिक्यादि रूप सादृश्य के दर्शन से जागृत होने वाले रजतादिसंस्काररूप सामग्री का ही उस अविद्या को साहाय्य रहता है और काच कमलादि दोष भी उस अविद्या में होते हैंजिससे

---

[360] भा० पृ० ९.

वह रजत रूप अर्थाकार से और रजतज्ञानाकार से परिणत होती है - *प्रमातृचैतन्यन्याभिन्नविषयचैतन्यनिष्ठा शुक्तित्वप्रकारिकाऽविद्या चाकचिक्यादिसादृश्य सन्दर्शन समुदबोधित रजतसंस्कार सध्रीचीना काचादिदोषमवहिता रजतरूपार्थकारेणरजतज्ञानाभासाकारेण च परिणमते।* [361]

[361] वेदान्तपरिभाषा, व्या० गजानन शास्त्री मुसलगांवकर, चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी, २००६ पृ० १०५.

## (चित्र सं ४.४) अध्यास के कारण एवं प्रक्रिया

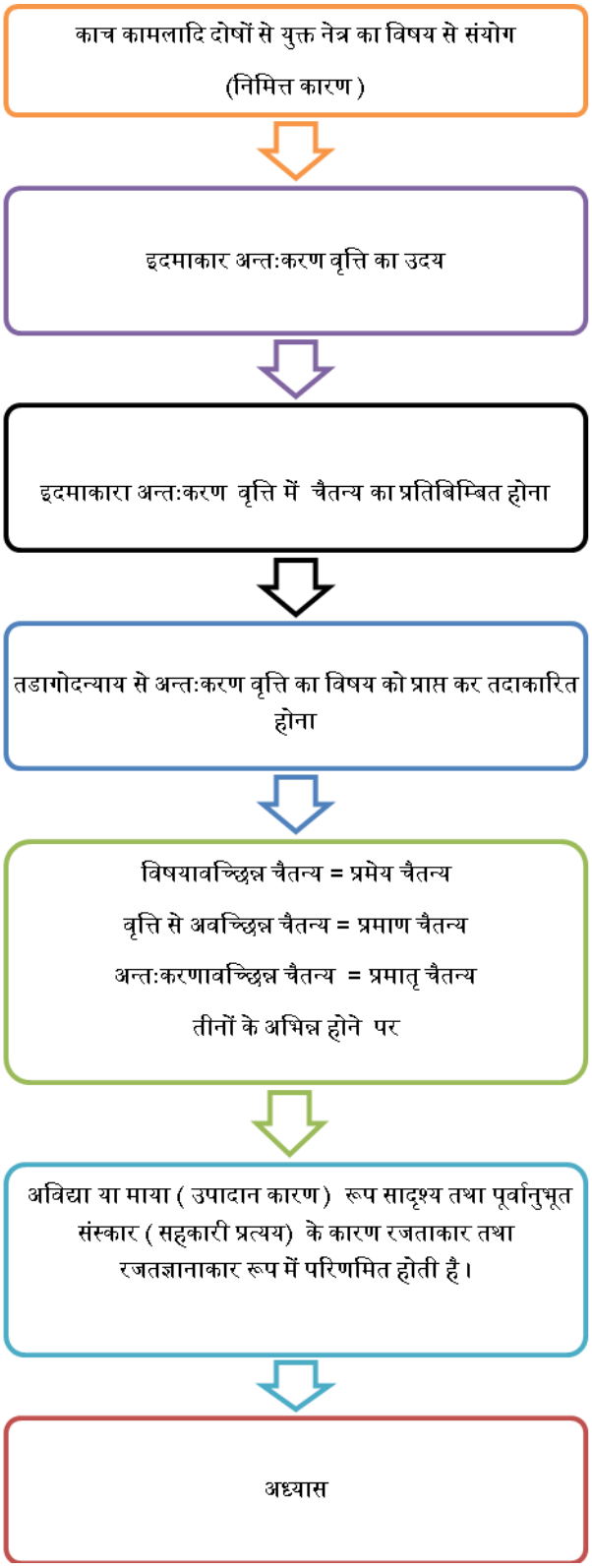


स्रोत – वेदान्तपरिभाषा : धर्मराजाध्वरीन्द्र, व्या० गजाननशास्त्री मुसलगाँवकर, चौखम्भा संस्कृत प्रतिष्ठान, बनारस, पृ० १२८, २००५.

इस प्रकार अविद्या या माया या अज्ञान ही समस्त आध्यासिक जगत् एवं कार्य की उत्पादिका शक्ति है जो त्रिगुणात्मिका और भावरूपा होने पर भी इसके विषय में "यह ऐसी ही है या यह माया है" ऐसा नहीं कहा जा सकता है इसलिए उसके लिए "यत्किञ्चित्" कहा गया है इसका अर्थ नृसिंहाश्रम ने "अघटितघटनापटीयस्" किया है अर्थात् जिससे अघटित घटनाओं के घटित हो जाने की सम्भावना रहे - त्रिगुणात्मकभावरूपत्वे पिण्डीकृत्य प्रदर्शयितुं न शक्यते इत्याह यत्किञ्चिदिति । किमत्यघटितघटनापटीयसी इत्यर्थ: ।[362] माया दो शक्तियाँ है १. आवरण २. विक्षेप आवरण शक्ति से जहाँ माया सत्स्वरूप को आच्छादित करती है वहीं दूसरी ओर अपनी विक्षेप शक्ति के माध्यम से इस आध्यासिक जगत् को प्रकट करती है । संक्षेपशारीरककार सर्वज्ञात्ममुनि के अनुसार आत्मविषयक और आत्माश्रयी अज्ञान आत्मन् ज्योतिर्मय रूप को आच्छादित करके अपनी विभ्रम शक्ति के द्वारा आत्मतत्त्व को जीव, ईश्वर और जगत् की आकृतियों में विभक्त कर देता है –

*आच्छाद्या विक्षिपति संस्फुरदात्मरूपम्, जीवेश्वरस्य जगदाकृतिभिर्मृषैव ।*

*अज्ञानमावरणविभ्रमशक्तियोगात्, आत्मत्वमात्रविषयाश्रयता बलेन ।।* [363]

## ४.५.२.चिदात्मा में अध्यास की संभावना

अध्यास भाष्य में चिदात्मा में अध्यास की असम्भावना रूपी शंका उठाई गयी है कि अविषय प्रत्यगात्मा में विषय ( देह, इन्द्रिय, अन्तःकरण तथा जगत् आदि) तथा उसके धर्मों का अध्यास कैसे हो सकता है ? सभी लोग पुरोवस्थित विषय में हीं अन्य विषय का अध्यास करते है । यहाँ चिदात्मन् में अध्यास न होने के कारणरूप दो शंका प्रस्तुत हैं – १. प्रत्यगात्मन्

---

[362] वेदान्तसार (नृसिंहाश्रम कृत सुबोधिनी सहित) व्या० बदरीनारायण शुक्ल, मोतीलाल बनारसीदास, नई दिल्ली, २००६, पृ० ८.

[363] संक्षेपशारीरकम् (१.२०) , सम्पा० वज्रेभाऊ शास्त्री (अन्वयार्थ प्रकाशिका टीका सहित), चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, पृ० १३, १९९२.

अविषय है अर्थात् वह प्रतीति के योग्य नहीं है ? २. प्रत्यगात्मन् पुरोवस्थित अर्थात् सामने प्रकट रूप में विषय नहीं है ।[364]

## ४.५.२.१ .अविषय-चिदात्मा में अध्यास की अशक्यता का निराकरण

### (अ) आचार्य शंकर के द्वारा निराकरण

प्रथम शंका का समाधान आचार्य शंकर ने इस प्रकार दिया है कि प्रथम तो प्रत्यगात्मन् अत्यन्त अविषय नहीं है क्योंकि वह "मैं हूँ" (अस्मत् प्रत्यय का विषय ) इस प्रकार की प्रतीति का विषय है । दूसरा विषयता का कारण है अपरोक्ष( स्वंप्रकाशमान्) होने के कारण प्रसिद्ध होना अर्थात् वह आत्मन् सर्वजनसंवेद्य है, कोई उसकी सत्ता को अस्वीकार नहीं करता, सभी को "मैं हूँ" इस प्रकार का ज्ञान होता है, किसी को "मैं नही हूँ" इस प्रकार का ज्ञान नहीं होता – *"न तावदयमेंकान्तेनाविषयः अस्मत्प्रत्ययविषयत्वात्, अपरोक्षत्वाच्च प्रत्यगात्मप्रसिद्धेः"* ।[365]

### (ब)शांकर- मत पर रत्नप्रभाकार का स्पष्टीकरण

इसे रत्नप्रभाकार ने स्पष्ट करते हुए कहा है कि " मैं प्रतीति में आत्मन् भासित होता है अथवा मैं का अर्थ जो चिदात्मा है उसकी प्रतिबिम्ब रूप से जिसमें प्रतीति होती है उस अहंकार आत्मन् विषय है । आशय यह है अहंकार आत्मन् में भासित होता है इसलिए अविषय नहीं है

---

[364] कथं पुनः प्रत्यगात्मन्यविषयेऽध्यासो विषयतद्धर्माणाम् ? सर्वो हि पुरोवस्थिते विषये विषयान्तरमध्यवस्यति । ब० सू० शा० भा०, पृ० ३९.

[365] ब० सू० शा० भा०, पृ० ४०

*–अस्मत्प्रत्ययोऽहमिति अध्यासः तत्र भासमानत्वात् इत्यर्थः । अस्मदर्थः चिदात्मा प्रतिबिम्बित्वेन यत्र प्रतीयते सोऽस्मत्प्रत्ययोऽहंकारः तत्र भासमानत्वाद् इत्यर्थः ।*[366]

**(स) शांकर- मत पर भामतीकार का स्पष्टीकरण**

इसी पक्ष को भामतीकार ने कवित्वमयी वाणी से प्रस्तुत किया है कि "यद्यपि चिदात्मा स्वयं प्रकाशमान् होने से अविषय तथा निरवयव है तथापि अनिर्वचनीया अनादि अविद्या के द्वारा कल्पित मन और बुद्धि आदि से घटित स्थूल एवं सूक्ष्मशरीर की उपाधियों द्वारा अविच्छिन्न होकर वस्तुतः अपरिच्छिन्न, अकर्ता, अभोक्ता और अविषयीभूत होने पर भी आत्मन् परिच्छिन्न,कर्ता, भोक्ता और अस्मत्प्रत्यय का विषय मान लिया जाता है। ऐसा चिदात्मा जीवभाव को प्राप्त होकर विभिन्नरूपों में वैसे ही अवभासित होता है जैसे घट, मणिक(मटका), मल्लिका (हाँडी) आदि उपाधियों से अवच्छिन्न होकर एक ही आकाश विभिन्न रूपों वाला प्रतीत होता है – *अस्मप्रत्ययविषयत्वात् अयमर्थः । सत्यं प्रत्यगात्मा स्वंप्रकाशत्वादविषयोऽनंशश्च,तथाप्यनिर्वचनीयानाद्यविद्यापरिकल्पितबुद्धिमनः, स्थूलसूक्ष्मशरीरेन्द्रियावच्छेदेनानवच्छिन्नोऽपि वस्तुतोऽवच्छिन्न इवाभिन्नोऽपि भिन्न इवाकर्तापि कर्तेवाभोक्तापि भोक्तेवाविषयोऽप्यास्मत्प्रत्ययविषय इव जीवभावमापन्नोऽवभासते । नभः इव घटमणिकमल्लिकाद्यवच्छेदेन भिन्नमिवानेकविधधर्मकमिवेति। जीवो हि चिदात्मकतया स्वम्प्रकाशतयाऽविषयोऽप्यौपाधिकेन रूपेण विषय इति भावः ।*[367]

**विशेष -** "*अपरोक्षत्वाच्च प्रत्यगात्मप्रसिद्धेः*" ।[368] यहाँ भाष्य में "च" पद का अर्थ रत्नप्रभाकार ने शंकानिरासार्थ अर्थात् निश्चितता का अर्थ द्योतन करने वाला बताया है तथा "प्रसिद्ध" पद

---

[366] रत्नप्रभा पृ० ४०.

[367] भा०, पृ० ३८.

[368] ब० सू० शा० भा०, पृ० ४०

की व्याख्या करते हुए बताते है कि अल्पज्ञ पुरुष से लेकर पण्डित तक सभी निःसन्देह आत्मन् को स्वीकार करते है – *च शब्दः शंकानिरासार्थः। स्वप्रकाशत्वादिति अर्थः। आबालपण्डितमात्मनः शंसयादिशून्येत्वेन प्रसिद्धेः स्वप्रकाशत्वमिति* [369]। 'प्रसिद्धि' पद की व्याख्या करते हुए भामतीकार का कहना कि प्रत्यगात्मन् प्रसिद्ध है क्यों कि वह अपरोक्ष है या स्वयंप्रकाशमान् है यदि क्योंकि उसका प्रकाश न रहने पर अन्य विषयों का प्रकाशन नहीं हो पाएगा जगदान्ध प्रसंग प्रस्तुत हो जाएगा – *अवश्यं चिदात्माऽपरोक्षोभुपेतव्यस्तदप्रथायां सर्वस्याप्रथनेन जगदान्धप्रसंगादित्युक्तं, श्रुतिश्चात्र भवति " तमेंव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति" (कौ० २/५/१५)* [370] ।

## ४.५.२.२.अप्रत्यक्ष चिदात्मा में अध्यास की अशक्यता का निराकरण

आचार्य शंकर के द्वारा निराकरण -दूसरी शंका पूर्वपक्षी ने प्रस्तुत की थी कि आत्मन् पुरोवस्थित विषय न होने से उसमें अध्यास सम्भव नहीं। इस शंका का समाधान करते हुए आचार्य शंकर कहते हैं कि यह कोई नियम नहीं है कि पुरोवस्थित (प्रत्यक्ष) विषय में ही अन्य विषय तथा उसके धर्मों का अध्यास होता है क्यों कि अविवेकि मनुष्य अप्रत्यक्ष आकाश में तलमलिनता का अध्यास करते हैं अर्थात् आकाश नीला है, आकाश पीला है – *न चायमस्ति नियमः पुरोवस्थिते हि विषये विषयान्तरमध्यवसितव्यमिति । अप्रत्यक्षेऽपि ह्याकाशे बालास्तलमलिनताद्यध्यस्यन्ति* [371]।

शांकर- मत पर रत्नप्रभाकार का स्पष्टीकरण - यहाँ रत्नप्रभाकार ने "तलमलिनता" पद से दो भिन्न-भिन्न आरोपों को ग्रहण किया है - १. तल- आकाश की कोई आकृति नहीं है

[369] र० प्र० पृ० ४१.

[370] भा०, पृ० ४०.

[371] ब० सू० शा० भा०, पृ० ४२.

फिर अविवेकी मनुष्य उसे इन्द्रनीलमणि की कटाह (कडाहे) की भाँति आकारवान् एक निश्चित घेरा या आधार युक्त कहते हैं।

२.मलिनता - आकाश का कोई रंग भी नहीं फिर भी अन्यों का रंग वहाँ आरोपित कर कहा जाता है कि नीला आकाश, पीला आकाश – "*बालाः अविवेकिनः । तलम् इन्द्रनीलकटाहकल्पं नभो मलिनं पीतमित्येवम् अपरोक्षमध्यस्यन्ति*"।[372]

शांकर- मत पर भामतीकार का स्पष्टीकरण

वाचस्पति मिश्र ने इसी को स्पष्ट करते हुए कहा है कि आकाश द्रव्य रूप तथा स्पर्शगुण से रहित होने से चक्षु तथा त्वगेन्द्रिय से अग्राह्य है।आकाश का मानस प्रत्यक्ष भी नहीं किया जा सकता। अतःआकाश प्रत्यक्ष नहीं है फिर भी बालक या अविवेकि मनुष्य आकाश में कदाचित् पार्थिव छायारूप श्यामता का आरोप करके कहते हैं यह आकाश नीलोत्पल के पत्तों के समान श्यामल है एवं तैजस् शुक्ल रूप का अध्यास करके कहते कि यह आकाश राजहंसों समूह के समान धवल (श्वेत) है। वहाँ भी तामस श्याम और तैजस् शुक्ल इत्यादि रूपों का आकाश द्रव्य में स्मृतिरूप अवभास बन जाता है। इसी प्रकार सुदूर ऊपर गगन में तल का आरोप करके लोग कहा करते है कि यह गगन नीलमणि से निर्मित उल्टे कडाहे के समान है - "*नभो हि द्रव्यं सद्-रूपस्पर्शविरहान्न बाह्येन्द्रिय प्रत्यक्षम् । नापि मानसं मनसोऽसहायस्य बाह्यप्रवृत्तेः। तस्मादप्रत्यक्षम् । अथ च तत्र बाला अविवेकिनः परदर्शितदर्शिनः कदाचित्पार्थिवच्छायां श्यामतामारोप्य, कदाचित्तैजसं शुक्लत्वमारोप्य नीलोत्पलपलाशश्याममिति वा राजहंसमालाधवलमिति वा निवर्णयन्ति तत्रापि पूर्वदृष्टस्य तैजसस्य वा तामसस्य वा रूपस्य परत्र नभसि स्मृतिरूपोवभास इति । एवं तदेव तलमध्यस्यन्ति अवाङ्मुखीभूत महेन्द्रनीलमणिमय महाकटाहकल्पमित्यर्थः*"।

---

372 र० प्र०, पृ० ४१.

अतः चिदात्मा के अस्मत्प्रत्यय का विषय होने से तथा अपरोक्ष या सार्वजनीन अनुभव का विषय होने से उसमें देह- इन्द्रिय- मन –जगत् आदि के धर्मों का अध्यास सम्भव है अतः शंकर कहते हैं – *"एवमविरुध्दः प्रत्यगात्मन्यप्यनात्माध्यासः"।* [373]

अब अध्यास पर पूर्ण चर्चा हो जाने पर अध्यास कैसे होता है ? कैसे जीव संसार में ज्ञाता कर्ता भोक्ता बनता है ? या किस प्रकार चेतन आत्मन् पर अचेतन अनात्मन् (देह/इन्द्रिय/अन्तःकरण /जगत्) का अध्यास होता है ? इसका समाधान शंकर अध्यासभाष्य के अन्त में चार प्रकार से चिदात्मा पर अनात्मन् की सम्भावना को बताकर प्रस्तुत करते है –

- बाह्य धर्मों का आत्मन् पर अध्यास- पुत्र भार्या आदि के पूर्ण या अपूर्ण होने पर ही में पूर्ण या अपूर्ण हूँ। इस प्रकार बाह्य धर्मों का आत्मन् में अध्यास ।
- देह धर्मों का आत्मन् पर अध्यास – मैं मोटा हूँ , मैं कृश हूँ, मैं गोरा हूँ, मैं जाता हूँ, मैं लाँघता हूँ इन शरीर के धर्मों का आत्मन् पर अध्यास ।
- इन्द्रिय के धर्मो का आत्मन् पर अध्यास -– मैं मूक हूँ , मैं अन्धा हूँ, मैं बधिर हूँ, मैं काना हूँ, मैं नपुंसक हूँ इत्यादि इन्द्रिय के धर्मो का आत्मन् पर अध्यास ।
- अन्तःकरण के धर्मों का आत्मन् पर अध्यास – अद्वैत वेदान्त में अन्तःकरण को चार रूपों में माना गया है [374]–

i. मन- *संकल्पविकल्पात्मिका अन्तःकरणवृत्तिः* ।
ii. बुध्दि- *अध्यवसायात्मिका अन्तःकरण वृत्तिः* ।
iii. चित्त- *अनुसंधानात्मिका अन्तःकरणवृत्तिः* ।
iv. अहंकार- *अभिमानात्मिका अन्तःकरणवृत्ति* ।

विवेकचुडामणि के अनुसार- "*निगद्यते अन्तःकरणं मनोधि-रहंकृतिश्चित्तमिति स्ववृत्तिभिः ।*

---

[373] ब्र० सू० शा० भा०, पृ०४२.

[374] वेदान्तसार ( विद्वन्मनोरंजनी टीका सहित), व्या० बदरीनारायण शुक्ल, मोतीलाल बनारसी दास, २००६, पृ० ६७

*मनस्तु संकल्पविकल्पनादिभिर्बुद्धि पदार्थाध्यवसाय धर्मतः ॥*

*अत्राभिमानादहमित्यहङ्कृतिः, स्वार्थानुसंन्धानगुणेन चित्तम् ॥*[375]

इस प्रकार इन अन्तःकरण के धर्मों का आत्मन् पर अध्यास कर लौकिक व्यवहारी जीव बनता है।

## (चित्र सं ४.५)चिदात्मा पर अध्यास की सम्भावना

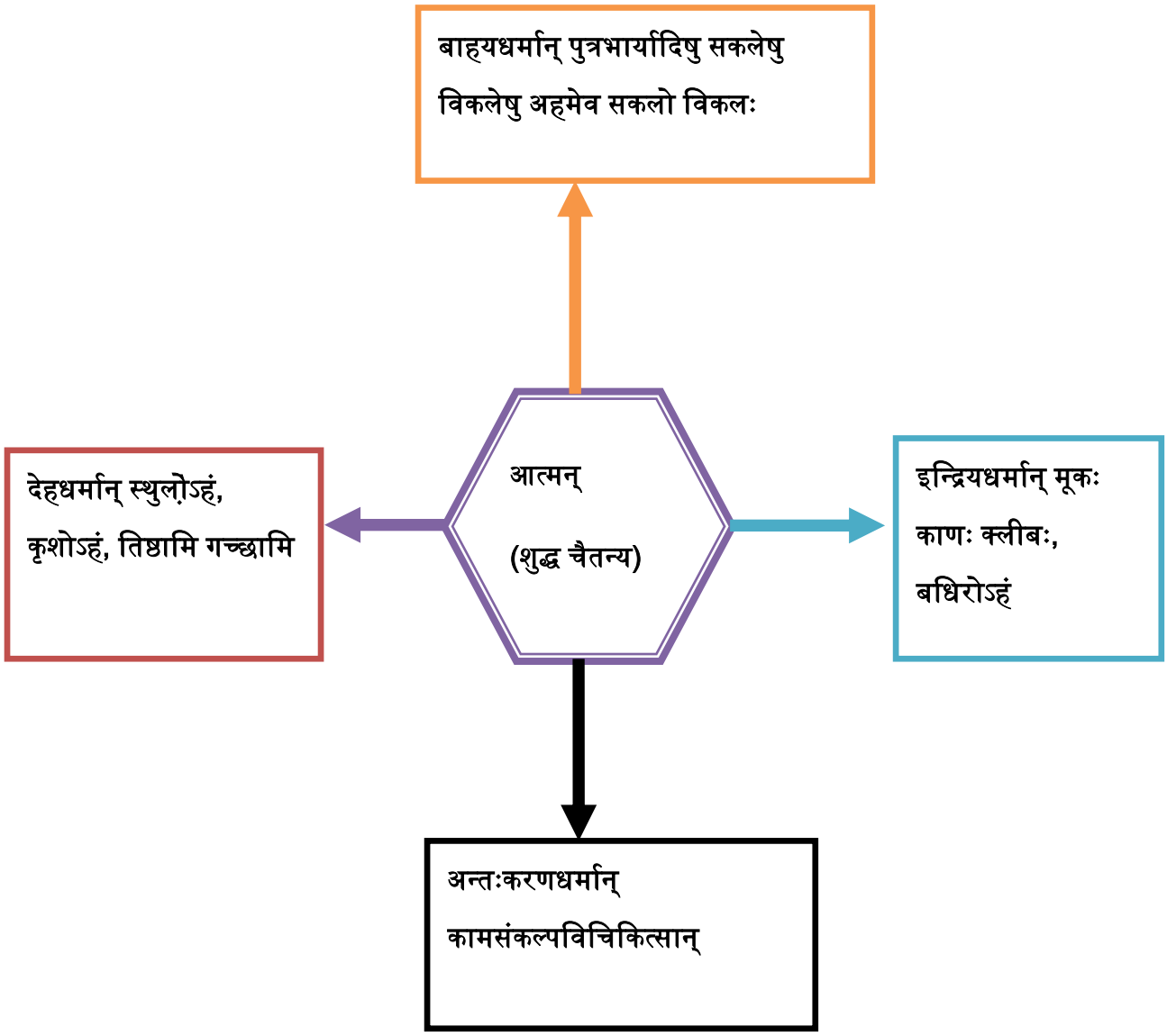


[375] विवेकचूडामणि,अनु० मुनिलाल, पृ० २८, गीताप्रेस गोरखपुर, वि० सं०, २०६५.

## ४.६ अध्यास के परिणाम

समस्त जागतिक व्यवहार अध्यास का परिणाम है जैसा भाष्यकार कहते हैं– *तमेंतमविद्याख्यमात्मानात्मनोः इतरेतराध्यासं पुरस्कृत्य सर्वे प्रमाणप्रमेंयव्यव्हारा लौकिका वैदिकाश्च प्रवृत्ताः सर्वाणि च शास्त्राणि विधिप्रतिषेधमोक्षपराणि*[376] । रत्नप्रभाकार के अनुसार समस्त व्यहार अध्यास का परिणाम है जिसे व्यवहार तीन भागों में प्रस्तुत किया है – *तं वर्णितमेंतं साक्षिप्रत्यक्षसिद्धं पुरस्कृत्य हेतुं कृत्वा लौकिकः कर्मशास्त्रीयो मोक्षशास्त्रीयस्च इति त्रिविधो व्यवहार प्रवर्तते इत्यर्थः तत्र विधिनिषेध पराणि कर्मशास्त्राणि ऋग्वेदादीनि, विधिनिषेधशून्य प्रत्यग्ब्रह्मपराणि मोक्षशास्त्राणि वेदान्तवाक्यानि इति विभागः।* [377]

१. लौकिक व्यवहार समस्त ज्ञान-प्रक्रिया पर आधारित होने के कारण यहाँ ज्ञान प्रक्रिया के अन्तर्गत उसकी चर्चा की जाएगी ।

२. कर्मशास्त्रीय या प्रवृत्तिपरक कर्म अर्थात् ऋग्वेदादि वेद का कर्म काण्डभाग जो कि विधि निषेधपरक है ।

३.मोक्षशास्त्रीय या निवृत्तिपरक कर्म वेद का ज्ञानकाण्ड क्योंकि यह विधि निषेध रहित है अर्थात् उपनिषद् या वेदान्त वाक्य प्रोक्त व्यवहार ।

---

376 ब्रह्मसूत्रशांकरभाष्य, पूर्ववत्, पृ० ४२.

377 रत्नप्रभा,पूर्वतत्, पृ० ४२

## ४.६.१ ज्ञानप्रक्रिया

*"प्रमाता-प्रमाणं प्रमेयंप्रमितिरिति चतसृषु विधासु तत्त्वं परिसमाप्यते" (न्यायभाष्य)*[378] ।

न्यायभाष्यकार वात्स्यायन के इस वचन के अनुसार तत्त्व-विश्लेषण प्रकिया उपर्युक्त चार घटकों के माध्यम से सम्पूर्ण होती है -१प्रमाता (Knower) २. प्रमाण (Instrument) ३.प्रमेंय (Object) ४. प्रमिति (Knowdge) | समस्त लोकव्यहार इन चार (प्रमाता-प्रमाणं प्रमेंय-प्रमिति) विधाओं के प्रयोग का परिणाम है और इस समस्त ज्ञान प्रकिया का आधार है प्रमाता शेष तीनों इसी पर निर्भर करते हैं । प्रमाता अविद्यायुक्त आत्मन् है या आध्यासिक जीव है । इस समस्त ज्ञानप्रक्रिया का आधार आध्यासिक प्रमाता(अविद्यावान् आत्मन् या जीव) होने से समस्त ज्ञान ही अध्यास जन्य है । इसमें क्या प्रमाण है ?

भाष्यकार इसका उत्तर देते हैं कि देह इन्द्रिय आदि में अहं और मम इस अभिमान के बिना असंग आत्मन् कभी प्रमाता नही हो सकता । यदि प्रमातृत्व की ही नही उपपन्न होता है तो ज्ञान प्रमाण (साधन) की भी आवश्यक्ता नही रहेगी- "*देहेन्द्रियादिष्वहंममाभिमानरहितस्य प्रमातृत्वानुपपत्तौ प्रमाणप्रवृत्त्यनुपपत्तेः" ।*[379]

यहाँ प्रमाण- प्रमेंयरूप ज्ञान प्रक्रिया आध्यासिक है इसे सिद्ध करने हेतु रत्नप्रभाकार ने अनुमान प्रमाण के अन्तर्गत अन्वय –व्यतिरेक व्याप्ति का प्रयोग किया है। व्यतिरेक व्याप्ति – देवदत्त के सुषुप्ति में होने पर व्यवहार का अभाव दिखाई देता है – *"देवदत्तस्य सुषुप्तौ अध्यासाभावे व्यवहाराभावे दृष्टः"* अर्थात् अध्यास के न होने पर व्यवहार का अभाव ।

---

[378] न्यायसूत्र(वात्स्यायनभाष्य सहित), सम्पा० श्री नारायण मिश्र , चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, १९८३ पृ० २४.

[379] ब्रह्मसूत्रशांकरभाष्य, पूर्ववत्, पृ० ४२.

अन्यव व्याप्ति - देवदत्त के जाग्रत और स्वप्न में होने पर व्यवहार होता है ।अर्थात् अध्यास के होने पर व्यवहार का होना । जाग्रतस्वप्नयोरध्यासे सति व्यवहार इन्यन्वयः ।[380] अतः सिध्द होता है व्यवहार अध्यासिक है ।

ज्ञानप्रक्रिया के लिए इन्द्रिय अध्यास की आवश्यक्ता- मनुष्यत्व आदि जातिमान् देह से व्यवहार हो तो इन्द्रिय अध्यास का क्या प्रयोजन ? आचार्य शंकर ने इसका निवारण किया है कि *"न हि इन्द्रियाण्यनुपादाय प्रत्यक्षादिव्यव्हारः सम्भवति"*[381] । रत्नप्रभाकार के अनुसार इन्द्रिय हेतु( प्रमाण) का उपलक्षण है। अतः जब प्रमाण नहीं होगा तो प्रमिति कैसे होगी ? अतः प्रत्यक्ष अनुमिति शाब्द ज्ञान लिङ्ग से युक्त जो द्रष्टा, अनुमाता, श्रोता आदि रूप देखने में आता है वह ममत्व के आश्रय इन्द्रिय का ग्रहण करे बिना नही हो सकता । अर्थात् इन्द्रिय अध्यास को नही माने तो मैं द्रष्टा हुँ ऐसा व्यवहार नहीं हो सकता जैसे अन्धे को नही होता – "इन्द्रियादिषु मम इत्याध्यासाभावे अन्धादेरिव द्रष्टृत्वादि व्यव्हारो न स्यात् इति भावः"। [382]

देहाध्यास की ज्ञानप्रकिया में उपयोगिता बताते हुए भाष्यकार ने कहा है जिसमें आत्म भाव अध्यस्त नही है ऐसे शरीर से किसी प्रकार का व्यवहार नही हो सकता "*न चानध्यस्तात्मभावेन देहेन कश्चिद्व्याप्रियते*" ।[383]

---

[380]. रत्नप्रभा पृ०, पूर्ववत्, ४५

[381] ब्रह्मसूत्रशांकरभाष्य, ४५.

[382] रत्नप्रभा, पूर्ववत्, पृ० ४७.

[383] ब्रह्मसूत्रशांकरभाष्य पूर्ववत्, पृ० ४५.

(चित्र सं ४.६) ज्ञान प्रक्रिया का अध्यासिकत्व

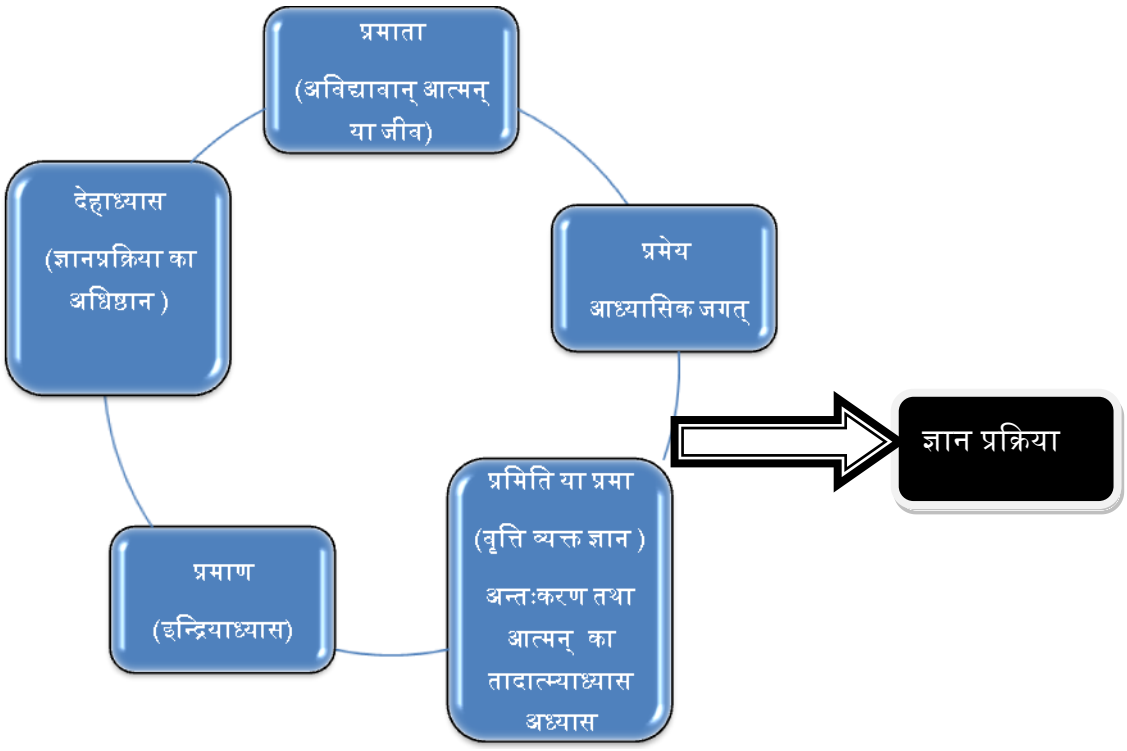


स्रोत – रत्नप्रभा पृ० ४६

ज्ञान प्रकिया में अध्यास की अनिवार्यता - यहाँ प्रश्न उपस्थित होता है कि आत्मन् तो स्वयं चैतन्य स्वरूप है अतः वह स्वयं प्रमाता है तो देह इन्द्रिय अन्तःकरण आदि जड तत्त्वों के साथ अध्यास की आवश्यक्ता है ?

निराकरण रत्नप्रभाकार देते है कि प्रमा का आश्रय प्रमाता है । अब प्रमा को यदि नित्यज्ञान स्वरूप मान ले तो न तो आत्मन् रूप प्रमाता की आवश्यता है और न ही प्रमाण (इन्द्रिय) की। यदि वृत्ति को प्रमा मान किया जाए तो वृत्ति के जड होने से समस्त जगत् ज्ञानशून्य हो जाऐगा । इस वृत्तिव्यक्त ज्ञान ही प्रमा है अतः अन्तःकरण में तादात्म्याध्यास के बिना वह प्रमा का आश्रय नही होगा तथा देह-इन्द्रियादि के अध्यास के बिना प्रमाता नही बनेगा-"*अतो*

*वृत्तिद्धो बोधः प्रमा तदाश्रयत्वमसंङ्गस्य आत्मनो वृत्तिमन्मनस्तादात्म्यध्यासं विना न सम्भवति इति भावः" |*[384]

प्रमा यदि नित्यचिन्मात्र मान लें तो इससे प्रमाता(Knower) ही नही होगा तो प्रमाण (Instrument), प्रमेंय ,प्रमिति (Object) या प्रमा(knowdge) से क्या प्रयोजन अथवा ज्ञाता के न होने पर साधन, ज्ञेयवस्तु ,ज्ञान रूप व्यवहार ही उपपन्न नही होगा।

पशुओं के प्रमाण -प्रमेय व्यवहार का आध्यासिकत्व- यहाँ यह सिद्ध हो जाने पर कि मनुष्यों का प्रमाण – प्रमेय (ज्ञान प्रक्रिया) रूप लोकव्यवहार तो अध्यास जन्य है क्योंकि मनुष्य विवेकी होता परन्तु क्या पशुओं का व्यवहार भी अध्यासिक है ?

इसका निराकरण प्रस्तुत करते हुए भाष्यकार ने कहा है कि विवेकी अध्यासवान् है क्यों कि प्रवृत्ति-निवृत्ति रूप व्यवहार करता है उसी प्रकार पशुओं का व्यवहार भी प्रवृत्ति -निवृत्तिरूप होने से अध्यासजन्य है। भाष्यकार कहते हैं - *"पश्वादिभिश्चाविशेषात्। यथा हि पश्वादयः शब्दादिभिः श्रोत्रादीनां सम्बन्धे सति शब्दादिविज्ञाने प्रतिकूले जाते ततो निवर्तन्ते अनुकूले च प्रवर्तन्ते। यथा दण्डोद्यकरं पुरूषमभिमुखंमुलभ्य मां हन्तुमयमिच्छतीति पलायितुमारभन्ते हरिततृणपूर्णपाणिमुपलभ्य तं प्रत्यभिमुखि भवन्ति" |* [385] यहाँ रत्नप्रभाकार पशुओं के द्वारा किये जाने वाले व्यवहार में अनुमान प्रमाण की प्रवृत्ति दिखाते है –

*"अयं दण्डो मदनिष्ट साधनम् दण्डत्वात् पूर्वदण्डवद्। इदं तृणम्, इष्टसाधनम् अनुभूतजातीयत्वात् अनुभूततृणवद् "।*[386]

---

[384] रत्नप्रभा पृ० ४८.

[385] ब्रह्मसूत्रशांकरभाष्य, पूर्ववत् , पृ० ५०

[386] रत्नप्रभा, पूर्ववत्, पृ० ५०

इसी विवेकी पुरुष अपने अनुकूल तथा प्रतिकूल वस्तु को जानकर उसकी ओर क्रमशः प्रवृत्त तथा निवृत्त होते हैं जैसे – *एवं पुरुषा अपि व्युत्तपन्नचित्ताः क्रूरदृष्टीना क्रोशतः खडगोद्यतकरान् बलवत उपलभ्य ततो निवर्तन्ते तद्विपरीतान् प्रति प्रवर्तन्ते*।[387]

अतः विवेकी मनुष्यों तथा अविवेकी पशुओं[388] का व्यवहार साम्य अध्यासजन्य होने से है – *समानत्वं व्यवहारस्य अध्यासकार्यत्वेन*।[389]

(चित्र सं ४.७) मनुष्य (विवेकी) तथा पशु (अविवेकी) के व्यव्हारसाम्यता का कारण अध्यास होना

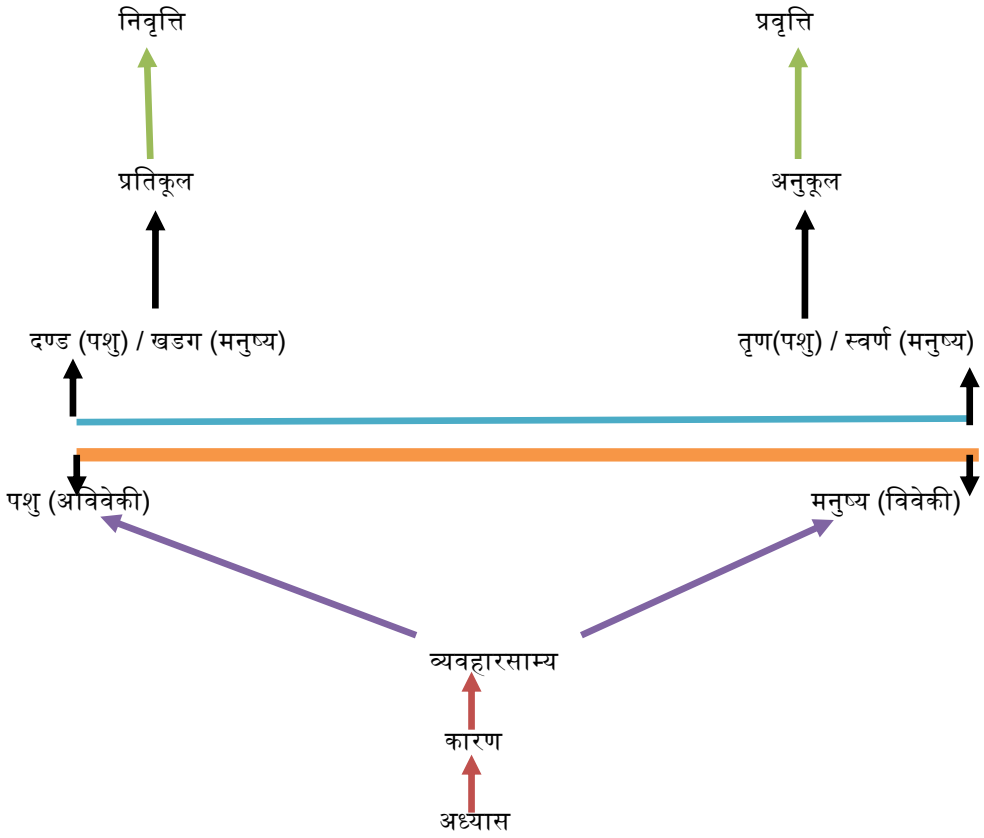


स्रोत - ब्रह्मसूत्रशांकरभाष्य,अनु० यतिवरभोलेबाबा, भारतीय विद्या प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथमभाग, पृ०७०,२००४.

[387] ब्रह्मसूत्रशांकरभाष्य, पूर्ववत् , पृ० ५०

[388] तेषाम् आत्मानान्मनो ज्ञानमात्रमस्ति, न विवेकः , उपदेशाभावात् । रत्नप्रभा, पूर्ववत् , पृ० ५०

[389] रत्नप्रभा, पूर्ववत्, पृ० ५०

## ४.६.२ कर्मशास्त्रीय – मोक्षशास्त्रीय व्यवहार

अब कर्मशास्त्रीय व्यवहार या कर्मकाण्ड की अध्यासिकता बताते हैं कि लौकिक व्यवहार में जो अध्यस्त आत्मन् प्रयुक्त होता है वहाँ फल इसी देह में मिल जाता है इसलिए देह सहित आत्मन् की वहाँ अपेक्षा है जबकि कर्मशास्त्रीय व्यवहार में देह से भिन्न आत्मन् की अपेक्षा है क्योंकि आत्मन् का सम्बन्ध परलोक के साथ बताया जाता है जैसे "*ज्योतिष्टोमेन स्वर्गकामो यजेत*"। कर्मशास्त्रीय व्यवहार में आत्मन् को स्वर्ग रूप फल का भोग परलोक में करना पडेगा इसलिए देह से भिन्न आत्मन् कहा है "*शास्त्रीये तु व्यव्हारे यद्यपि बुद्धिपूर्वकारी नाविदित्वात्मनः परलोकसम्बन्धमधिक्रियते*"।[390]

१.अब कर्मशास्त्र में अध्यास के उदाहरण दिखाते है भाष्यकार कहते हैं – *"ब्राह्मणो यजेत" इत्यादीनि शास्त्राण्यात्मनि वर्णाश्रमवयोऽवस्थादिविशेषाध्यासमाश्रित्य प्रवर्तन्ते*।[391] इसी को भामतीकार ने अलग- अलग अध्यास –पूर्वक भिन्न-भिन्न कर्मकाण्ड को बताते हुए स्पष्ट करते हुए कहते है [392] –

१.**वर्णाध्यास –** "*राजा राजसूयेन स्वाराज्यकामो यजेत*" (आप० श्रौ० सू० १९।९।१।४) ।यहाँ राजा का अर्थ है क्षत्रिय अतः क्षत्रिय वर्ण का अभिमानी पुरुष राजसूय कर्म का अधिकारी है।

२. **आश्रमाध्यास-** "*गृहस्थः सदृशी भार्यां विन्देत्*" ( गौतम स्मृ०४) यहाँ गृहस्थाश्रम का अध्यास है।

---

[390] ब्रह्मसूत्रशांकरभाष्य पृ० ५२ पूर्ववत।

[391] पूर्ववत।

[392] भामती पृ० ५१।

३. **वयोध्यास**- "*कृष्णकेशोऽग्नीनादधीत*" । काले केश वाला अर्थात् युवक अग्न्याधान करे यहाँ आयु का अध्यास है ।

४. **अवस्थाध्यास** – "*अप्रतिसमाधेयव्याधीनां जलादिप्रवेशेन प्राणत्यागः*"। जिसकी व्याधि असाध्य है उसे जलादि में प्रवेश कर प्राण त्याग देने । यहाँ असाध्य रोग अवस्था का अध्यास है ।

भाष्य में आये "आदि" पद से भामतीकार ने महापातक, उपपातक, संकरीकरण, अपात्रीकरण मलिनकरणादि का अध्यास ग्रहण किया है – "*आदिग्रहणं महापातकोपपातकसंकरीकरणापात्रीकरणमलीनीकरणाद्यध्यासोपसंग्रहार्थम्*" ।[393]

२. मोक्ष–शास्त्रीय व्यवहार अर्थात् मोक्ष में प्रवृत्त करने वाले शास्त्र वेदान्तशास्त्र या उपनिषद् या वैदिक ज्ञान काण्ड विषयक व्यवहार भी आध्यासिक है । आशय है ये शास्त्र भी अविद्याविषक हैं । यद्यपि वेदान्त में जिस आत्मतत्त्व का ज्ञान बताया गया है उसका क्षुधा आदि से कोई सम्बन्ध नही है जिसमें बाह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र का भेद नहीं है , ऐसे आत्मतत्त्व की कर्माधिकार में कोई अपेक्षा नही है क्यों कि वहाँ आत्मतत्त्व का अनुपयोग है अर्थात् असंग आत्मन् का यज्ञादि कर्म में अनुपयोग है क्योंकि वह अभोक्ता है । और अधिकार का विरोध है क्योंकि कर्म में वर्ण- आयु- अवस्था- आश्रम वाला आत्मन् है जबकि वेदान्त वेद्य आत्मन् अनुपहित चैतन्य है जिसमें ब्राह्मण क्षत्रियादि का भेद नही। इतना होने पर भी वेदान्तशास्त्र विशुद्ध चैतन्य के ज्ञान से पूर्व शास्त्र अविद्याविषयत्व का अतिक्रमण नही करता अर्थात् वेदान्त शास्त्रभी अविद्या विषयक है क्यों कि जब आध्यासिक प्रमातृत्व नही आयेगा तो वेदान्त के अर्थ का अधिगम कैसे होगा ? वाचस्पतिमिश्र कहते हैं कि *"एवं वेदान्ता अप्यविद्यावत्पुरुषविषया एव, नहि प्रमात्रादि विभागादृते तदर्थाधिगमः"* । परन्तु पुनः यह प्रश्न उपस्थित होता है कि वेदान्त क्यों पढें, कोई भी अविद्या विषयक शास्त्र पढा जा सकता

---

393 भामती,पृ०५१, पूर्ववत ।

है ? इसका उत्तर वाचस्पति भामती में उपर्युक्त पंक्तियों के पश्चात् इस रूप में देते है कि वेदान्त का अध्ययन इसलिए किया जाए क्योंकि वह अविद्यावान् पुरुष को अपने पावन उपदेशों के द्वारा सकल आध्यासिक परिच्छेदों से निकाल कर अपने शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वभाव में व्यव्स्थापित कर देते है वेदान्त का विधिनिषेधात्मक शास्त्र से केवल इतना ही अन्तर है।अविद्याविषयत्व विधिनिषेधात्मक शास्त्र तथा वेदान्तशास्त्र दोनो में समान है– *ते त्वविद्यावन्तमनुशासन्तो निर्मृष्टनिखिलाविद्यमनुशिष्टं स्वरूपे व्यवस्थापयन्तीत्येतावानेषां विशेषः।*[394]

इसिलिए मुण्डकोपनिषद् में कहा है इष्ट तथा पूर्त कर्मों को करते हुए स्वर्ग का आनन्द लेते हुए विमूढ व्यक्ति पुनः उससे भी हीन लोक को प्राप्त करते है क्यों कर्मजन्यफल अनित्य है केवल आत्मज्ञान ही नित्य फल है –

*इष्टापूर्तं मन्यमाना वरिष्ठं*

*नान्यच्छ्रेयो वेदयन्ते प्रमूढाः।*

*नाकस्य पृष्ठे ते सुकृतेऽनुभूत्वा*

*इमं लोकं हीनतरं वा विशन्ति ।। (मु० उप० १.२.१०)*[395]

“धन्याष्टकम्” स्तोत्र के प्रथम श्लोक में आचार्य शंकर ने केवल उपनिषद् ज्ञान को मुक्ति प्रदायक बताया तथा शेष को तो भ्रमोत्पादक बताया है –

*तज्ज्ञानं प्रशमकरं यदिन्द्रियाणां तज्ज्ञेयं यदुपनिषत्सु निश्चितार्थम् ।*

*ते धन्या परमार्थनिश्चितेहाः शेषास्तु भ्रमनिलये परिभ्रमन्ति ॥*[396]

---

394 भामती, पृ० ४६, पूर्ववत् ।

395 मु० उप० १.२.१०, ईशादि नौ उपनिषद, गीताप्रेस गोरखपुर , वि० सं० २०६५,पृ० १२३.

(चित्र सं ४.८) यदि शास्त्र अविद्याविषयक है तो वेदान्तशास्त्र या कर्मशास्त्र में किसका अध्ययन अपेक्षित?

"अविद्यावद्विषयाणि शास्त्राणि "। (ब्रह्मसूत्र -शांकरभाष्य पृ० ५०)

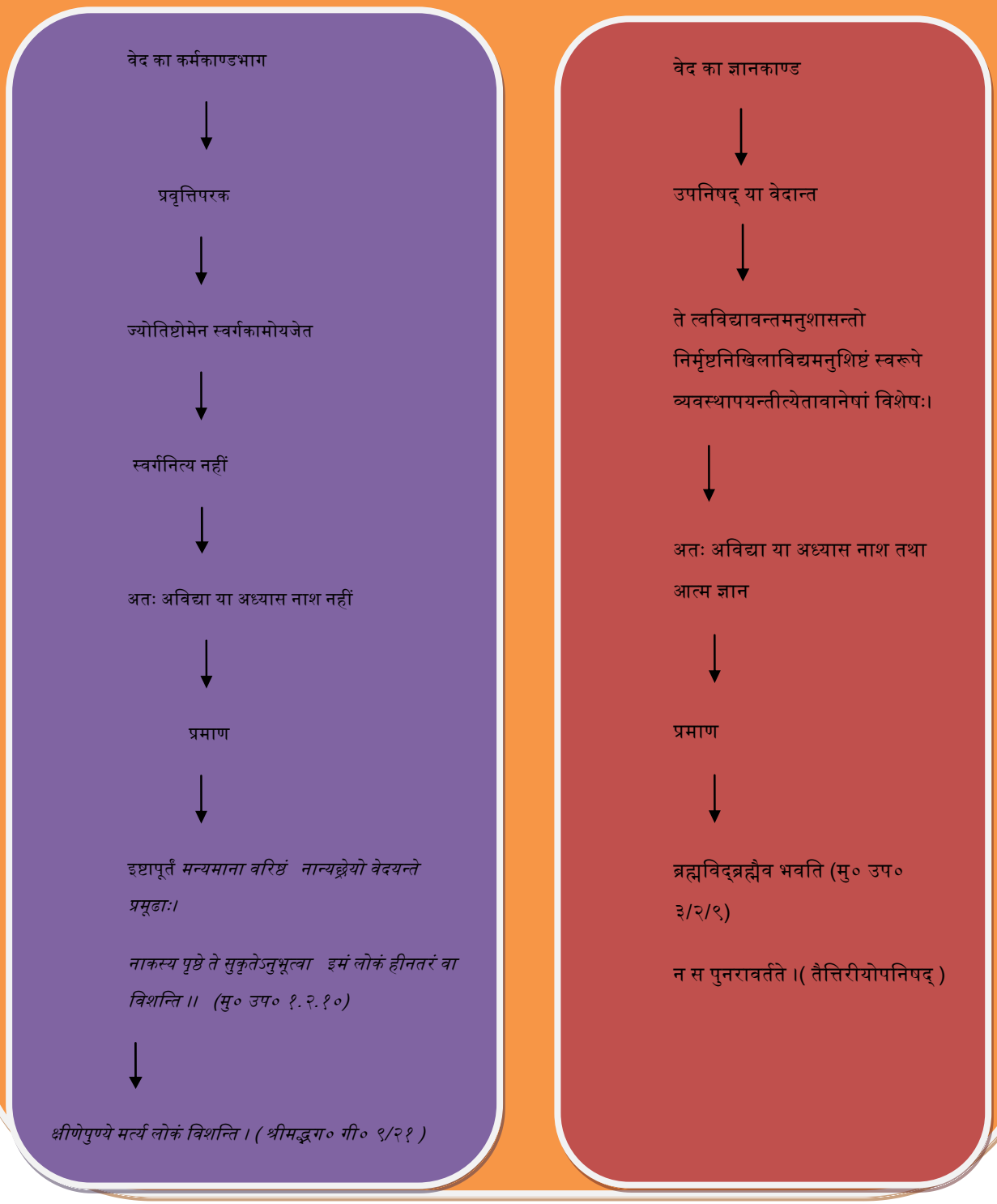


396 धन्याष्टकम्,श्लो० १,शंकराचार्यविरचितम्, स्तोत्ररत्नावली, गीताप्रेस गोरखपुर, वि०स० २०६५, पृ०२५६.

# उपसंहार

# उपसंहार

आचार्य शंकर ने सूत्रों पर भाष्य करने से पूर्व उपोद्धातस्वरूप अध्यासभाष्य को उपस्थापित कर अध्यास का व्यावहारिक एवं आनुभाविक विश्लेषण प्रस्तुत किया है। अतः प्रस्तुत शोधकार्य में उसका विश्लेषण एवं विवेचन वाचस्पतिमिश्र कृत भामती एवं प्रकाशात्मयति कृत विवरण टीकाओं के आलोक में किया गया है । यद्यपि शोधकार्य में मानवीय सीमा के वशीभूत सम्पूर्ण तथा निर्दुष्ट प्रतिपादन की सम्भावना नहीं है तथापि शोधार्थी का यथामति यथाशक्ति यह प्रथम प्रयास है । इस विश्लेषण उपक्रम में उद्भूत महत्त्वपूर्ण तथ्यों को इस उपसंहार में आवश्यक मानकर अधोलिखित प्रस्तुत किया जा रहा है –

- जीव का स्वरूप क्या है इसे लेकर श्रुति काल से चर्चा अनवरत रूप से हुई है । आचार्य शंकर भी इसके अपवाद नहीं हैं । एक, चेतन, साक्षी और निर्गुण आत्मा या ब्रह्म[397], अनेक सगुण जीवों, जड पदार्थों में कैसे भासित होता है तथा कैसे इस जगत् में ज्ञाता, कर्ता और भोक्ता के रूप में व्यहार करने वाले जीव की उपपत्ति होती है ? इस प्रमुख तत्त्वमीमांसीय एवं ज्ञानमीमांसीय समस्या के समाधान हेतु आचार्य शंकर ने ब्रह्मसूत्रों पर भाष्य लिखने से पूर्व उपोद्धातरूप में अध्यासभाष्य का उपवर्णन किया है । अध्यासभाष्य मानवीय व्यवहार का मनोवैज्ञानिक आधार प्रस्तुत करता है कि किस प्रकार आत्मन् शुद्ध चैतन्य होकर भी जगत् मे प्रमाणप्रमेयव्यवहार का कर्ता जीव बन जाता है ?

- **अध्यास भाष्य के दो भाग** हैं **-१. आक्षेप-भाष्य-**"युष्मदस्मद्प्रत्ययगोचरयोः से लेकर मिथ्याभवितुं युक्तम्" तक अध्यास की अनुपपत्ति को दिखाने से आक्षेप भाष्य

---

397 "आत्मा च ब्रह्म" ब्रह्मसूत्रशांकरभाष्य (रत्नप्रभा टीका सहित),अनु० यतिवरभोलेबाबा, भारतीय विद्या प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथमभाग, पृ०८८,२००४.

कहलाता है ।२.**समाधान भाष्य –** "तथापि से लेकर नैसर्गिकोऽयं लोकव्यव्हारः" तक का भाष्य समाधान भाष्य कहलाता है। क्योंकि इसमें अध्यास की उपपत्ति को दिखाया गया है ।

- **अध्यासभाष्य एक भाष्य है** -भाष्य के लक्षणानुसार सूत्र की प्रतिपद व्याख्या न करने से अध्यासभाष्य का भाष्यत्व नहीं है ऐसी शंका अनुचित है क्यों कि युष्मदस्मत्प्रत्ययगोचरयोः यहाँ से प्रारम्भ होकर अहमिदममेदम् पर्यन्त **पूर्वभाष्य,** "अस्यानर्थोप्रहाणायाऽऽत्मैकत्वविद्यापतिपत्तये सर्वेवेदान्ता आरभ्यन्ते" इस **उत्तरभाष्य** से सम्बध्द होकर वेदान्त शास्त्र के विषय तथा प्रयोजन की सिद्धि करते हैं। यहाँ इन दोनों भाष्य अंशों के आधार पर बन्ध के अविद्यात्मकत्व 'अध्यास' के प्रतिपादन द्वारा वेदान्त शास्त्र के जीवब्रह्मैक्य रूप विषय तथा अविद्यानाशरूप प्रयोजन को बताया गया है । अतः प्रथम सूत्र के भाष्य के प्रति अपेक्षित होने से अर्थात् सूत्रार्थ से सम्बद्ध होने के कारण अध्याभाष्य का भाष्यत्व सिद्ध है ।

- **अध्यासभाष्य मंगलाचरणयुक्त है -** अध्यासभाष्य अव्याख्येय है क्योंकि भाष्य के प्रारम्भ में मंगलाचरण नहीं किया गया है यह शंका भी अनुचित है । शङ्कर ने वस्तुनिर्देशात्मक विशिष्टदेवतानुस्मरणरूप मंगलाचरण किया है। युष्मदस्मदप्रत्ययगोचरयोः से लेकर इतरेतरभावानुपपत्तौ पर्यन्त भाष्य में शंङ्कर ने अध्यास- अभाव का प्रदर्शन कर समस्त उपद्रवों से रहित प्रत्यगात्म रूप विशिष्ट देवता का स्मरण किया है ।[398] भाष्य में अस्मत्प्रत्यय (आत्मन् ) को प्रकाशस्वरूप कहकर मंगलाचरण कर दिया गया है ।

---

[398] शिष्टाचारपरिपालनाय विघ्नोपशान्तये च विशिष्टदेवतातत्त्वानुस्मरणलक्षणं मंगलाचरणं कृतमित्याह। पंचपादिकाविवरण अनु० किशोरीदास स्वामी , पूर्ववत् ।

❖ **अध्यासभाष्य सप्रयोजन है** -"अथातो ब्रह्मजिज्ञासा" ( ब्र० सू०१/१/१ )इस सूत्र में साधनचतुष्टयसम्पन्न को अधिकारी बताया गया है । इस आदि सूत्र से आकांक्षित विषय (जीव ब्रह्मैक्य) व प्रयोजन (अज्ञाननिवृत्ति) की सिद्धि के लिए अध्यासभाष्य के आक्षेप और समाधान भाष्य के भागद्वय को उपस्थापित किया है । अतः सूत्र हेतु विषय और प्रयोजन को सिद्ध कर देना अध्यासभाष्य का प्रयोजन है।

❖ **लोकव्यवहार कैसे होता है ?** - समस्त लोकव्यवहार दो तत्त्वों के तादात्म्य या मिलन पर आधारित है- एक तो शुद्ध चैतन्य आत्मन् तत्त्व जो अहंप्रत्ययगोचर ,विषयी, चेतन, नित्य है तथा दूसरा अनात्म (देह, इन्द्रिय,अन्तःकरण् आदि) जो युष्मद्प्रत्ययगोचर विषय, जड, अनित्य है। यह युक्तियुक्त है कि विषयी आत्मन् तथा विषय अनात्मन् जो कि अन्धकार एवं प्रकाश की तरह परस्पर भिन्न स्वभाव वाले हैं इनका कदाचिदपि तादात्म्य सम्भव नहीं है ।

❖ **लोकव्यवहार का कारण अध्यास है -**यह लोकव्यहार अध्यास नामक प्रकिया का परिणाम है जो माया/ अविद्या/अज्ञान का व्यापार है- **"अध्यासं अविद्या कार्यत्वात् अविद्या इति मन्यन्ते" ।**

❖ **अध्यास लक्षण** - आचार्य शंकर ने तीन अध्यास के लक्षण दिये हैं –

i. **स्मृतिरूपः परत्र पूर्वदृष्टावभासः ।**
ii. **अन्यस्य अन्य धर्मावभासता ।**
iii. **अध्यासो नाम अतस्मिन् तद् बुद्धिरित्यवोचाम्"** अन्तिम लक्षण सर्वाधिक स्वीकृत मत माना जाता है ।

- **भामतीकार अवभासो अध्यासः** (बाधित ज्ञान) अध्यास का इस प्रकार लक्षण देते हैं तथा स्मृतिरूप परत्र और पूर्वदृष्ट इसके उपलक्षण हैं।
- **विवरणकार प्रकाशात्मयति** अध्यास के दो लक्षण देते हैं -
  १. **स्मर्यमाणसदृशः अन्यात्मनावभासमानो अन्योऽर्थो अध्यासः**- स्मर्यमाण के सदृश अन्य रूप से प्रतीयमान अन्य अर्थ अध्यास है । जैसे शुकौ इदं रजतम् । शुक्ति स्मर्यमाण रजत के समान प्रतीत हो रही है इसे "अध्यास" कहते हैं ।
  २. **परस्य परात्मना अवभासोऽध्यासः** - अन्य का अन्य के द्वारा अवभास या प्रतीत होना। जैसे रज्जु का सर्प के रूप अवभास होना ।

❖ **अध्यास के भेद-** भामतीकार ने अध्यास के दो भेदों पर चर्चा की है – १.अहंकाराध्यास अर्थात् धर्मिन् का अध्यास २. ममकाराध्यास अर्थात् धर्माध्यास । धर्मिन् के अध्यास (अहंकाराध्यास) को धर्माध्यास (ममकाराध्यास) का कारण बताया है ।

विवरणकार ने अध्यास के भेदों पर चर्चा नहीं की । विवरणप्रस्थान में ही रत्नप्रभाकार ने पाँच भेद बताए है - १. अर्थाध्यास २. ज्ञानाध्यास ३. अन्योन्याध्यास ४. तादात्म्याध्यास ५. संसर्गाध्यास ।

❖ **अध्यास का कारण -**भामतीकार एवं अन्य टीकाकारों के अनुसार अध्यास का उपादान कारण तथा निमित्त कारण अविद्या है । ये सादृश्यज्ञान को भी अध्यास में कारण मानते है। भामतीकार प्रतिजीव में अविद्या नानात्व के सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हैं । विवरणकार के अनुसार अध्यास का उपादानकारण अविद्या तथा निमित्तकारण प्रमातृदोष (इन्दिय दोष) तथा विषयदोष आदि को मानते है । विवरणकार अविद्या तथा माया में एकत्व को मानते हैं इनके अनुसार माया और अविद्या में तात्त्विक दृष्टि

से एकता है परन्तु व्यवहारगत भेद है । माया विक्षेपशक्तिप्रधान तथा अविद्या आवरणशक्ति प्रधान है । विवरणकार प्रतिजीव में अविद्या एकत्व के सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हैं। ये सादृश्यज्ञान को अध्यास में कारण नहीं मानते।

❖ **चिदात्मा में अध्यास सम्भव है -**आचार्य शंकर के अनुसार आत्मन् में अनात्मन् के धर्मों का अध्यास सम्भव है क्यों कि प्रथम तो प्रत्यगात्मन् अत्यन्त अविषय नहीं है क्योंकि वह "मैं हूँ" (अस्मत् प्रत्यय का विषय ) इस प्रकार की प्रतीति का विषय है । दूसरा विषयता का कारण है अपरोक्ष( स्वंप्रकाशमान्) होने के कारण प्रसिद्ध होना अर्थात् वह आत्मन् सर्वजनसंवेद्य है, कोई उसकी सत्ता को अस्वीकार नहीं करता, सभी को "मैं हूँ" इस प्रकार का ज्ञान होता है, किसी को "मैं नही हूँ" इस प्रकार का ज्ञान नहीं होता – न तावदयमेकान्तेनाविषयः अस्मत्प्रत्ययविषयत्वात्, अपरोक्षत्वाच्च प्रत्यगात्मप्रसिद्धेः ।

❖ **अध्यास के परिणामों** को अध्यासभाष्य के आधार पर दो रूपों में प्रस्तुत किया है –

- ज्ञान प्रक्रिया अर्थात् प्रमाण प्रमेय व्यवहार या लौकिक व्यवहार अध्यास जन्य है ।
- शास्त्रीयव्यवहार (कर्मशास्त्रीय या कर्मकाण्ड तथा मोक्षशास्त्रीय या ज्ञानकाण्ड ) दोनों आध्यासिक हैं ।

❖ **वेदान्त के अविद्याविषयक होने पर भी उसका अध्ययन क्यों अपेक्षित है ? -** वेदान्त (मोक्षशास्त्र या ज्ञानकाण्ड) भी कर्मशास्त्र या कर्मकाण्ड के समान अविद्याविषयक है तो फिर वेदान्त का अध्ययन क्यों अपेक्षित है ? इसका उत्तर वाचस्पति मिश्र ने भामती में देते हैं कि वेदान्त का अध्ययन इसलिए किया जाए क्यों कि वेदान्त वाक्य

अविद्यावान् पुरुष को अपने पावन उपदेशों के द्वारा सकल आध्यासिक परिच्छेदों से निकाल कर अपने शुद्ध- बुद्ध- मुक्त स्वभाव में व्यवस्थापित कर देता है । वेदान्त का विधिनिषेधात्मक शास्त्र से इतना ही साम्य है कि अविद्याविषयत्व दोनों में समान है – *"ते त्वविद्यावन्तमनुशासन्तो निर्मृष्टनिखिलाविद्यमनुशिष्टं स्वरूपे व्यवस्थापयन्तीत्येतावानेषां विशेषः"।*[399]

अत एव मुण्डकोपनिषद् में कहा है इष्ट तथा पूर्त कर्मों को करते हुए स्वर्ग का आनन्द लेते हुए विमूढ व्यक्ति पुनः उससे भी हीन लोक को प्राप्त करते है क्यों कर्मजन्यफल अनित्य है केवल आत्मज्ञान ही नित्य फल है –

*इष्टापूर्तं मन्यमाना वरिष्ठं ।*

*नान्यच्छ्रेयो वेदयन्ते प्रमूढाः।*

*नाकस्य पृष्ठे ते सुकृतेऽनुभूत्वा ।*

*इमं लोकं हीनतरं वा विशन्ति ।। (मु० उप० १.२.१०)*[400]

उपर्युक्त तथ्यों के प्रकाश में यह कहा जा सकता है कि प्रस्तुत अध्यासभाष्य का अध्ययन शांकरवेदान्त में अध्यासवाद से सम्बद्ध महत्वपूर्ण अवधारणाओं को प्रकाशित करने में अत्यन्त लघुप्रयास ही है । प्रस्तुत शोधकार्य से आशा की जाती है कि यह वेदान्त जिज्ञासुओं के समक्ष अध्यास को लेकर भामती और विवरण के दृष्टि से भ्रमरहित और स्पष्ट मार्ग प्रस्तुत कर सके ।

---

399 भामती, पृ० ४६, पूर्ववत् ।

400 मु० उप० १.२.१०, ईशादि नौ उपनिषद, गीताप्रेस गोरखपुर , वि० सं० २०६५,पृ० १२३.

# परिशिष्ट

# परिशिष्ट १

## अध्यासभाष्य

युष्मदस्मत्प्रत्ययगोचरयोर्विषयविषयिणोस्तमःप्रकाशवद्विरुद्धस्वभावयोरितरेतरभावानुपपत्तौ सिद्धायां तद्धर्माणामपि सुतरामितरेतरभावानुपपत्तिः, इत्यतोऽस्मत्प्रत्ययगोचरे विषयिणि चिदात्मके युष्मत्प्रत्ययगोचरस्य विषयस्य तद्धर्माणां चाध्यासः, तद्विपर्ययेण विषयिणस्तद्धर्माणां च विषयेऽध्यासो मिथ्येति भवितुं युक्तम्। तथाप्यन्योन्यस्मिन्नन्योन्यात्मकतामन्योन्यधर्माश्चाध्यस्येतरेतराविवेकेन,अत्यन्तविविक्तयोर्धर्मधर्मिणोर्मिथ्याऽज्ञाननिमित्तः सत्यानृते मिथुनीकृत्य, अहमिदं ममेदमिति नैसर्गिकोऽयं लोकव्यवहारः।

आह- कोऽयमध्यासो नामेति। उच्यते- स्मृतिरूपः परत्र पूर्वदृष्टावभासः। तं केचिदन्यत्रान्यधर्माध्यास इति वदन्ति। केचित्तु यत्रयदध्यासस्तद्विवेकाग्रहनिबन्धनो भ्रम इति। अन्ये तु यत्र यदध्यासस्तस्यैव विपरीतधर्मत्वकल्पनामाचक्षत इति। सर्वथापि त्वन्यस्यान्यधर्मावभासतां न व्यभिचरति। तथा च लोकेऽनुभवः- शुक्तिका हि रजतवदवभासते, एकश्चन्द्रःसद्वितीयवदिति।

कथं पुनः प्रत्यगात्मन्यविषयेऽध्यासो विषयतद्धर्माणाम्? सर्वो हि पुरोऽवस्थिते विषये विषयान्तरमध्यस्यति, युष्मत्प्रत्ययापेतस्य च प्रत्यगात्मनोऽविषयत्वं ब्रवीषि? उच्यते, न तावदयमेकान्तेनाविषयः, अस्मत्प्रत्ययविषयत्वात्, अपरोक्षत्वाच्च प्रत्यगात्मप्रसिद्धेः। न चायमस्ति नियमःपुरोऽवस्थित एव विषये विषयान्तरमध्यसितव्यमिति । अप्रत्यक्षेऽपि ह्याकाशे बालास्तलमलिनताद्यध्यस्यन्ति । एवमविरुद्धः प्रत्यगात्मन्यप्यनात्माध्यासः ।

तमेतमेवंलक्षणमध्यासं पण्डिता अविद्येति मन्यन्ते। तद्विवेकेन च वस्तुस्वरूपावधारणं विद्यामाहुः । तत्रैवं सति यत्र यदध्यासस्तत्कृतेन दोषेण गुणेन वाऽणुमात्रेणापि स न संबध्यते । तमेतमविद्याख्यमात्मानात्मनोरितरेतराध्यासं पुरस्कृत्य सर्वे प्रमाणप्रमेयव्यवहारा लौकिका वैदिकाश्च प्रवृत्ताः, सर्वाणि च शास्त्राणि विधिप्रतिषेधमोक्षपराणि ।

कथं पुनरविद्यावद्विषयाणि प्रत्यक्षादीनि प्रमाणानि शास्त्राणि चेति। उच्यते- देहेन्द्रियादिष्वहं ममाभिमानरहितस्य प्रमातृत्वानुपपत्तौ प्रमाणप्रवृत्यनुपपत्तेः । नहीन्द्रियाण्यनुपादाय प्रत्यक्षादिव्यवहारः संभवति । न चाधिष्ठानमन्तरेणेन्द्रियाणां व्यवहारः संभवति । न चानध्यस्तात्मभावेन देहेन कश्चिद्व्याप्रियते । न चैतस्मिन्सर्वस्मिन्नसति असङ्गस्यात्मनः प्रमातृत्वमुपपद्यते । न च प्रमातृत्वमन्तरेण प्रमाणप्रवृत्तिरस्ति । तस्मादविद्यावद्विषयाण्येव प्रत्यक्षादीनि प्रमाणानि शास्त्राणि च । पश्वादिभिश्चाविशेषात् । यथा हि पश्वादयः शब्दादिभिः श्रोत्रादीनां संबन्धे सति शब्दादिविज्ञाने प्रतिकूले जाते ततो निवर्तन्ते, अनुकूले च प्रवर्तन्ते । दण्डोद्यतकरं पुरुषमभिमुखमुपलभ्य मां हन्तुमयमिच्छतीति पलायितुमारभन्ते, हरिततृणपूर्णपाणिमुपलभ्य तै प्रत्यभिमुखीभवन्ति । एवं पुरुषा अपि व्युत्पन्नचित्ताः क्रूरदृष्टीनाक्रोशतः खड्गोद्यतकरान् बलवत उपलभ्य ततो निवर्तन्ते, तद्विपरीतान्प्रति प्रवर्तन्ते। अतः समानः पश्वादिभिः पुरुषाणां प्रमाणप्रमेयव्यवहारः । पश्वादीनां च प्रसिद्धोऽविवेकपुरस्सरः प्रत्यक्षादिव्यवहारः। तत्सामान्यदर्शनाद् व्युत्पत्तिमतामपि पुरुषाणां प्रत्यक्षादिव्यवहारस्तत्कालः समान इति निश्चीयते।

शास्त्रीये तु व्यवहारे यद्यपि बुद्धिपूर्वकारी नाविदित्वाऽऽत्मनः परलोकसंबन्धमधिक्रियते, तथापि न वेदान्तवेद्यमशनायाद्यतीतमपेतब्रह्मक्षत्रादिभेदमसंसार्यात्मतत्त्वमधिकारेऽपेक्ष्यते, अनुपयोगादधिकारविरोधाच्च। प्राक्च तथाभूतात्मविज्ञानात्प्रवर्तमानं शास्त्रमविद्यावद्विषयत्वं नातिवर्तते । तथा हि- "ब्राह्मणो यजेत" इत्यादीनि शास्त्राण्यात्मनि वर्णाश्रमवयोऽवस्थादिविशेषाध्यासमाश्रित्य प्रवर्तन्ते । अध्यासो नाम अतस्मिं स्तद्बुद्धिरित्यवोचाम। तद्यथा पुत्रभार्यादिषु विकलेषु सकलेषु वा अहमेव विकलः सकलो वेति बाह्यधर्मानात्मन्यध्यस्यति । तथा देहधर्मान्- स्थूलोऽहं, कृशोऽहं, गौरोऽहं, तिष्ठामि, गच्छामि लङ्घयामि चेति। तथेन्द्रियधर्मान्- मूकः, काणः, क्लीबः, बधिरः, अन्धोऽहमिति। तथान्तःकरणधर्मान् कामसंकल्पविचिकित्साध्यवसायादीन् । एवमहंप्रत्ययिनमशेषस्वप्रचारसाक्षिणि प्रत्यगात्मन्यध्यस्य तं च प्रत्यगात्मानं सर्वसाक्षिणं तद्विपर्ययेणान्तःकरणादिष्वध्यस्यति । एवमयमनादिरनन्तो नैसर्गिकोऽध्यासो मिथ्याप्रत्ययरूपः कर्तृत्वभोक्तृत्वप्रवर्तकः सर्वलोकप्रत्यक्षः।

अस्यानर्थहेतोः प्रहाणाय आत्मैकत्वविद्याप्रतिपत्तये सर्वे वेदान्ता आरभ्यन्ते ।यथाचायमर्थः सर्वेषां वेदान्तानां तथा वयमस्यां शारीरकमीमांसायां प्रदर्शयिष्यामः।

# परिशिष्ट २

## ब्रह्मसूत्र के प्रमुख भाष्यकार

| क्रं सं. | भाष्यकार | काल | भाष्य | सिद्धान्त |
|---|---|---|---|---|
| १. | शंकराचार्य | ७८८-८५० | शारीरकभाष्य | अद्वैत |
| २. | भास्कराचार्य | १००० | भास्करभाष्य | भेदाभेद |
| ३. | रामानुज | ११४० | श्रीभाष्य | विशिष्टाद्वैत |
| ४. | मध्व | ११३८ | पूर्णप्रज्ञभाष्य | द्वैत |
| ५. | निम्बार्क | १२५० | वेदान्तपरिजातभाष्य | द्वैताद्वैत |
| ६. | श्री कण्ठ | १२७० | शैवभाष्य | शैवविशिष्टाद्वैत |
| ७. | श्रीपति | १४०० | श्रीकरभाष्य | वीरशैवविशिष्टाद्वैत |
| ८. | वल्लभ | १४७९-१५४४ | अणुभाष्य | शुद्धाद्वैत |
| ९. | विज्ञानभिक्षु | १६०० | विज्ञानामृतभाष्य | अविभागाद्वैत |
| १०. | बलदेव विद्याभूषण | १७२५ | गोविन्दभाष्य | अचिन्त्यभेदाभेद |

स्रोत- Advait Vedanta literature – A Bibliographical Survey, R. Thagswami, University of Madras, 1980 pg. 221

# परिशिष्ट ३

## शारीरकभाष्य पर प्रमुख टीकाएं

| क्र. सं. | टीका | टीकाकार |
|---|---|---|
| १. | भामती | वाचस्पति मिश्र |
| २. | पद्मपाद | पंचपादिका |
| ३. | रत्नप्रभा | रामान्दयति या गोविन्दानन्द |
| ४. | भाष्य भावप्रकाशिका | चित्सुखाचार्य |
| ५. | भाष्यन्याय संग्रह | प्रकाशात्मयति |
| ६. | न्यायनिर्णय | आनन्दगिरि |
| ७. | ब्रह्मविद्याभरण | अद्वैतानन्द |
| ८. | प्रदीप | अनन्तकृष्णशास्त्री |
| ९. | शारीरकन्यायमणिमाला | अनन्यानुभव |
| १०. | शारीरकन्यायमणिमाला | अनुभूतिस्वरूपाचार्य |
| ११. | भाष्यसिद्धान्तसंग्रह | उपनिषद्ब्रह्मेन्द्र |
| १२. | विद्याश्री | ज्ञानोत्तम |
| १३. | भाष्यभानुप्रभा | त्रयम्बक शास्त्री |
| १४. | भाष्यवार्त्तिक | नारायण सरस्वती |
| १५. | भाष्यार्थसंग्रह | ब्रह्मानन्द यति |
| १६. | सुबोधिनी | शिवनारायण |
| १७. | भाष्यसिद्धान्त संग्रह | कृष्णानुभूति |

स्रोत- Advait Vedanta literature – A Bibliographical Survey, R. Thagswami, University of Madras, 1980 pg. 222

# परिशिष्ट ४

## भामती की प्रमुख टीकाएं

| क्र. सं. | टीका | टीकाकार |
|---|---|---|
| १. | भामती तिलक | अल्लाल |
| २. | ऋजुप्रकाशिका | अखण्डानद |
| ३. | कल्पतरू | अमलानन्द |
| ४. | कल्पतरूपरिमल | अप्पय दीक्षित |
| ५. | कल्पतरूमञ्जरी | वैद्यनाथकृत |

स्रोत- Advait Vedanta literature – A Bibliographical Survey, R. Thagswami, University of Madras, 1980 pg. 220.

# परिशिष्ट ५

विवरण की प्रमुख टीकाएं

| क्रं सं | टीका | टीकाकार |
|---|---|---|
| १. | विवरण भावद्योतनिका | चित्सुखाचार्य |
| २. | तत्त्वदीपन | अखण्डानन्द |
| ३. | भावप्रकाशिका | नृसिंहाश्रम |
| ४. | विवरणप्रमेयसंग्रह | विद्यारण्यमुनि या माधवाचार्य |
| ५. | टीकारत्नम् | विद्यासागर |
| ६. | विवरणदर्पण | रंगराजाध्वरीन्द्र |
| ७. | ऋजुविवरण | विष्णुभट्ट |
| ८. | विवरणोपन्यास | रामानन्द सरस्वती |

स्रोत- Advait Vedanta literature – A Bibliographical Survey, R. Thagswami, University of Madras, 1980 pg. 223.

# सन्दर्भग्रन्थ सूची

# सन्दर्भ-ग्रन्थ -सूची (Bibliography)

## 1.प्राथमिक स्रोत (Primary Sources) -

### १. प्रत्यक्ष (Direct Sources) -


-ब्रह्मसूत्रशांकरभाष्य(रत्नप्रभा टीका सहिता) अनु० यतिवर श्री भोलेबाबा, भारतीय विद्या प्रकाशन, नई दिल्ली, 2004 .

- ब्रह्मसूत्रशांकरभाष्य, सम्पा० स्वामि सत्यानन्द सरस्वती, कृत हिन्दी व्याख्या एवं अनुवाद, गोविन्द मठ, वाराणसी,1965.

- ब्रह्मसूत्रशांकरभाष्य, सम्पा० कन्हैया लाल जोशी (भामती, कल्पतरु,परिमल,टीकाओं सहित),परिमल पब्लिकेशन्स,दिल्ली 1982.

-ब्रह्मसूत्रशांकरभाष्यम्-भामती-पंचपादिका-विवरण-तत्त्वदीपन-विवरणप्रमेयसंग्रह-ऋजुप्रकाशिका-नारायण सरस्वती कृत वार्तिक- नवीन टिपण्णी प्रदीप व्याख्योपव्याख्यानवकोपेतम् , संस्कृतभूमिका, सूचियत्रादिसमेतम् , म० म० श्री अनन्तकृष्ण शास्त्री, चौखम्भा संस्कृत प्रतिष्ठान, वाराणसी, 2008.

- पंचपादिका(आचार्य पद्मपाद कृत), सम्पा० टी० चन्द्रशेखरन तथा श्री राम शास्त्री (प्रकाशात्मयति कृत विवरण पर चित्सुख की तात्पर्यदीपिका एवं नृसिंहाश्रम की भावप्रकाशिका टीकाओं सहित) मद्रास गवर्नमेन्टल ओरियण्टल सीरीज,मद्रास, 1950.

- पंचपादिका (पद्मपाद कृत), अनु० किशोरीलाल स्वामी, रामतीर्थ मिशन, देहरादून, 2001.

- भामती (वाचस्पति मिश्र कृत), व्या० स्वामी योगीन्द्रानन्द, चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी, 2005.

-पंचपादिकाविवरण(प्रकाशात्मयति कृत), इ. जे, लाजरस कम्पनी,बनारस, 1998.

-पंचपादिकाविवरण (प्रकाशात्मयति कृत), अनु० किशोरीलाल स्वामी, रामतीर्थ मिशन, देहरादून, 2001.

२.अप्रत्यक्ष (Indirect Sources) -

-ऋग्वेद संहिता ,चतुर्थ खण्ड, सायण भाष्य सहित, सम्पा.मैक्समूलर , चौखम्बा संस्कृत ग्रन्थमाला, वाराणसी, १९६६.

-ईशादि नौ उपनिषद्, गीताप्रेस, गोरखपुर, वि. सं. २०६५.

-छान्दोग्य उपनिषद्, गीताप्रेस, गोरखपुर, वि. सं. २०६५.

-बृहदारण्यकोपनिषद्, गीताप्रेस, गोरखपुर, वि. सं. २०६५.

-विवरणप्रमेयसंग्रह(विद्यारण्यमुनि कृत),सम्पा०कृष्णपन्तशास्त्री,अच्युतग्रन्थमाला कार्यालय, काशी,1906.

-तत्त्वप्रदीपिका(चित्सुखाचार्य कृत), सम्पा०योगीन्द्रानन्द, षडदर्शनप्रकाशन प्रतिष्ठान वाराणसी,1974.

-इष्टसिद्धि (विमुक्तात्मयति कृत), सम्पा एम० हिरियन्ना, गायकवाड ओरियन्टल इन्स्टीट्यूट, बडौदा, 1993.

-न्यायमकरन्द (आनन्दबोध भट्टारक कृत), सम्पा० एन० एस० स्वामी, चौखम्भा संस्कृत बुक डिपो, वाराणसी, 1907.

-ब्रह्मसिद्धि (मण्डन मिश्र), सम्पा० कुप्पु स्वामी शास्त्री, गवर्नमेण्ट प्रेस, मद्रास, 1937.

-वेदान्तसिद्धान्त मुक्तावली (प्रकाशानन्द कृत), अच्युत कार्यालय काशी, 1936.

-बृहदारण्यकोपनिषद्भाष्यवार्तिक (आचार्य सुरेश्वर कृत) , आनन्दाश्रम संस्कृत सीरीज पूना,1992.

-नैष्कर्म्यसिद्धि, सम्पा० कर्नल जी० ए० जैकोब (ज्ञानोत्तम मिश्र कृत चन्द्रिका सहित),चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी, 1992.

-संक्षेपशारीरक(सर्वज्ञात्ममुनि कृत) १/३/८,सम्पा० वझेभाउ शास्त्री, चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी,पृ०१२५,1992.

-विवेकचूडामणि(शंकराचार्य कृत),गीताप्रेस गोरखपुर वि०सं० २०६५.

-विवेकचूडामणि(शंकराचार्य कृत) सम्पा० मनोहरलाल शर्मा, चितरंजन एवेन्यु कलकत्ता,1983.

-वेदान्तपरिभाषा(धर्मराजाध्वरीन्द्र कृत) (प्रकाश हिन्दी व्याख्या सहित), सम्पा० गजानन शास्त्री मुसलगाँवकर चौखम्भा विद्याभवन वाराणसी,1973.

-न्यायमञ्जरी(जयन्तभट्ट कृत),सम्पा०सूर्यनारायण शुक्ल,तथा जयकृष्णदास हरिगुप्त,चौखम्भा संस्कृत सीरीज आफिस वाराणसी, 1936.

-सर्वदर्शनसंग्रह(माध्वाचार्य कृत),अनु० डा० उमा शंकर शर्मा "ऋषि",चौखम्भा संस्कृत प्रतिष्ठान, वाराणसी, 2005.

-तर्कसंग्रह (अन्नम्भट्ट कृत),सम्पा० दयानन्द भार्गव, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1971.

-तर्कभाषा(केशवमिश्र कृत), सम्पा०आचार्य विश्वेश्वर सिद्धान्त शिरोमणि, चौखम्भा संस्कृत सीरीज आफिस,वाराणसी,1967.

-प्रकरणपंचिका(शालिकनाथ कृत), सम्पा० सुब्रह्मण्यशास्त्री, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, 1961.

-प्रमाणवार्तिक(धर्मकीर्ति कृत) सम्पा० द्वारिकादास शास्त्री, बौद्ध-भारती,वाराणसी,1968.

-श्रीमद्भगवद्गीता (शांकरभाष्यसहित),अनु० हरिकृष्णदास गोयन्दका, गीताप्रेस गोरखपुर वि०सं०२०६६.

## 2. द्वितीयक स्रोत (Secondary Sources)

### १.स्वतन्त्र ग्रन्थ-

#### (अ) हिन्दी ग्रन्थ –

- शास्त्री, उदयवीर, वेदान्तदर्शन का इतिहास, विजयकुमार गोविन्दराम हासानन्द, नईदिल्ली, २००२

- शास्त्री, सत्यदेव, भामती तथा विवरण प्रस्थान का तुलनात्मक अध्ययन, भारती प्रकाशन, इलाहाबाद,1972.

- सिंह, ईश्वर, भामती एक अध्ययन, मन्थनप्रकाशन, रोहतक.

- मिश्र, सत्यदेव, अद्वैत वेदान्त में आभासवाद,इन्दिरा प्रकाशन, पटना,1986.

- अभिमन्यु, वेदान्तविमर्श,परिमल पब्लिकेशन्स,नई दिल्ली,1991.

-अभेदानन्द, शंकरोत्तर अद्वैत वेदान्त में मिथ्यात्व निरूपण, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर,1973.

- शर्मा, राममूर्ति, शंकराचार्य, ईस्टर्न बुक लिंकर्स, 1989.

- श्रीवास्तव, जगदीश सहाय, अद्वैत वेदान्त की तार्किक भूमिका, किताब महल, इलाहाबाद,1983.

- शर्मा, राममूर्ति, अद्वैत वेदान्त – इतिहास और सिद्धान्त,ईस्टर्न बुक लिकंर्स, द्वीतीय संस्करण, 1989.

- शास्त्री, विश्वनाथ, भारतीय दर्शनों में वेदान्त का स्थान,सरस्वती संस्कृत कालेज, लुधियाना,1986.

-शेखावत,महेन्द्र,आधुनिक चिन्तन में वेदान्त, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी,भोपाल,1986.

- शर्मा, उर्मिला, अद्वैत वेदान्त में तत्त्व एवं ज्ञान, छन्दस्वती प्रतिष्ठान, वाराणसी, 1994.

-तिलक,बाल गंगाधर श्रीमद्भगवद्गीतारहस्य,लोकमान्य तिलक मन्दिर,पूना,1962.

-मिश्रा,चञ्चला,वेदान्ततत्त्वविवेक- एक अध्ययन, डिप्टी पब्लिकेशन, दिल्ली,1989.

-लोहनी, भास्करानन्द, गीता का तात्विक विवेचन, उत्तरप्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ 1986.

- मलकानी,घनश्यामदास वेदान्त की ज्ञानमीमांसा,मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी 1973.

- शर्मा, चन्द्रधर, भारतीय दर्शन –आलोचन एवं अनुशीलन,मोतीलाल बनारसीदास,दिल्ली, 1990.

**(ब)आंग्ल ग्रन्थ-**

-Dube, Rajendra Prasada,Vāċaspati Darśanam, Classical Publishing Company, New Delhi, 1983.

- Kar, Bijanand, Indian Theory Of Error, Sophia Indological Series, No.3, Ajanta Book International, Delhi, 1990.

- Swami, Ranganathanand, Vivekċuḍamaṇi, Advait Ashram, New Delhi, 2008.

- Rajgopal, L.V., A Critique Of Vedānta, Munshiram Ram Manohar Lal , Delhi, 1993.

-Alston, A., J., The Method of Vedānta, Motilal Lal Banarasi Das New Delhi, 1997.

-Balasubramanian, R., The Tradition Of Advaita,Munshiram Manoralal, Pvt., Ltd., Delhi, 1994.

-Ramchandrana, T. P., The Concept of the Vyāvahārika in Advaita Vedānta, University of Indore, 1980.

-Shastri, Kokileshvara, An Introduction to Advaita Vedānata Philosophy, Bhartiya Publishing House, Delhi, 1979.

-Sharma, V. K., Chitsukh's Contribution to Advaita Vedānta, Kaivalya Publication, Maysore, 1974.

- Sharma, Baldev Raj, Concept of Ātman In Principle Upniṣada ,Dinesh Publication, New Delhi, 1972.

-Radhakrishna, S, Indian Philosophy,Oxford University Press, New Delhi.2010.

**२.कोश ग्रन्थ- संस्कृत एवं हिन्दी-**

-अवस्थी, बच्चूलाल, भारतीय-दर्शन-बृहद्कोश,शारदा पब्लिशिंग हाउस,2002.

- बुल्के, कामिल, संस्कृत-हिन्दी कोश,रांची केथोलिक प्रेस,2006.

-अमरसिंह, अमरकोश, निर्णय सागर प्रेस, 1961.

-वाचस्पत्यम्, चौखम्भा पब्लिकेशन,नई दिल्ली, 1953.

**-आंग्ल-कोश-**

-Potter,karl H.,Encyclopedia of Indian Philosophical Delhi, Motilaal Banarsidas,1970.

William,Monier,English-Sanskrit Dictionary, Delhi Munshiram Manohar Lal 1976.

**३.शोध-पत्र-पत्रिकाऍं-**

-सरस्वती, जगद्गुरुशंकराचार्यस्य ख्यातिवादः,सागरिका वर्ष 14, अंक 2.

-पाठकः, केशवप्रसादः, "अद्वैतवेदान्ते अध्यासवादः", सागरिका वर्ष 9, अंक 1.

- अद्वैत वेदान्ते प्रतिबिम्बवादः" सागरिका वर्ष 9, अंक 2.

-Sharma, Ramesh Kumar, "The Structure Of A Theory of Error- A Three Cornered Debate" Studies In Humanities and Social Science Vol.-3, No.2, Winter 1996, pp.201-257.

-Voice of Śankar,Adyar Liabrary Bulletin,Madras.

-Vedānta Kesari, Adyar Liabrary Bulletin,Madras.

-Brahmvidyā, Rāmkṛṣṇa Maṭha,Madras.

-Sambodhi, LD Institute of Indology, Ahmdabad

**४.शोध प्रबन्ध-**

-Jhā Rāmnāth, An Epistemological study of Śāṃkarbhāśya on Prasthātrayī, Department of Sanskrit , Delhi University, 1992.

-विमल, लक्ष्मीकांत,शांकरवेदान्त में अर्थनिर्धारण के सिध्दान्तों का अध्ययन, विशिष्टसंस्कृत अध्ययन केन्द्र, जवाहरलाल नेहरु विश्वविद्यालय, नई दिल्ली.